भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास

कक्षा 12 के लिए समाजशास्त्र की पाठ्यपुस्तक

12110

© NCERT
not to be republished

विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

12110 – भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास
कक्षा 12 के लिए पाठ्यपुस्तक

ISBN 81-7450-762-0

प्रथम संस्करण
सितंबर 2007 आश्विन 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007, जनवरी 2009,
जनवरी 2010, नवंबर 2010,
जनवरी 2012, मार्च 2013,
जनवरी 2014, जनवरी 2016,
फ़रवरी 2017, दिसंबर 2017,
दिसंबर 2018, अक्तूबर 2019,
जुलाई 2021

संशोधित संस्करण
सितंबर 2022 अश्विन 1944

पुनर्मुद्रण
मार्च 2024 चैत्र 1946
दिसंबर 2024 अग्रहायण 1946

PD 20T BS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007, 2022

₹ 100.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा गोयल ऑफसेट वर्क्स प्रा. लिमिटेड, प्लॉट नंबर 370–371, 374–375, फेज-V, सेक्टर-56, कुंडली, सोनीपत (हरियाणा) द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ़ीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पानीहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*एम.वी. श्रीनिवासन*
मुख्य संपादक	:	*बिज्ञान सुतार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी)	:	*जहान लाल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*अमिताभ कुमार*
सहायक संपादक	:	*एम. लाल*
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	*दीपक कुमार*

आवरण और सज्जा
श्वेता राव
चित्रांकन
ब्लू फिश और जोयल गिल

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक विद्यालय और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित शिक्षा व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि विद्यालयों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन कर सकेंगे। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितनी वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक विद्यालय में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में विचार-विमर्श और ऐसी गतिविधियों को प्राथमिकता देती है जिन्हें करने के लिए व्यावहारिक अनुभवों की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और इस पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर योगेन्द्र सिंह की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए परिषद् उनके प्राचार्यों एवं उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में उदारतापूर्वक सहयोग दिया। परिषद् माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी.

© NCERT not to be republished

देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन

कोविड-19 महामारी को देखते हुए, विद्यार्थियों के ऊपर से पाठ्य सामग्री का बोझ कम करना अनिवार्य है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य सामग्री का बोझ कम करने और रचनात्मक नज़रिए से अनुभवात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने पर ज़ोर दिया गया है। इस पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सभी कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों को पुनर्संयोजित करने की शुरुआत की है। इस प्रक्रिया में रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा पहले से ही विकसित कक्षावार सीखने के प्रतिफलों को ध्यान में रखा गया है।

पाठ्य सामग्रियों के पुनर्संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा गया है —

- एक ही कक्षा में अलग-अलग विषयों के अंतर्गत समान पाठ्य सामग्री का होना;
- एक कक्षा के किसी विषय में उससे निचली कक्षा या ऊपर की कक्षा में समान पाठ्य सामग्री का होना;
- कठिनाई स्तर;
- विद्यार्थियों के लिए सहज रूप से सुलभ पाठ्य सामग्री का होना, जिसे शिक्षकों के अधिक हस्तक्षेप के बिना, वे खुद से या सहपाठियों के साथ पारस्परिक रूप से सीख सकते हों;
- वर्तमान संदर्भ में अप्रासंगिक सामग्री का होना।

वर्तमान संस्करण, ऊपर दिए गए परिवर्तनों को शामिल करते हुए तैयार किया गया पुनर्संयोजित संस्करण है।

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1]**[संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य]** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2]**[राष्ट्र की एकता और अखंडता]** सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

© NCERT
not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, समाज विज्ञान उच्च माध्यमिक स्तरीय पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार

योगेन्द्र सिंह, *प्रोफ़ेसर एमिरिटस*, सेंटर फ़ॉर द स्टडीज़ ऑफ़ सोशल सिस्टम्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सलाहकार

मैत्रेयी चौधरी, *प्रोफ़ेसर*, सेंटर फॉर द स्टडीज़ ऑफ सोशल सिस्टम्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सतीश देशपांडे, *प्रोफ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदस्य

अंजन घोष, *फ़ैलो*, सेंटर फ़ॉर स्टडीज़ इन सोशल साइंसेज़, कोलकाता

अमिता बाविस्कर, *प्रोफ़ेसर*, इंस्टीट्यूट ऑफ़ इकोनॉमिक ग्रोथ, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कैरल उपाध्याय, *विज़िटिंग एसोसिएट फ़ैलो*, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस स्टडीज़, बंगलूरु

कुशल देव, *प्रोफ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टैक्नोलॉजी, मुंबई

खमयमबम इंदिरा, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, नॉर्थ ईस्ट रीज़नल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, रा.शै.अ.प्र.प., शिलांग

लता गोविंदन नायर, *भूतपूर्व शिक्षक*, सरदार पटेल विद्यालय, नयी दिल्ली

नित्या रामाकृष्णन, अधिवक्ता, दिल्ली उच्च न्यायालय, नयी दिल्ली

नंदिनी सुंदर, *प्रोफ़ेसर*, डिपार्टमेंट ऑफ़ सोशियोलॉजी, दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारिका चंद्रवंशी साजू, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, आर.आई.ई., रा.शै.अ.प्र.प., भोपाल

तसौंगवाई न्यूमई, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, नॉर्थ ईस्ट रीज़नल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, रा.शै.अ.प्र.प., शिलांग

हिंदी अनुवाद

परशुराम शर्मा, *भूतपूर्व निदेशक* (राजभाषा), भारत सरकार, नयी दिल्ली

संजय गर्ग, *सहायक निदेशक (लेखा)*, राष्ट्रीय महालेखागार, नयी दिल्ली

देवनाथ पाठक, *पी.जी.टी.* समाजशास्त्र, ब्लूबैल इंटरनेशनल स्कूल, नयी दिल्ली

राजेश कुमार, *शोध छात्र*, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

मंजू भट्ट, *प्रोफ़ेसर*, सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

सदस्य समन्वयक

मंजू भट्ट, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष*, सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

आभार

इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में अनेक व्यक्तियों द्वारा कठिन परिश्रम किया गया और इस कार्य को एक चुनौती के रूप में निर्धारित समय में पूरा किया गया, परिषद् उन सभी की आभारी है। सर्वप्रथम हम उन सभी सहकर्मियों के आभारी हैं जिन्होंने अन्य व्यस्तताओं के होते हुए भी सभी कार्यों से पहले अपना समय एवं परिश्रम इस पुस्तक को पूरा करने में लगाया। हमारे मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर योगेन्द्र सिंह समर्थन के स्तम्भ रहे और उन्होंने हमें आगे बढ़ने के लिए आवश्यक आत्मविश्वास दिया। प्रोफ़ेसर सिंह ने प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार, *निदेशक*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के साथ मिलकर वो अभय हस्त प्रदान किया जिससे हमारे सामूहिक प्रयासों को दिशा मिली। प्रोफ़ेसर सविता सिन्हा, *प्रोफ़ेसर*, सामाजिक विज्ञान एवं मानिविकी शिक्षा विभाग एवं डीन, अकादमिक ने प्रत्येक क्षण हमें हर तरह का समर्थन प्रदान किया। डॉ. श्वेता उप्पल, *मुख्य संपादक*, प्रकाशन विभाग ने हमारे काम को सरल तो बनाया ही साथ ही हमें ऐसे ऊँचे लक्ष्य निर्धारित करने के लिए प्रोत्साहित भी किया जो शायद हम स्वयं तय न कर पाते।

हम सीमा बनर्जी, *पी.जी.टी.* समाजशास्त्र, लक्ष्मण पब्लिक विद्यालय, नयी दिल्ली; देव एन. पाठक, ब्लूबैल अंतर्राष्ट्रीय विद्यालय, नयी दिल्ली; निर्मला चौधरी, *पी.जी.टी.* समाजशास्त्र, नेहरू आदर्श सीनियर सेकेंडरी विद्यालय, दिल्ली, किरन शर्मा *पी.जी.टी.* समाजशास्त्र, राजकीय सीनियर सेकेंडरी विद्यालय, प्रेसीडेंट स्टेट, नयी दिल्ली को उनके सहयोग तथा सुझावों के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। अनुवाद संबंधी सहायता के लिए परिषद् प्रोफ़ेसर सतीश देशपांडे, डॉ. राजीव गुप्ता, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, डॉ. जीतेन्द्र प्रसाद, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, डॉ. संजय गर्ग, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नयी दिल्ली, डॉ. परशुराम शर्मा, नयी दिल्ली, डॉ. मधु नागला, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, सुदर्शन गुप्ता राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, पलोरा, जम्मू का आभार व्यक्त करती है।

श्वेता राव विशेष धन्यवाद की पात्र हैं जिन्होंने इस पाठ्यपुस्तक को डिज़ाइन करने की चुनौती को स्वीकार किया और वास्तव में हमारे प्रयत्नों को संभव बनाया। उनका योगदान प्रत्येक पृष्ठ पर स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। परिषद् जैसना जयचन्द्रन, *शोध छात्रा*, सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ सोशल सिस्टम्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नयी दिल्ली की उनके योगदान एवं सहयोग के लिए आभारी है।

प्रोफ़ेसर सतीश सबरवाल एवं प्रोफ़ेसर एन. जयराम, *सदस्य*, मॉनिटरिंग कमेटी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिनकी सतर्क टिप्पणियों एवं सुझावों से हम बहुत अधिक लाभान्वित हुए।

अंततः हम उन सभी सदस्यों एवं व्यक्तियों के प्रति आभारी हैं जिन्होंने हमें प्रकाशनों से सामग्री का उपयोग करने की अनुमति दी। परिषद् श्री आर. के. लक्ष्मण की विशेष आभारी है जिन्होंने हमें अपने कार्टून उपयोग करने की अनुमति दी। परिषद् मालविका कारलेकर का उनकी पुस्तक 'विज्युलाइजिंग इंडियन वुमेन' 1875–1947, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित छायाचित्रों का उपयोग करने के लिए आभार व्यक्त करती है। परिषद् राधा कुमार के प्रति उनकी पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ़ डूइंगः एन इलस्ट्रेटेड एकाउंट ऑफ़ मूवमेंट फॉर वीमंस राइट्स एंड फेमीनिज़्म इन इंडिया' 1800–1990 के छायाचित्रों एवं रवि अग्रवाल के छायाचित्रों के संकलन के लिए भी आभारी है। कुछ छायाचित्र राजस्थान पर्यटन विभाग, राजस्थान सरकार, नयी दिल्ली से लिए गए हैं, हम उनके भी आभारी हैं। हमने कुछ सामग्री एवं छायाचित्रों को *इंडिया टुडे*, *आउटलुक* और *फ्रंटलाइन* एवं कुछ समाचारपत्रों जैसे *द हिंदू*, *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया* और द

© NCERT not to be republished

इंडियन एक्सप्रेस से भी लिया है इसके लिए हम उनके आभारी हैं। परिषद् रेल म्यूज़ियम लाइब्रेरी, चाणक्यपुरी, नयी दिल्ली के प्रति आभार प्रदर्शित करती है। परिषद् वाई.के. गुप्ता एवं आर. सी. दास, केन्द्रीय शैक्षिक तकनीकी संस्थान के सहयोग के प्रति भी आभार व्यक्त करती है।

पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए *डी.टी.पी. ऑपरेटर* उत्तम कुमार, नाज़िया खान एवं ईश्वर सिंह, *कॉपी एडीटर* मनोज मोहन, *प्रूफ़रीडर* अनामिका गोविल, *प्रभारी कंप्यूटर कक्ष* दिनेश कुमार के प्रति भी हम आभारी हैं। प्रकाशन विभाग द्वारा हमें पूर्ण सहयोग एवं सुविधाएँ प्राप्त हुईं, इसके लिए हम उनका आभार व्यक्त करते हैं।

परिषद्, इस संस्करण के पुनर्संयोजन के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों एवं विषय सामग्री के विश्लेषण हेतु दिए गए महत्वपूर्ण सहयोग के लिए सीमा बनर्जी एवं आभा सेठ, *पी.जी.टी.* समाजशास्त्र; अचला प्रीतम टंडन, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, हिंदू कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय; मंजू भट्ट, *प्रोफ़सर*, सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली: के प्रति आभार व्यक्त करती है।

© NCERT not to be republished

अध्ययन के लिए सुझाव

प्रथम पुस्तक को आप पहले ही पढ़ चुके हैं। अतः आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के इस मूलभाव से परिचित हो चुके हैं कि पाठ्यपुस्तकें जीवन में संचार करती हैं। यह विचार आपको रटने की पद्धति से दूर ले जाता है। पाठ्यपुस्तक में यह प्रयास किया गया है कि "आपको विचार करने और चकित होने के अवसर मिलें, आप छोटे-छोटे समूहों में बातचीत कर सकें तथा दिन प्रतिदिन के अनुभवों से जुड़ी हुई क्रियाएँ कर सकें।" हमारे प्रयास में विषयवस्तु को समकालीन सामाजिक वातावरण और बच्चों के दैनिक क्रियाकलापों से जोड़ा जाए। इसे संभव बनाने के लिए हमने समाचारपत्रों की रिपोर्ट, पत्रिकाओं के लेखों तथा काल्पनिक कथाओं के संक्षिप्त भावों को बॉक्स में प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही सरकारी प्रतिवेदन तथा बच्चों के दिन प्रतिदिन के जीवन के उदाहरणों को भी प्रस्तुत किया गया है। इस कारण अभ्यास एवं क्रियाकलाप पाठ्यपुस्तक में आवश्यक अंग बन गए हैं। समाजशास्त्रीय लेखन से भी कुछ पक्ष लेने के प्रयास किए गए हैं ताकि आप समाजशास्त्रीय अनुसंधान से परिचित हो सकें।

हमारे लिए यह सारा प्रयास चुनौतीपूर्ण रहा है एवं कभी-कभी यह कठिन भी रहा है। हम इस तथ्य से परिचित हैं कि आपके सुझाव भविष्य में इन पुस्तकों को सुधारने के लिए सहायक सिद्ध होंगे। कृपया हमें निम्नलिखित पते पर लिखें– विभागाध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंदो मार्ग, नयी दिल्ली-110016। आप हमें ई-मेल भी कर सकते हैं– headdess@gmail.com हमें आपके जवाबों का इंतज़ार रहेगा। विशेषतः आपकी आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएँ एवं पुस्तक में सुधार के लिए सुझावों का हम स्वागत करेंगे। हम आपको यह विश्वास दिलाते हैं कि पाठ्यपुस्तक के आगामी संस्करण में उपयोगी सुझावों को सम्मिलित किया जाएगा।

प्रोफ़ेसर मैत्रेयी चौधरी
प्रोफ़ेसर मंजू भट्ट

© NCERT not to be republished

विषय-सूची

आमुख	*iii*
पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन	*v*
अध्ययन के लिए सुझाव	*x*
अध्याय 1 संरचनात्मक परिवर्तन	**1–14**
अध्याय 2 सांस्कृतिक परिवर्तन	**15–30**
अध्याय 3 संविधान एवं सामाजिक परिवर्तन	**31–40**
अध्याय 4 ग्रामीण समाज में विकास एवं परिवर्तन	**41–56**
अध्याय 5 औद्योगिक समाज में परिवर्तन और विकास	**57–70**
अध्याय 6 भूमंडलीकरण और सामाजिक परिवर्तन	**71–90**
अध्याय 7 जनसंपर्क साधन और जनसंचार	**91–110**
अध्याय 8 सामाजिक आंदोलन	**111–130**
शब्दावली	**131–132**

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

© NCERT not to be republished

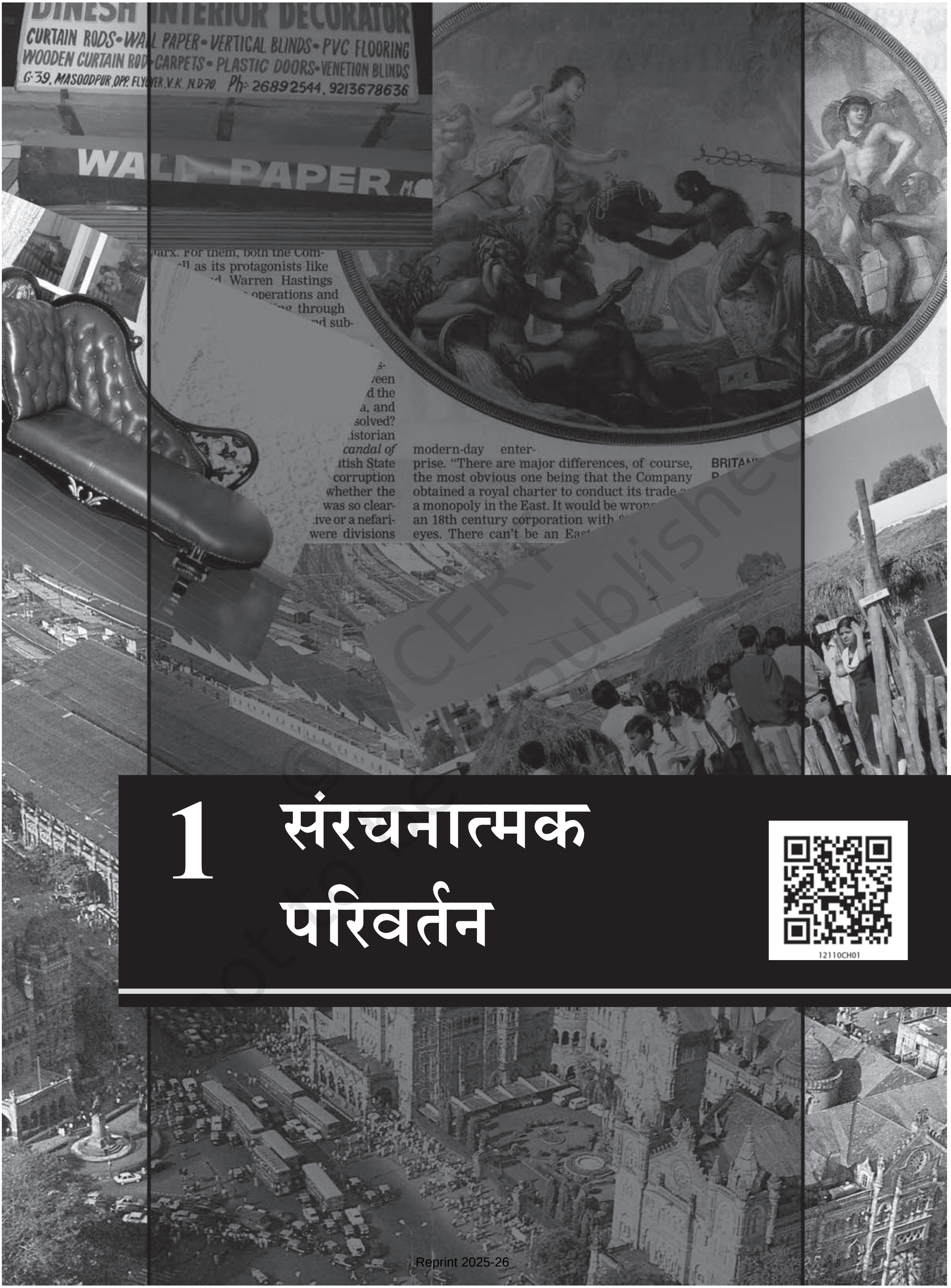

1 संरचनात्मक परिवर्तन

12110CH01

© NCERT not to be republished

वर्तमान को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि उसके अतीत के कुछ पक्षों की भी जानकारी हो। अतीत का यह ज्ञान किसी भी व्यक्ति या समूह या फिर भारत जैसे पूरे देश को जानने हेतु आवश्यक है। भारत का इतिहास काफ़ी समृद्ध एवं विस्तृत है। भारत के अतीत की जानकारी प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत को जानने से मिलती है। जबकि आधुनिक भारत को समझने के लिए ज़रूरी है कि भारत के औपनिवेशिक अनुभवों को जानें। भारत में आधुनिक विचार एवं संस्थाओं की शुरुआत औपनिवेशिकता की देन है। उपनिवेशवाद के प्रभाव के कारण भारत ने आधुनिक विचारों को जाना। यह एक विरोधाभासी स्थिति भी थी। इस दौर में भारत ने पाश्चात्य उदारवाद एवं स्वतंत्रता को आधुनिकता के रूप में जाना वहीं दूसरी ओर इन पश्चिमी विचारों के विपरीत भारत में ब्रितानी उपनिवेशवादी शासन के अंतर्गत स्वतंत्रता एवं उदारता का अभाव था। इस तरह के अंतः विरोधी तथ्यों ने भारतीय सामाजिक संरचना एवं संस्कृति में परिवर्तनों को दिशा दी एवं उन पर प्रभाव डाला। ऐसे अनेक संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के बारे में अध्याय 1 और 2 में चर्चा की गई है।

अगले कुछ पाठों में यह बात साफ़ उभर कर आएगी कि किस प्रकार भारत में सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन, हमारी विधि व्यवस्था, हमारा राजनीतिक जीवन और संविधान, हमारे उद्योग एवं कृषि, हमारे नगर और हमारे गाँव–इन सब पर उपनिवेशवाद के विरोधाभासी अनुभवों का गहरा प्रभाव पड़ा। उपनिवेशवाद के साथ हमारे इन विरोधाभासी संबंधों का प्रभाव आधुनिकता पर भी पड़ा। इसके कुछ उदाहरण, जो हम अपने आम जीवन में पाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

हमारे देश में स्थापित संसदीय, विधि एवं शिक्षा व्यवस्था ब्रिटिश प्रारूप व प्रतिमानों पर आधारित है। यहाँ तक कि हमारा सड़कों पर बाएँ चलना भी ब्रिटिश अनुकरण है। सड़क के किनारे रेहड़ी व गाड़ियों पर हमें 'ब्रेड-ऑमलेट' और 'कटलेट' जैसी खाने की चीजें आमतौर पर मिलती हैं। और तो और, एक प्रसिद्ध बिस्कुट निर्माता कंपनी का नाम भी 'ब्रिटेन' से संबद्ध है। अनेक स्कूलों में 'नेक-टाई' पोशाक का एक अनिवार्य हिस्सा

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

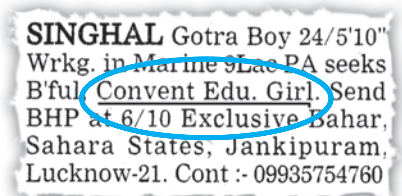

होता है। कितनी पाश्चात्यता है हमारे दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली इन चीजों में। हम प्रायः पश्चिम की प्रशंसा करते हैं, लेकिन अक्सर विरोध भी करते हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हमें अपनी रोज़मर्रा की जिंदगी में देखने को मिलते हैं। इन उदाहरणों से पता चलता है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद अब भी हमारे जीवन का एक जटिल हिस्सा है।

हम अंग्रेज़ी भाषा का उदाहरण ले सकते हैं, जिसके बहुआयामी और विरोधात्मक प्रभाव से हम सब परिचित हैं। उपयोग में आने वाली अंग्रेज़ी मात्र भाषा नहीं है बल्कि हम पाते हैं कि बहुत से भारतीयों ने अंग्रेज़ी भाषा में उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएँ भी की हैं। अंग्रेज़ी के ज्ञान के कारण भारत को भूमंडलीकृत अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में एक विशेष स्थान प्राप्त है। लेकिन यह भी नहीं भूला जा सकता है कि अंग्रेज़ी आज भी विशेषाधिकारों की द्योतक है। जिसे अंग्रेज़ी का ज्ञान नहीं होता है उसे रोज़गार के क्षेत्र में परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन दूसरी ओर अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान अनेक वंचित समूहों के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है। दलितों के संदर्भ में ये बातें उपयुक्त हैं। परंपरागत व्यवस्था में दलितों को औपचारिक शिक्षा से वंचित रहना पड़ा था। अंग्रेज़ी के ज्ञान से अब दलितों के लिए भी अवसरों के द्वार खुल गए हैं।

Virtually English

Housewives and college students who know English take up plum assignments as online scorers in BPOs, writes K. Jeshi

It is a familiar classroom scene. The only unfamiliar thing is the setting. Computer screens turn blackboards and housewives take over as teachers to evaluate English essays written by non-English speaking students in Asia. All, at the click of the mouse. The encouraging comments given by the evaluators here motivate students in Japan, Korea and China to learn English. Online education, the new wave in the BPO segment, is bringing cheer to those who want to earn a fast buck. All you need is a flair for English, creative skills, basic computer knowledge, the drive to go that extra mile and willingness to learn.

Source: The HINDU, Thursday, May 04, 2006

इस अध्याय में हमने उन अनेक संरचनात्मक परिवर्तनों का उल्लेख किया है जो उपनिवेशवाद के कारण आए। अब हम इस जानकारी के बाद उपनिवेशवाद को एक संरचना एवं व्यवस्था के रूप में समझेंगे। उपनिवेशवाद ने राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में नवीन परिवर्तन उत्पन्न किए। इस अध्याय में हम दो संरचनात्मक परिवर्तनों "औद्योगीकरण एवं नगरीकरण" की चर्चा करेंगे। हमारे विवेचन का मुख्य केंद्र तो विशिष्ट औपनिवेशिकतावाद होगा, पर साथ ही हम स्वतंत्र भारत में हुए विकास का भी उल्लेख करेंगे।

इन सभी संरचनात्मक परिवर्तनों के साथ सांस्कृतिक परिवर्तन भी हुए जिनकी चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे। हालाँकि इन दोनों परिवर्तनों को अलग करना बहुत कठिन है। फिर भी आप देखेंगे कि संरचनात्मक परिवर्तनों की चर्चा कैसे सांस्कृतिक परिवर्तनों को सम्मिलित किए बिना कठिन है?

© NCERT not to be republished

1.1 उपनिवेशवाद की समझ

एक स्तर पर, एक देश के द्वारा दूसरे देश पर शासन को उपनिवेशवाद माना जाता है। आधुनिक काल में पश्चिमी उपनिवेशवाद का सबसे ज़्यादा प्रभाव रहा है। भारत के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ काल और स्थान के अनुसार विभिन्न प्रकार के समूहों का उन विभिन्न क्षेत्रों पर शासन रहा जो आज के आधुनिक भारत को निर्मित करते हैं, लेकिन औपनिवेशिक शासन किसी अन्य शासन से अलग और अधिक प्रभावशाली रहा। इसके कारण जो परिवर्तन आए वह अत्यधिक गहरे और भेदभावपूर्ण रहे हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जिसमें दूसरे देश के क्षेत्रों पर कब्ज़ा करके राजनीतिक क्षेत्र का विस्तार किया गया। ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जिसमें कमज़ोर लोगों पर शक्तिशाली लोगों ने शासन किया। लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि *पूँजीवाद के आने से पहले के साम्राज्य और पूँजीवादी दौर के शासन में गुणात्मक अंतर* है। पूर्व-पूँजीवादी शासक अपने प्रभुत्व से लाभ प्राप्त कर सके जो उनके निरंतर शासन अथवा विरासत से व्यक्त होता है। कुल मिलाकर पूर्व-पूँजीवादी शासक समाज के आर्थिक आधार में हस्तक्षेप नहीं कर सके। उन्होंने परंपरागत आर्थिक व्यवस्थाओं पर कब्ज़ा करके अपनी सत्ता को बनाए रखा। (अल्वी एवं शानिन)

इसके विपरीत ब्रितानी उपनिवेशवाद पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित था। इसने प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक व्यवसाय में बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप किए जिनसे ब्रितानी पूँजीवाद का विस्तार हुआ और उसे मज़बूती मिली। उदाहरण के लिए भूमि संबंधी नियमों को लें। ब्रितानी उपनिवेशवाद ने केवल भूमि स्वामित्व के नियमों को ही नहीं बदला अपितु यह भी निर्धारित किया कि कौन सी फसल उगाई जाए और कौन सी नहीं। इसने उत्पादन क्षेत्र को भी नहीं छोड़ा। वस्तुओं के उत्पादन की प्रणाली और उनके वितरण के तरीकों को भी बदल दिया। यहाँ तक कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने ब्रिटिश पूँजीवाद के प्रसार के लिए जंगलों को भी नहीं छोड़ा। उन्होंने

Reprint 2025-26

पेड़ों की कटाई और बागानों में चाय की खेती की शुरुआत कराई। जंगल को नियंत्रित एवं प्रशासित करने के लिए अनेक कानून भी बनाए। इससे जंगल पर आश्रित गड़रिये व ग्रामीण लोगों के जीवन में परिवर्तन आए। नए औपनिवेशिक कानूनों के अंतर्गत ग्रामीणों, चरवाहों व गड़रियों का जंगलों में आना-जाना प्रतिबंधित कर दिया गया। अब जंगल से भेड़-बकरियों, गाय-भैंसों आदि पशुओं के लिए चारा इकट्ठा करना दुर्लभ हो गया।

बॉक्स 1.1

सन् 1834 से लेकर 1920 तक, भारत के अनेक बंदरगाहों से नियमित रूप से जहाज़ जाते थे। उन जहाज़ों में विभिन्न धर्मों, लिंग, वर्गों व जातियों के भारतीय लोग होते थे जिन्हें कम से कम पाँच साल के लिए मॉरीशस के बागानों में मज़दूरी करने के लिए पहुँचाया जाता था। इसके लिए कई दशकों तक लोगों का चयन मुख्यतः बिहार प्रांत के विशेषकर पटना, गया, आरा, सारण, तिरहुत, चंपारण, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया ज़िलों में से होता था। *(पाइनीओ 1984)*

उपनिवेशवाद ने लोगों की आवाजाही को भी बढ़ाया। भारत के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में आना जाना चलता रहा। जैसे आज के झारखंड प्रदेश से, उन दिनों, बहुत से लोग चाय बागानों में मज़दूरी करने के उद्देश्य से असम आए। उन्हीं दिनों एक नए मध्य वर्ग का भी उद्‌भव हुआ जो मुख्यतः बंगाल और मद्रास क्षेत्र से था। उसमें वे लोग थे जिनको उपनिवेशवादी शासन ने देश के विभिन्न भागों से सेवा के लिए चुना था इसके अलावा विभिन्न पेशेवर लोग जैसे– डॉक्टर एवं वकील। इन सरकारी सेवाकर्मियों और व्यवसायियों का भी बहुत आवागमन होता रहा। यह आवागमन भारत तक ही सीमित नहीं रहा। उपनिवेशवादी शासन ने भारतीय मज़दूरों एवं दक्ष सेवाकर्मियों को जहाज़ों के माध्यम से सुदूर एशिया, अफ्रीका और अमरीका में स्थित अन्य उपनिवेशों में भी भेजा। कितने लोग तो जहाज़ पर रास्ते में ही मर जाते थे। जाने वाले अधिकांश लोगों में से कुछ तो कभी लौट कर ही नहीं आए। आज उन भारतीयों के वंशजों को "भारतीय मूल" का माना जाता है। दुनिया के अनेक देशों में भारतीय मूल के लोग पाए जाते हैं जो वस्तुतः भारत के उपनिवेशवादी शासन के दौरान उन देशों में पहुँचे।

व्यवस्थित शासन के लिए उपनिवेशवाद ने विभिन्न क्षेत्रों में भारी परिवर्तन की शुरुआत की। ये परिवर्तन वैधानिक, सांस्कृतिक अथवा वास्तुकला आदि क्षेत्रों में लाए गए। वस्तुतः उपनिवेशवाद वृहद एवं तीव्र रूप से लाए गए परिवर्तनों की कहानी थी। इनमें से कुछ परिवर्तन तो अप्रकट रूप में थे जबकि अनेक सुनियोजित तरीके से लाए गए थे। जैसे कि हम पाते हैं कि पश्चिमी शिक्षा पद्धति को भारत में इस उद्देश्य से लाया गया कि उससे भारतीयों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो जो ब्रिटिश उपनिवेशवाद को बनाए रखने में सहयोगी हो। लेकिन हम यह भी पाते हैं कि यही पश्चिमी शिक्षा पद्धति राष्ट्रवादी चेतना एवं उपनिवेश विरोधी चेतना का माध्यम बनी।

उपनिवेशवाद के आयामों व तीव्रता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पूँजीवाद की संरचना को समझा जाए। पूँजीवाद ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के साधन का स्वामित्व कुछ विशेष लोगों के हाथों में होता है। और इसमें ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने पर ज़ोर दिया जाता है। (कक्षा 12 की पहली पाठ्यपुस्तक **भारतीय समाज** में पूँजीवादी बाज़ार के बारे में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है)। पश्चिम में पूँजीवाद का प्रारंभ एक जटिल प्रक्रिया के फलस्वरूप हुआ। इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से यूरोप द्वारा शेष दुनिया की खोज, गैर यूरोपीय देशों की संपत्ति और संसाधनों का दोहन, विज्ञान और तकनीक का अद्वितीय विकास और इसके उपयोग से उद्योग एवं कृषि में रूपांतरण आदि सम्मिलित हैं। पूँजीवाद को प्रारंभ से ही इसकी गतिशीलता, वृद्धि की संभावनाएँ, प्रसार, नवीनीकरण, तकनीक और श्रम के बेहतर उपयोग के लिए

Reprint 2025-26

जाना गया। इन्हीं गुणों के कारण पूँजीवाद ज़्यादा से ज़्यादा लाभ सुनिश्चित करता है। पूँजीवादी दृष्टिकोण से बाज़ार को एक वृहद-भूमंडलीकृत रूप में देखा गया। पश्चिमी उपनिवेशवाद का पश्चिमी पूँजीवाद के विकास से अन्योन्याश्रित संबंध है। यही बात औपनिवेशिक भारत के संदर्भ में भी कही जा सकती है। भारत में भी पूँजीवाद के विकास के कारण उपनिवेशवाद प्रबल हुआ और इस प्रक्रिया के दूरगामी प्रभाव भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना पर पड़े। अगले भाग में हम औद्योगीकरण और नगरीकरण के बारे में जानेंगे और समझेंगे कि कैसे उपनिवेशवाद के प्रभाव से कुछ विशिष्ट प्रारूपों का उद्‌भव हुआ।

अगर पूँजीवादी व्यवस्था सशक्त आर्थिक व्यवस्था बन सकती है तो 'राष्ट्र राज्य' भी सशक्त एवं प्रबल राजनीतिक रूप ले सकता है। आज यह बड़ा स्वाभाविक लगता है कि हम सब राष्ट्र राज्य में रहते हैं और हमें राष्ट्रीयता यानी कि राष्ट्र की नागरिकता स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। क्या आपको पता है कि पहले विश्वयुद्ध के पूर्व अंतर्राष्ट्रीय आवागमन के लिए पासपोर्ट का अधिक चलन नहीं था, कुछ ही क्षेत्रों के लोगों के पास यह उपलब्ध था। समाजों का संगठन सामान्यतः इन आधारों पर नहीं होता था। राष्ट्र राज्य एक विशिष्ट प्रकार के राज्य के लिए उपयोगी है, जो कि आधुनिक समाज का लक्षण है। सरकार को एक विशेष क्षेत्र (टेरीटरी) में संप्रभुता प्राप्त होती है और इसमें रहने वाले लोग एक राष्ट्र के नागरिक होते हैं। 'नेशन स्टेट' या राष्ट्र-राज्य राष्ट्रवाद के उदय से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। राष्ट्रवादी सिद्धांत के अनुसार किसी क्षेत्र विशेष में लोगों के समूह को स्वतंत्रता एवं संप्रभुता प्राप्त होती है। उन्हें अधिकार प्राप्त होता है कि वे अपनी स्वतंत्रता एवं संप्रभुता का इस्तेमाल कर सकें। ये प्रजातांत्रिक विचारों के उद्‌भव का महत्वपूर्ण हिस्सा है। अध्याय-3 में आप इसके बारे में विस्तार से जान पाएँगे। आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद के सिद्धांत तथा प्रजातांत्रिक अधिकार के बीच विपरीतार्थक संबंध है। हमने जाना है कि उपनिवेशवाद का मतलब, साधारणतः विदेशी शासन जैसे भारत में ब्रिटिश शासन से है जबकि इसके विपरीत राष्ट्रवाद का निर्देश था कि भारत के लोग या किसी भी उपनिवेशीय समाज के लोगों को संप्रभु होने का समान अधिकार है। भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने इस विरोधाभास को सही समय पर समझा। उन लोगों ने घोषणा कर दी कि स्वाधीनता उनका जन्मसिद्ध अधिकार है और वे राजनीतिक एवं आर्थिक स्वाधीनता के लिए लड़ें।

1.2 नगरीकरण और औद्योगीकरण

औपनिवेशिक अनुभव

औद्योगीकरण का संबंध यांत्रिक उत्पादन के उदय से है जो शक्ति के गैरमानवीय संसाधन जैसे वाष्प या विद्युत पर निर्भर होता है। बहुत सारी पश्चिमी समाजशास्त्रीय पुस्तकों में यह बताया गया है कि अति विकसित परंपरात्मक सभ्यताओं में भी खेत या ज़मीन पर उत्पादन से संबंधित कार्य करने के लिए अधिकाधिक मानवों की आवश्यकता होती थी। अपेक्षाकृत निम्न तकनीकी विकास की वजह से बहुत ही कम लोग कृषि के कार्य से अतिरिक्त कुछ अन्य आसान व्यवसाय कर सकते थे। इसके विपरीत, औद्योगिक समाजों में ज़्यादा से ज़्यादा रोज़गारवृत्ति में लगे लोग कारखानों, ऑफिसों और दुकानों में कार्य करते हैं। औद्योगिक परिवेश में कृषि संबंधी व्यवसाय में लोगों की संख्या कम होती जाती है। यह देखने में आया है कि पश्चिम में 90 प्रतिशत से ज़्यादा लोग कस्बों और शहरों में रहते हैं क्योंकि वहीं पर रोज़गार व व्यवसाय के अवसर अधिक

Reprint 2025-26

होते हैं। अतः हम नगरीकरण को औद्योगीकरण से जोड़कर देखते हैं। ये दोनों प्रायः एक साथ होने वाली प्रक्रियाएँ हैं, लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता।

उदाहरण के लिए ब्रिटेन औद्योगीकरण से गुज़रने वाला पहला समाज था जो सबसे पहले ग्रामीण से रूपांतरित होकर नगरीय देश बना।

> *सन् 1800 में 10,000 निवासियों वाले कस्बों और शहरों में पूरी जनसंख्या के 20 प्रतिशत लोग रहते थे। सन् 1900 तक यह अनुपात 74 प्रतिशत का हो गया। राजधानी लंदन में, सन् 1800 में, लगभग 1.1 करोड़ लोग रहा करते थे। बीसवीं सदी के प्रारंभ तक यह आकार बढ़कर इतना हो गया कि इसकी जनसंख्या तकरीबन 7 करोड़ हो गई थी। लंदन, उस वक्त तक दुनिया का सबसे बड़ा नगर था। वह उत्पादन, वाणिज्य और आर्थिकी का सबसे बड़ा केंद्र था। यह केंद्र निरंतर फैलते हुए ब्रिटिश साम्राज्य का हृदय क्षेत्र हो गया था।* (गिडिन्स, 2001: 572)

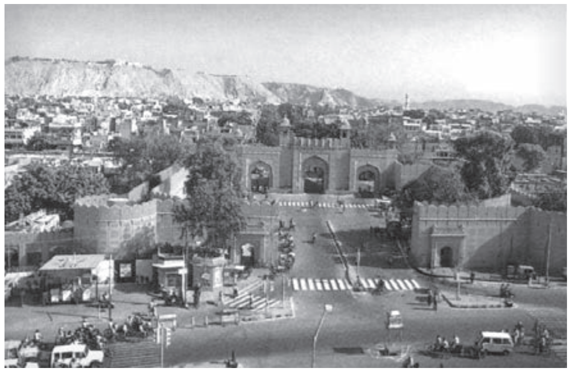

जयपुर

चेन्नई

मुंबई

यह कौतूहल की बात है कि ठीक इसी ब्रिटिश औद्योगीकरण का एक उल्टा असर यानी कि भारत के कुछ क्षेत्रों में औद्योगिक क्षरण (डीइंडस्ट्रीयलाइजेशन) हुआ। भारत में कुछ पुराने, परंपरात्मक नगरीय केंद्रों का भी पतन हो गया। जिस तरह ब्रिटेन में उत्पादन व निर्माण में चढ़ाव आया, उसके विपरीत भारत में गिरावट आई। परंपरागत ढंग से होने वाले रेशम और कपास का उत्पादन और निर्यात "मेनचेस्टर प्रतियोगिता" में गिरता चला गया। भारत के प्राचीन नगर, जैसे सूरत और मसुलीपट्नम जहाँ से व्यापार हुआ करता था, का अस्तित्व कमज़ोर होने लगा जबकि आधुनिक नगर जैसे बंबई और मद्रास जो उपनिवेशवादी शासन में प्रचलित हुए, मज़बूत होते गए। भारतीय राज्यों पर ब्रिटिश अधिकार के बाद तंजौर, ढाका, और मुर्शीदाबाद की राजसभाओं का विघटन हो गया फलतः इन राजसभाओं के संरक्षण में कार्यरत कारीगर, कलाकार और कुलीन लोगों का भी पतन हुआ। 19वीं सदी के अंत से भारत के कुछ आधुनिक नए शहरों में जहाँ यांत्रिक उद्योग लगाए गए थे, लोगों की जनसंख्या बढ़ने लगी।

> *नगरों में स्थित उत्पादकों के द्वारा बनाए गए विलासिता के सामानों, ढाका या मुर्शीदाबाद की उच्चकोटि की रेशम की माँग में दरबारों के विघटन के बाद भारी कमी हो गई। ये उत्पाद जिन बाह्य बाज़ारों पर निर्भर थे उनका भी कमोबेश सफ़ाया हो गया था। दूर-दराज के क्षेत्रों के ग्राम, शिल्प विशेषतः पूर्वी भारत के उन क्षेत्रों के अतिरिक्त जहाँ अंग्रेज़ों का प्रवेश जल्दी और सघन था अधिक समय तक स्थिर रहे, जब तक कि रेलवे के विस्तार ने उन्हें गंभीर रूप से प्रभावित नहीं किया।* (सरकार 1983: 29)

बॉक्स 1.2

भारत की जनगणना रिपोर्ट 1911, अंक-1, पृष्ठ संख्या- 408

भारत में सस्ते यूरोपीय कपड़ों के थान और बर्तनों का अबाध और तीव्र गति से आयात और पश्चिमी रूपरेखा वाले उद्योगों के भारत में ही लग जाने के बाद भारत के ग्रामीण उद्योगों का लगभग सफ़ाया ही हो गया। खेती से हुई उपज की ऊँची कीमत को देखते हुए ग्रामीण कारीगरों ने अपने वंशानुगत व्यवसाय को छोड़कर खेती करना शुरू कर दिया। ग्रामीण संगठनों और कारोबारों का विघटन प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग गति से हुआ। विकसित प्रांतों में यह परिवर्तन ज़्यादा स्पष्ट रूप से दिखा।

ब्रिटेन में औद्योगीकरण के प्रभाव से ज़्यादातर लोग नगरों में आए लेकिन इसके विपरीत भारत में ब्रिटिश औद्योगीकरण के प्रारंभिक समय में ज़्यादातर लोगों को कृषि की ओर जाना पड़ा। भारतीय जनगणना रिपोर्ट इसे स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

भारत में समाजशास्त्रीय लेखन में उपनिवेशवाद के विरोधाभासी और अनिच्छित परिणामों के बारे में अक्सर चर्चा की गई है। पश्चिमी औद्योगीकरण और उसके परिणामस्वरूप उभरे मध्यवर्ग की तुलना भारत में हुए औद्योगीकरण के अनुभवों के साथ की जाती रही है। ऐसी ही एक झलक बॉक्स में दिए गए विवरण से मिलती है। निम्नलिखित तर्क से यह भी पता चलता है कि औद्योगीकरण का मतलब केवल मशीनों पर आधारित उत्पाद ही नहीं बल्कि यह नए सामाजिक समूहों और नए सामाजिक संबंधों के उद्भव और विकास की कहानी है। दूसरे शब्दों में यह भारतीय सामाजिक संरचना में हुए परिवर्तनों के बारे में है।

बॉक्स 1.3

ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में ब्रिटिश शासन ने (भारत को) बदले में जो दिया वह था— भूमि-स्वामित्व और अंग्रेज़ी में शिक्षा की सुविधा। कुछ तथ्य यह साबित करते हैं कि जो विकल्प दिए गए थे वे मध्य वर्ग का गठन करने के लिए समुचित नहीं थे। यह पहला तथ्य है कि प्रारंभ में इसका कृषि से हुई उपज से कोई लेना-देना नहीं था और दूसरा, भारत की सांस्कृतिक परंपरा से कोई संबंध नहीं था। हम अच्छी तरह जानते हैं कि ज़मींदार ज़मीन के परजीवी हो गए और शिक्षित स्नातक बस नौकरी ढूँढ़ने वाले।

(मुखर्जी 1979:114)

ब्रिटिश साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में नगरों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। समुद्र तटीय नगर जैसे बंबई, कलकत्ता और मद्रास उपयुक्त माने गए थे। क्योंकि इन जगहों से उपभोग की आवश्यक वस्तुओं का निर्यात आसानी से किया जा सकता था। साथ ही, यहीं से उत्पादित वस्तुओं का सस्ती लागत से आयात किया जा सकता था। औपनिवेशिक नगर ब्रिटेन में स्थित आर्थिक केंद्र और औपनिवेशिक भारत में स्थित हाशिये के बीच महत्वपूर्ण संपर्क सूत्र थे। इस प्रकार ये नगर भूमंडलीय पूँजीवाद के ठोस उदाहरण थे। उदाहरण के रूप में औपनिवेशिक भारत में, बंबई को इस प्रकार सुनियोजित ढंग से विकसित किया गया था कि सन् 1900 तक भारत की एक तिहाई कच्ची कपास को जहाज़ से भेजा जा चुका था। कोलकाता से जूट (पटसन) का निर्यात

क्रियाकलाप 1.1

- *तीनों नगरों की शुरुआत (उद्भव और विकास) के बारे में और जानकारी इकट्ठा करें।*
- *इनके पुराने नामों के बारे में भी पता करें जिन्हें बदलकर अब बंबई से मुंबई, मद्रास से चेन्नई, कलकत्ता से कोलकाता, बंगलोर से बंगलूरु किया गया है।*
- *अन्य शहरी उपनिवेशी नगरों के विकास के बारे में पता लगाइए?*

Reprint 2025-26

होता था जबकि चेन्नई से कहवा, चीनी, नील और कपास ब्रिटेन को निर्यात किया जाता था।

औपनिवेशिक काल के नगरीकरण में पुराने शहरों का अस्तित्व कमज़ोर होता गया और उनकी जगह पर नए औपनिवेशिक शहरों का उद्‌भव और विकास हुआ। कोलकाता (उन दिनों का कलकत्ता) ऐसा पहला नगर था। सन् 1690 में एक अंग्रेज़ व्यापारी, जिसका नाम जॉब चारनॉक था, ने हुगली नदी के तट से लगे तीन गाँवों— कोलीकाता, गोविंदपुर, और सुतानुती को पट्टे पर लिया। उसका उद्देश्य उन तीनों गाँवों में व्यापार के अड्डे बनाना था। हुगली नदी के किनारे ही सन् 1698 में फोर्ट विलियम की स्थापना रक्षा और सैन्य बल को गठित करने के उद्देश्य से हुई। फोर्ट और उसके आसपास का खुला क्षेत्र जिसे मैदान कहते थे जहाँ सैन्य बलों के डेरे थे, कलकत्ता नगर का केंद्र बना। इसी केंद्र से नगर का प्रसार हुआ।

दक्षिण एशिया के औपनिवेशिक नगर का प्रारूप — **बॉक्स 1.4**

यूरोपीय शहर में... विशाल बंगले, सुसज्जित मकान, सुनियोजित सड़क, सड़कों के दोनों किनारों पर पेड़...दोपहर और शाम को मिलने-जुलने के लिए क्लब...खुली जगहों को पश्चिमी रूपरेखा के मनोरंजन की सुविधाओं, जैसे घुड़दौड़, गोल्फ, फुटबॉल और क्रिकेट के लिए सुरक्षित रखा गया था। जब घरेलू जलापूर्ति, विद्युत संपर्क और दूषित पानी के निष्कासन की सुविधाएँ मौजूद थी और तकनीकी स्तर पर संभव थीं तब यूरोपीय नगरों में रहने वाले लोगों ने उसका भरपूर इस्तेमाल किया। इन सुविधाओं का उपयोग केवल यूरोपीय मूल के नागरिकों के लिए ही सुलभ था।

(दत्त 1993 : 361)

चाय की बागवानी

हम अब तक जान चुके हैं कि भारत में औद्योगीकरण और नगरीकरण उस प्रकार नहीं हुआ जैसे ब्रिटेन में हुआ। इसकी वजह औद्योगीकरण की देर से हुई शुरुआत नहीं थी बल्कि यहाँ के प्रारंभिक औद्योगीकरण और नगरीकरण पर औपनिवेशिक शासन चलता था जो अपने ही हितों को देखता था।

हम विभिन्न उद्योगों के बारे में यहाँ विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। हम केवल चाय की बागवानी को उदाहरण के रूप में ले लेंगे। अधिकारिक रिपोर्ट से पता चलता है कि औपनिवेशिक सरकार गलत तरीकों से मज़दूरों की भर्ती करती थी और उनसे बलपूर्वक काम लिया जाता था। ब्रिटिश व्यवसायियों के लिए सरकारी बल का प्रयोग कर बागानों में मज़दूरों से सस्ते में काम कराया जाता था। कथा साहित्य एवं अन्य स्रोतों से बागान में काम करने वालों के जीवन से संबंधित जानकारी प्राप्त होती है।

वास्तव में औपनिवेशिक प्रशासक यह मानकर चलते थे कि बागान वालों को फ़ायदा पहुँचाने के लिए मज़दूरों पर कड़े से कड़ा बल प्रयोग किया जाए। वे इस तथ्य से पूर्णतः अवगत थे कि औपनिवेशिक देश में चलाए गए नियम कानून अलग हो सकते हैं और यह ज़रूरी नहीं है कि ब्रिटिश उन प्रजातांत्रिक नियमों का निर्वाह औपनिवेशिक देश में भी करें जो ब्रिटेन में लागू होते थे।

Reprint 2025-26

बॉक्स 1.5

श्रमिकों का चयन और नियुक्ति किस प्रकार होती थी

सन् 1851 में चाय उद्योगों की भारत में शुरुआत हुई। ज़्यादातर चाय के बागान असम में थे। सन् 1903 तक 4,79,000 स्थायी और 93,000 अस्थायी लोगों को यहाँ काम पर रखा गया था। चूँकि असम की जनसंख्या सघन नहीं थी और चाय के बागान निर्जन पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित थे इसलिए बड़ी संख्या में श्रमिकों को दूसरे प्रांतों से लाया गया था। लेकिन दूरदराज से हज़ारों मज़दूरों को लाकर ऐसी जगह पर रखने में जहाँ की आबोहवा स्वास्थ्य के प्रतिकूल थी, यहाँ तक कि विचित्र प्रकार के बुखारों का प्रकोप था, इलाज में अत्यधिक खर्चा होता था और इस खर्चे के लिए बागानों के मालिक और ठेकेदार सहमत नहीं थे। सही तरीके से मज़दूरों को लाना खर्चीला होता इसलिए ब्रिटिश व्यावसायिकों ने सरकारी ताकत का सहारा लिया। ऐसे कानून बनाए गए कि गरीब मज़दूरों के पास कोई विकल्प नहीं बचा। असम के चाय के बागानों के लिए मज़दूरों की नियुक्ति बरसों तक होती रही। यह काम ठेकेदारों को दिया गया था जो बंगाल के ट्रांसपोर्ट ऑफ़ नेटिव लेबरर्स एक्ट (न. 111)-1863, जिसका 1865, 1870 और 1873 में संशोधन किया गया, का इस्तेमाल करके मज़दूरों को प्रलोभन, बल, भय के द्वारा असम भेजते थे।

मज़दूरों के बारे में जानने के बाद यह आवश्यक है कि मालिकों/बागान वालों के बारे में जानें।

बॉक्स 1.6

बागानों के मालिक कैसे रहते थे?

सामान की लदाई और उतारने के लिए परबतपुरी एक अहम जगह थी। जब भी भाप छोड़ते पानी के स्टीमर किनारे से लगते, आसपास के बागानों के मालिक अंग्रेज़ और उनकी मेम जहाज़ से उतरते। वैसे तो उनके बगीचे दूरदराज थे और उन्हें एकांत में ही रहना पड़ता था लेकिन उनकी जीवन शैली में भोग विलास की चमक भरपूर थी। उनके विशाल बँगले मज़बूत लकड़ी के पट्टों पर स्थित और घिरे हुए थे ताकि जंगली जानवर वहाँ न आ पाएँ। राज़सी बँगले के चारों ओर मखमली बाग थे जिनकी रौनक में रंग-बिरंगे फूलों की कतार थी... उन गोरे साहबों ने कितने ही स्थानीय लोगों को विशेष ट्रेनिंग देकर बेहतर सेवा देने लायक बना दिया था। माली, बावर्ची और घरेलू कामकाज करने वाले नौकरों की कैफ़ियत देखते बनती थी।

नौकरों की सेवा की वजह से उन विशाल बँगलों के बरामदे और एक-एक सामान दूर से ही चमकते थे। सारी ज़रूरत की चीज़ें साफ़-सफ़ाई के पाउडर से लेकर परिष्कृत काँटे, सेफ्टी पिन से लेकर चाँदी के बर्तन तक, नॉटिंघम के किनारे वाले टेबल क्लॉथ से लेकर नहाने के साबुन तक, सब कुछ जहाज़ से आते थे। बड़े-बड़े नहाने के टब जो कि विशाल नहाने के कमरे में रखे जाते थे, जिन्हें कि हर दिन सवेरे भिश्ती बँगले के कुएँ के पानी से भर देता था, वे भी वास्तव में स्टीमर से ही आते थे।

(फुकन 2005)

स्वतंत्र भारत में औद्योगीकरण

पहले के भागों में हमने जाना था कि भारत में औद्योगीकरण और नगरीकरण में औपनिवेशिक शासन की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस भाग में हम संक्षेप में जानेंगे कि औद्योगीकरण को स्वतंत्र भारत की सरकार ने सक्रिय तौर पर बढ़ावा कैसे दिया। कुछ अर्थों में यह एक प्रकार की प्रतिक्रिया भी थी जिसमें स्वाधीन भारत के शासक उपनिवेशवाद के द्वारा प्रभावित हुए विकास को सँजोए रखना चाहते थे। अध्याय-5 में हम भारतीय औद्योगीकरण और इसमें आए परिवर्तनों, विशेषकर सन् 1990 के बाद हुए उदारीकरण के बारे में चर्चा करेंगे।

not to be republished © NCERT

भारतीय राष्ट्रवादियों के लिए औपनिवेशिक शासन के दौरान हुआ आर्थिक शोषण एक केंद्रीय मुद्दा था। उपनिवेशवाद से पहले के भारत की जो तस्वीर कथा-साहित्य आदि में दिखती थी, उसमें समृद्धि और संपन्नता थी। लेकिन उपनिवेशवाद के बाद के भारत में गरीबी दिखाई देती थी। स्वदेशी आंदोलन ने भारत की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रति निष्ठा को मज़बूत किया। आधुनिक विचारों के द्वारा लोगों ने अनुभव किया कि गरीबी को दूर किया जा सकता है। भारतीय राष्ट्रवादियों ने अनुमान लगाया कि तीव्र और वृहद औद्योगीकरण के द्वारा आर्थिक स्थिति में आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं जिनसे विकास और सामाजिक न्याय हो पाएगा। भारी मशीनीकृत उद्योगों का विकास हुआ। इन्हें बनाने वाले उद्योग, पब्लिक सेक्टर के विस्तार और बड़े को-ऑपरेटिव सेक्टर को महत्वपूर्ण माना गया।

क्रियाकलाप 1.2

आप सब अमूल मक्खन और अमूल के ही अन्य उत्पादों से तो परिचित ही होंगे। पता करें कि किस तरह से इस दुग्ध आधारित उद्योग का उद्भव हुआ।

क्रियाकलाप 1.3

आज़ादी के बाद के सालों में भारत में अनेक औद्योगिक शहरों का उद्भव और विकास हुआ। संभवतः आपमें से कुछ ऐसे शहरों में रहते भी हों।

- *बोकारो, भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर जैसे शहरों के बारे में जानकारी इकट्ठी करें। क्या आपके क्षेत्र में भी ऐसे शहर हैं?*
- *क्या आपको उर्वरक उत्पादन यंत्र और तेल के कुओं के क्षेत्र के आसपास बसे शहरों के बारे में पता है?*
- *अगर ऐसा कोई शहर आपके क्षेत्र में नहीं है तो पता करें कि ऐसा क्यों है?*

स्वतंत्र भारत में नगरीकरण

आपको भारत में निरंतर बढ़ रही नगरीकरण की प्रक्रिया के बारे में तो ज़रूर पता होगा। हाल ही के वर्षों में बढ़ते हुए भूमंडलीकरण द्वारा शहरों के अत्यधिक प्रसार और परिवर्तनों की जानकारी भी होगी। अध्याय-6 में इसके बारे में विस्तार से चर्चा की जाएगी। भारत में 21वीं शताब्दी में नगरीकरण की प्रक्रिया की दर अत्यंत तीव्र होती नज़र आती है। भारत सरकार की 'स्मार्ट सिटी' की महत्वाकांक्षी योजना इस गति को तीव्र करने में महत्वपूर्ण योगदान देगी। यहाँ हम समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भारत में नगरीकरण के विभिन्न प्रकारों को देखेंगे।

एक नगरीय गाँव का दृश्य

आज़ादी के बाद के दो दशकों में भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखने लगा था। नगरीकरण अनेक प्रकारों से हो रहा था। इस पर विचार व्यक्त करते हुए समाजशास्त्री एम. एस. ए. राव ने लिखा है कि भारत के कई गाँव भी तेज़ी से बढ़ रहे नगरीय प्रभाव में आ रहे थे। नगरीय प्रकृति का प्रभाव गाँवों का शहर या नगर से कैसा संबंध है, पर निर्भर करता है। उन्होंने तीन भिन्न प्रकार के नगरीय प्रभावों की स्थिति की व्याख्या की है।

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

बॉक्स 1.7

सबसे पहले वे गाँव आते हैं जहाँ से अच्छी खासी संख्या में लोग दूरदराज के शहरों में रोज़गार ढूँढ़ने के लिए जाते हैं। वे उन शहरों में रहते हैं लेकिन उनके परिवार के सदस्य गाँवों में ही रहते हैं। उत्तर-मध्य भारत के एक गाँव माधोपुर में 298 घरों मे से 77 घर ऐसे हैं जिनके सदस्य प्रवासी हैं, जबकि 77 अप्रवासियों में से लगभग आधे ऐसे हैं जो मुंबई या कोलकाता में काम करते हैं। कुल अप्रवासियों के 75 प्रतिशत ऐसे प्रवासी हैं जो गाँव में अपने परिवार को नियमित रूप से पैसे भेजते हैं और 83 प्रतिशत अप्रवासी प्रत्येक साल या चार से पाँच बार या दो साल में एक बार अपने गाँवों में आते हैं। बहुत सारे प्रवासी केवल भारतीय नगरों में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी रहते हैं। जैसे कि गुजरात के गाँवों के अनेक प्रवासी अफ्रीका और ब्रिटेन के शहरों में रहते हैं। इन लोगों ने अपने गाँवों में आधुनिक फैशन के मकान भी बनाए हुए हैं। इन्होंने ज़मीन-जायदाद में भी निवेश किया हुआ है, तथा शिक्षण संस्थान और जनकल्याण के लिए स्थापित ट्रस्टों को भी दान दिया है...

दूसरे प्रकार का शहरी प्रभाव उन गाँवों में देखा जाता है जो औद्योगिक शहरों के निकट स्थित हैं। जब एक भिलाई जैसा औद्योगिक शहर उभरता है तो उसके आसपास के कुछ गाँवों की पूरी ज़मीन उस शहर का हिस्सा बन जाती है, जबकि कुछ गाँवों की आंशिक भूमि अधिग्रहित की जाती है। ऐसे शहरों में प्रवासी कामगार आते ही रहते हैं जिससे गाँवों में मकानों की माँग बढ़ जाती है और बाज़ार का विस्तार होता है। साथ ही साथ स्थानीय निवासियों और अप्रवासियों के बीच के संबंधों को संतुलित करने की समस्या भी उत्पन्न होती है।

महानगरों का उद्‌भव और विकास तीसरे प्रकार का शहरी प्रभाव है जिससे निकटवर्ती गाँव प्रभावित होते हैं। नगरों के विस्तार में कुछ सीमावर्ती गाँव पूरी तरह से नगर के प्रसार में विलीन हो जाते हैं जबकि वे क्षेत्र जहाँ लोग नहीं रहते नगरीय विकास के लिए प्रयोग कर लिए जाते हैं।

(राव 1974 : 486–490)

चुने हुए महानगरीय शहरों की जनसंख्या (नगरीय एगलोमरेशंस)

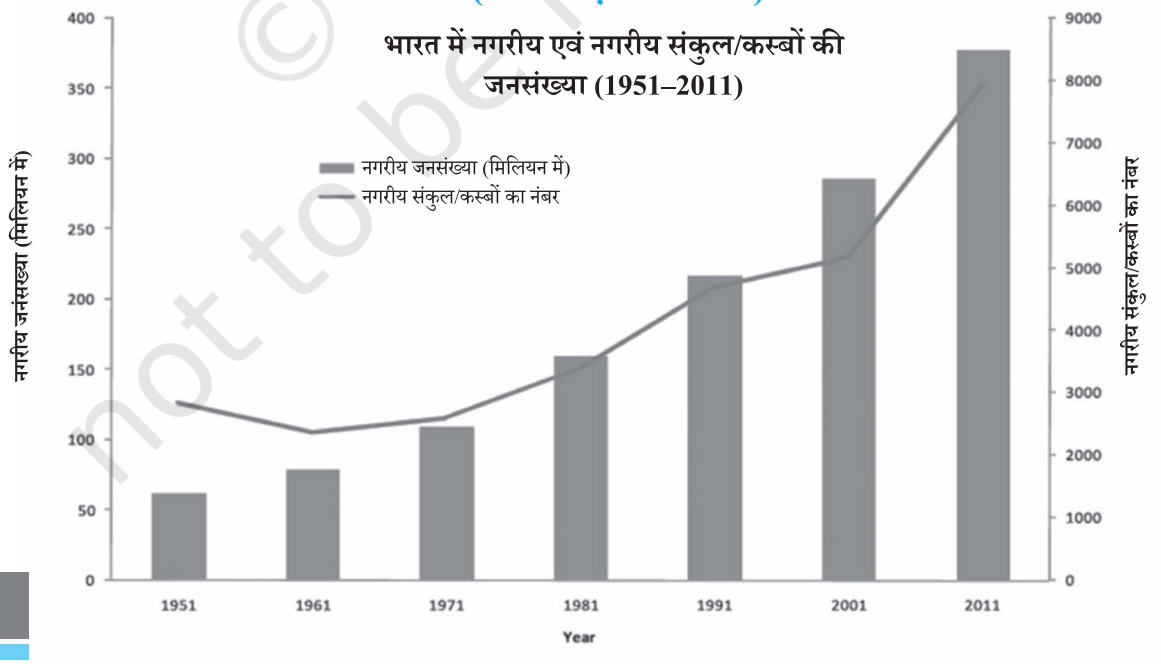

© NCERT not to be republished

चुने हुए महानगरीय शहरों की दशकीय वृद्धि दर प्रतिशत में

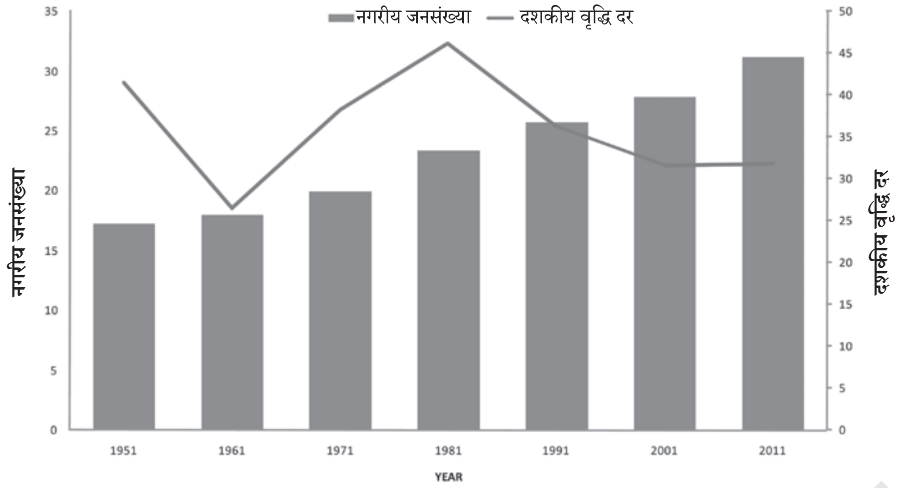

ऊपर दिया गया चार्ट दर्शाता है कि भारत में नगरीय जनसंख्या और यूए/कस्बों की संख्या बढ़ रही है। दूसरा चार्ट दिखाता है कि नगरीय आबादी का प्रतिशत बढ़ रहा है, लेकिन नगरीय जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर जनसंख्या के घटने की प्रवृत्ति को दिखा रहा है।

1951 में, भारत की जनसंख्या के 17.29 प्रतिशत यानी, 62.44 मिलियन लोग 2843 कस्बों में रह रहे थे। जबकि 2011 में भारत की जनसंख्या के 31.16 प्रतिशत अर्थात 377.10 मिलियन लोग 7935 कस्बों में रह रहे थे। यह निरपेक्ष संख्या, यूए/कस्बों की संख्या और नगरीय जनसंख्या के प्रतिशत भाग के रूप में स्थिर वृद्धि दर्शाती है। हालाँकि, 1981–2001 में नगरीय जनसंख्या में गिरावट दिखाने वाली दशकीय वृद्धि दर ने इस प्रवृत्ति को उलटा कर दिया और 2011 में इसमें मामूली सी वृद्धि देखी गई। 1951 में नगरीय आबादी की दशकीय वृद्धि दर 41.42 थी और 2011 में यह 31.80 थी।

आज़ादी के बाद पहली बार, निरपेक्ष रूप में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक वृद्धि देखने को मिली है, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों की वृद्धि दर में तेज़ी से आई गिरावट और नगरीय क्षेत्रों की वृद्धि दर के लगभग समान रहने के कारण हुई।

निष्कर्ष

आपको यह तो स्पष्ट लग रहा होगा कि उपनिवेशवाद केवल इतिहास का विषय नहीं बल्कि यह आज भी हमारे दैनिक जीवन में जटिल रूप में मौजूद है। इस अध्याय से यह प्रकट होता है कि औद्योगीकरण और नगरीकरण का मतलब केवल उत्पादन व्यवस्था, तकनीकी नवीनीकरण, आबादी की सघनता ही नहीं इसके अलावा, यह हमारे जीवन का एक अंतरंग हिस्सा है। आप स्वतंत्र भारत में औद्योगीकरण और शहरीकरण के बारे में और विस्तार से अध्याय-5 और 6 में पढ़ेंगे।

Reprint 2025-26

प्रश्नावली

1. उपनिवेशवाद का हमारे जीवन पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है? आप या तो किसी एक पक्ष जैसे संस्कृति या राजनीति को केंद्र में रखकर, या सारे पक्षों को जोड़कर विश्लेषण कर सकते हैं।
2. औद्योगीकरण और नगरीकरण का परस्पर संबंध है, विचार करें।
3. किसी ऐसे शहर या नगर को चुनें जिससे आप भली-भाँति परिचित हैं। उस शहर/नगर के इतिहास, उसके उद्‌भव और विकास, तथा समसामयिक स्थिति का विवरण दें।
4. आप एक छोटे कस्बे में या बहुत बड़े शहर, या अर्धनगरीय स्थान, या एक गाँव में रहते हैं—
   - जहाँ आप रहते हैं, उस जगह का वर्णन करें।
   - वहाँ की विशेषताएँ क्या हैं, आप को क्यों लगता है कि वह एक कस्बा है शहर नहीं, एक गाँव है कस्बा नहीं या शहर है गाँव नहीं?
   - जहाँ आप रहते हैं, क्या वहाँ कोई कारखाना है?
   - क्या लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती है?
   - क्या व्यवसाय वहाँ निर्णायक रूप में प्रभावशाली है?
   - क्या वहाँ इमारतें हैं?
   - क्या वहाँ शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध हैं?
   - लोग कैसे रहते और व्यवहार करते हैं?
   - लोग किस तरह बात करते और कैसे कपड़े पहनते हैं?

संदर्भ ग्रंथ

अल्वी हम्ज़ा एवं टिओडर शानिन (संपा.). 1982. इंट्रोडक्शन टू द सोसियोलॉजी ऑफ़ डेवलपिंग सोसाइटीज़, द मैकमिलन प्रेस, लंदन

चंद्र, बिपन. 1977. द राइज़ एंड ग्रोथ ऑफ़ इकोनॉमिक नेशनलिज़्म, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली

दत्त, ए. के. 1993. फ्रॉम कॉलोनियल सिटी टू ग्लोबल सिटी : द फार फ्रॉम कंप्लीट स्पेशियल ट्रांसफॉरमेशन ऑफ़ कलकत्ता, ब्रुन, एस.डी. और विलियम्स, जे. एफ. (संपा.) के सिटीज़ ऑफ़ द वर्ल्ड, पृष्ठ. 351–388, हार्पर कोलिंस, न्यूयार्क

गिडिंस, एंथोनी. 2001. सोसियोलॉजी (चौथा संस्करण), कैंब्रिज, पॉलिटी

मुखर्जी, डी. पी. 1979. सोसियोलॉजी ऑफ़ इंडियन कल्चर, रावत, जयपुर

नेहरू, जवाहरलाल. 1980. एन एंथोलॉजी, एस. गोपाल (संपा.), ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

नौंगबरी, तिपलुत. 2003. डेवलपमेंट, एथनिसिटी एंड जेंडर : सेलेक्ट एस्सेज़ ऑन ट्राइब्स इन इंडिया, रावत, जयपुर/दिल्ली

मितरा और फुकन. 2005. द कलेक्टर्स वाइफ, पेंग्विन बुक्स, नयी दिल्ली

पिनिओ, एच. आई. टी. एफ. 1984. लैंड वे: द लाइफ हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन केन वर्कर्स इन मॉरिशियस मोका : महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट

राव, एम.एस.ए., (संपा.). 1974. अर्बन सोसियोलॉजी इन इंडिया : रीडर एंड सोर्स बुक, ओरियंट लौंगमेन, दिल्ली

सरकार, सुमित. 1983. मॉडर्न इंडिया 1885–1947, मैकमिलन, मद्रास

वर्थ, लुइस. 1938. अर्बनिज़्म एज़ अवे ऑफ़ लाइफ, अमेरिकन जर्नल ऑफ़ सोसियोलॉजी, 44

© NCERT not to be republished

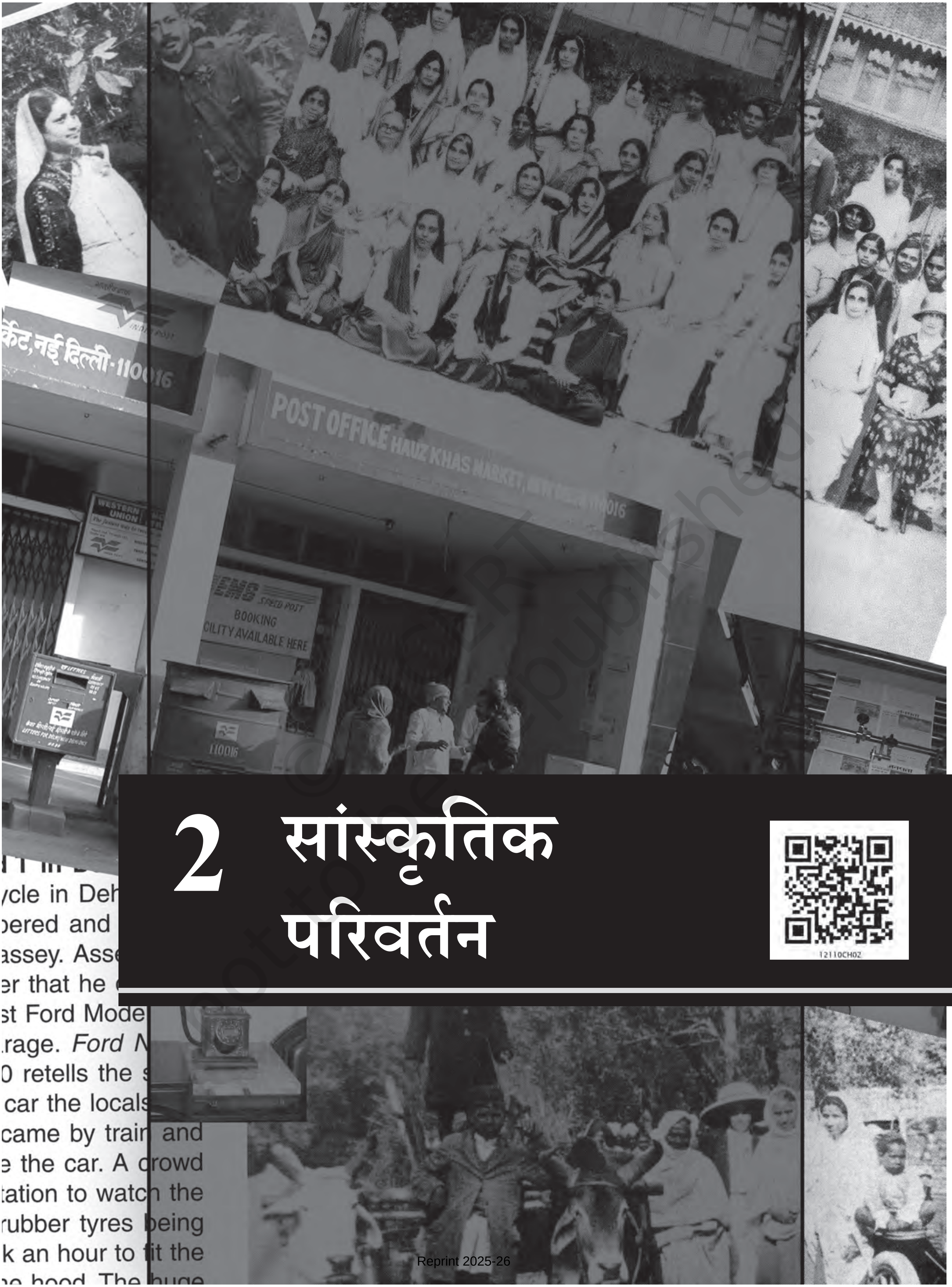

2 सांस्कृतिक परिवर्तन

© NCERT not to be republished

हमने पिछले अध्याय में यह जाना कि किस प्रकार उपनिवेशवाद से हुए परिवर्तनों ने भारतीय सामाजिक संरचना में बदलाव उत्पन्न किए। औद्योगीकरण और नगरीकरण ने जनजीवन में रूपांतरण किया। कुछ लोगों ने खेत के स्थान पर कारखानों में काम करना प्रारंभ किया। बहुत से लोग गाँवों को छोड़ शहरों में रहने लगे या कि रहने और कार्य करने की प्रणालियाँ अर्थात् संरचनाओं में परिवर्तन हुआ। संस्कृति, जीवनशैली, प्ररूप, मूल्य, फैशन और यहाँ तक कि भाव-भंगिमाओं में भी गुणात्मक बदलाव हुए। समाजशास्त्रियों की समझ में सामाजिक संरचना का अर्थ "लोगों के संबंधों की वह सतत व्यवस्था है जिसे कि सामाजिक रूप से स्थापित प्ररूप अथवा व्यवहार के प्रतिमान के रूप में सामाजिक संस्थाओं और संस्कृति के द्वारा परिभाषित और नियंत्रित किया जाता है।" आपने पहले ही अध्याय-1 में उन संरचनात्मक परिवर्तनों का अध्ययन कर लिया है जिन्हें उपनिवेशवाद ने उत्पन्न किया। इस अध्याय में आप यह जानेंगे कि वे संरचनात्मक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तनों को समझने के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं।

यहाँ आप दो परस्पर संबंधित घटनाओं के बारे में जानेंगे। ये दोनों उपनिवेशिक शासन के प्रभाव की जटिल उत्पत्ति हैं। पहली घटना का संबंध 19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों एवं प्रारंभिक 20वीं शताब्दी के राष्ट्रवादी नेताओं के सुनियोजित एवं सजग प्रयासों से संबंधित है। यह उन सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन लाने के लिए था जो महिलाओं एवं निम्न जातियों के साथ भेदभाव करते थे। दूसरी घटना उन कम सुनिश्चित परंतु निर्णायक परिवर्तनों से जुड़ी हुई है जो सांस्कृतिक व्यवहारों में हुए और जिन्हें संस्कृतीकरण, आधुनिकीकरण, लौकिकीकरण एवं पश्चिमीकरण की चार प्रक्रियाओं के रूप में समझा जा सकता है। ये बात बड़ी दिलचस्प है कि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया उपनिवेशवाद की शुरुआत से पहले से होती रही जबकि बाद की तीन प्रक्रियाएँ वास्तव में भारत के लोगों की वह जटिल प्रतिक्रियाएँ हैं जो उपनिवेशवाद से हुए परिवर्तनों के कारण हुईं।

2.1 उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुए समाज सुधार आंदोलन

राजा राम मोहन राय

पंडिता रमाबाई

सर सैयद अहमद खाँ

आप जान चुके हैं कि उपनिवेशवाद ने हमारे जीवन पर दूरगामी प्रभाव डाले। उन्नीसवीं सदी में हुए समाज सुधार आंदोलन उन चुनौतियों के जवाब थे जिन्हें औपनिवेशिक भारत महसूस कर रहा था। आप संभवतः उन सभी सामाजिक पहलुओं से अवगत हों जिन्हें भारतीय समाज में सामाजिक कुरीति माना जाता था। उन सामाजिक कुरीतियों से भारतीय समाज बुरी तरह से ग्रस्त था। सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा पुनर्विवाह निषेध और जाति-भेद कुछ इस प्रकार की कुरीतियाँ थीं। ऐसा नहीं है कि उपनिवेशवाद से पूर्व भारत में इन सामाजिक भेदभावों के विरुद्ध संघर्ष न हुए हों। ये बौद्ध धर्म के केंद्र में थे। ऐसे कुछ प्रयत्न, मुख्यतः भक्ति एवं सूफी आंदोलनों के केंद्र में भी थे। उन्नीसवीं सदी में हुए समाज सुधारक आधुनिक संदर्भ एवं मिश्रित विचारों से संबद्ध थे। यह प्रयास पश्चिमी उदारवाद के आधुनिक विचार एवं प्राचीन साहित्य के प्रतीक नयी दृष्टि के मिले-जुले रूप में उत्पन्न हुए।

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

मिश्रित विचार

बॉक्स 2.1

- *राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध करते हुए न केवल मानवीय व प्राकृतिक अधिकारों से संबंधित आधुनिक सिद्धांतों का हवाला दिया बल्कि उन्होंने हिंदू शास्त्रों का भी संदर्भ दिया।*
- *रानाडे ने विधवा-विवाह के समर्थन में शास्त्रों का संदर्भ देते हुए 'द टेक्स्ट ऑफ द हिंदू लॉ' जिसमें उन्होंने विधवाओं के पुनर्विवाह को नियम के अनुसार बताया। इस संदर्भ में उन्होंने वेदों के उन पक्षों का उल्लेख किया जो विधवा पुनर्विवाह को स्वीकृति प्रदान करते हैं और उसे शास्त्र सम्मत मानते हैं।*
- *शिक्षा की नयी प्रणाली में आधुनिक और उदारवादी प्रवृत्ति थी। यूरोप में हुए पुनर्जागरण, धर्म-सुधारक आंदोलन और प्रबोधन आंदोलन से उत्पन्न साहित्य को सामाजिक विज्ञान और भाषा-साहित्य में सम्मिलित किया गया। इस नए प्रकार के ज्ञान में मानवतावादी, पंथनिरपेक्ष और उदारवादी प्रवृत्तियाँ थीं।*
- *सर सैयद अहमद खान ने इस्लाम की विवेचना की और उसमें स्वतंत्र अन्वेषण की वैधता (इजतिहाद) का उल्लेख किया। उन्होंने कुरान में लिखी गई बातों और आधुनिक विज्ञान द्वारा स्थापित प्रकृति के नियमों में समानता जाहिर की।*
- *कंदुकीरी विरेशलिंगम की पुस्तक 'द सोर्स ऑफ़ नॉलेज' में नव्य-न्याय के तर्कों को देखा जा सकता है। उन्होंने जुलियस हक्सले, एक प्रख्यात जीव विज्ञानी द्वारा लिखे ग्रंथों को भी अनुवादित किया।*

समाजशास्त्री सतीश सबरवाल ने औपनिवेशिक भारत में आधुनिक पविर्तनों की रूपरेखा से जुड़े निम्नलिखित तीन पहलुओं की विवेचना की है–

- संचार माध्यम
- संगठनों के स्वरूप, तथा
- विचारों की प्रकृति

नयी प्रौद्योगिकी ने संचार के विभिन्न स्वरूपों को गति प्रदान की। प्रिंटिंग प्रेस, टेलीग्राफ़ तथा बाद में माइक्रोफ़ोन, लोगों के आवागमन एवं पानी के जहाज़ तथा रेल के आने से यह संभव हुआ। साथ ही रेल से वस्तुओं के आवागमन में नवीन विचारों को तीव्र गति प्रदान करने में सहायता प्रदान की। इससे नए विचारों को भी जैसे पंख लग गए। भारत में पंजाब और बंगाल के समाज सुधारकों के विचार-विनिमय मद्रास और महाराष्ट्र के समाज सुधारकों से होने लगे। बंगाल के केशव चंद्र सेन ने 1864 में मद्रास का दौरा किया। पंडिता रमाबाई ने देश के अनेक क्षेत्रों का दौरा किया। इनमें से कुछ ने तो विदेशों का भी दौरा किया। ईसाई मिशनरी तो सुदूर क्षेत्रों जैसे आज के नागालैंड, मिजोरम और मेघालय में भी गए।

आधुनिक सामाजिक संगठनों जैसे बंगाल में ब्रह्म समाज और पंजाब में आर्य समाज की स्थापना हुई। 1914 ई. में *अंजुमन-ए-ख्वातीन-ए-इस्लाम* की स्थापना हुई। ये भारत में मुस्लिम महिलाओं की राष्ट्र स्तरीय संस्था थी। समाज सुधारकों ने सभाओं व गोष्ठियों के अलावा जन-संचार के माध्यम जैसे अखबार, पत्रिका आदि के माध्यम से भी सामाजिक विषयों पर वाद-विवाद जारी रखा। समाज सुधारकों द्वारा लिखे हुए विचारों का अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। उदाहरण के लिए विष्णु शास्त्री ने, सन् 1868 में, इंदु प्रकाश ने विद्यासागर की पुस्तक का मराठी अनुवाद प्रकाशित किया।

स्वतंत्रता एवं उदारवाद के नवीन विचार, परिवार रचना एवं विवाह से संबंधित नए विचार, माँ एवं पुत्री की नवीन भूमिका एवं परपंरा एवं संस्कृति में स्वचेतन गर्व के नवीन विचार आए। शिक्षा के मूल्य अत्यंत महत्वपूर्ण हुए। यह समझा गया कि राष्ट्र का आधुनिक बनना ज़रूरी है लेकिन प्राचीन विरासत को बचाए

© NCERT not to be republished

The first Ford T in Dehra Dun

The first ever bicycle in Dehra Dun was brought dismembered and packed in a box by Alfred Massey. Assembled, it caused such a flutter that he decided to bring the first Ford Model T to Massey's Garage. *Ford News*, January 11, 1980 retells the story: '1914: It was the first car the locals had ever seen.... People came by train and bullock cart to see the car. A crowd went to the station to watch the "engine" with rubber tyres being unloaded. It took an hour to fit the wheels and open the hood. The huge packing case was bought by a hawker to serve as a shop. Some 14 men, women, and children climbed on the car and were given their first motor ride up to the family's garage'. Here, Sarah (next to the child) stands with her mother beside the car.

रखना भी ज़रूरी है। महिलाओं की शिक्षा के विषय में भी व्यापक बहस हुई। यह महत्वपूर्ण है कि समाज सुधारक जोतिबा फुले (इन्हें ज्योतिबा भी कहा जाता है) ने पुणे में महिलाओं के लिए पहला विद्यालय खोला। सुधारकों ने एकमत होकर ये माना कि समाज के उत्थान के लिए महिलाओं का शिक्षित होना ज़रूरी है। उनमें से कुछ का ये भी विश्वास था कि आधुनिकता के उदय से पहले भी भारत में स्त्रियाँ शिक्षित हुआ करती थीं। लेकिन बहुत से विचारकों ने इसका खंडन करते हुए यह माना कि महिला शिक्षा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त समूहों को ही प्राप्त थी। इस प्रकार महिलाओं की शिक्षा को न्यायोचित ठहराने के विचारों को आधुनिक व पारंपरिक दोनों ही विचारधाराओं का समर्थन मिला।

वीरेशलिंगम

विद्यासागर

जोतिबा फुले

सुधारकों ने आधुनिकता और परंपरा पर विस्तृत वाद-विवाद भी किए। इस प्रसंग में ये जानना रोचक है कि जोतिबा फुले ने आर्यों के आगमन से पूर्व के काल को अच्छा माना जबकि बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों के युग को गरिमामय माना। दूसरे शब्दों में 19वीं सदी में हो रहे सुधारों ने एक ऐसा दौर उत्पन्न किया जिसमें बौद्धिक तथा सामाजिक उन्नति के प्रश्न और उनकी पुनर्व्याख्या सम्मिलित हैं।

विभिन्न प्रकार के समाज सुधारक आंदोलनों में कुछ विषयगत समानताएँ थी। परंतु साथ ही अनेक महत्वपूर्ण असहमतियाँ भी थीं। कुछ में उन सामाजिक मुद्दों के प्रति चिंता थी जो उच्च जातियों के मध्यवर्गीय

क्रियाकलाप 2.1

निम्नलिखित समाज सुधारकों के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करें, जैसेकि किसने किस मुद्दे या समस्या पर काम किया, कैसे संघर्ष किया, किस प्रकार जागरूकता फैलाई, क्या उन्हें किसी प्रकार के विरोध का सामना करना पड़ा?

- *वीरेशलिंगम*
- *पंडिता रमाबाई*
- *विद्यासागर*
- *दयानंद सरस्वती*
- *जोतिबा फुले*
- *श्री नारायण गुरु*
- *सर सैयद अहमद खान*
- *कोई अन्य*

© NCERT not to be republished

महिलाओं और पुरुषों से संबंधित थी। जबकि कुछ ने तो ये माना कि सारी समस्याओं का मूल कारण सच्चे हिंदुत्व के सच्चे विचारों का कमज़ोर होना था। कुछ के लिए तो धर्म में जाति एवं लैंगिक शोषण अंतर्निहित था। ये तो हिंदू धर्म से संबंधित समाज सुधारक वाद-विवाद था। इसी तरह मुस्लिम समाज सुधारकों ने बहुविवाह और पर्दा प्रथा पर सक्रिय स्तर पर बहस की। उदाहरण के लिए जहाँआरा शाह नवास ने अखिल भारतीय मुस्लिम महिला सम्मेलन में, बहुविवाह की कुप्रथा के विरुद्ध प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

> *उनके अनुसार : ...जिस प्रकार का बहुविवाह मुस्लिम समुदाय के कुछ हिस्सों में होता है वह वस्तुतः कुरान की मूल भावनाओं के खिलाफ़ है... ये शिक्षित औरतों की ज़िम्मेदारी है कि वो अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर अपने रिश्तेदारों को बहुविवाह करने से रोकें।*

बहुविवाह के खिलाफ लाए गए प्रस्ताव से उर्दू भाषा के अखबारों, पत्रिकाओं आदि में एक बहस छिड़ गई। पंजाब से निकलने वाली महिलाओं की एक पत्रिका 'तहसिब-ए-निसवान' ने खुलकर बहुविवाह-विरोधी इस प्रस्ताव का समर्थन किया, जबकि अन्य पत्रिकाओं ने इसका विरोध किया (चौधरी 1993:111)। समुदायों के भीतर इस तरह की बहस उन दिनों आम बात थी। उदाहरण के लिए ब्रह्म समाज ने सती प्रथा का विरोध किया। प्रतिवाद में, बंगाल में हिंदू समाज के रूढ़िवादियों ने धर्म सभा का गठन किया जिसकी तरफ़ से ब्रिटिश सरकार को एक याचिका भेजी गयी।

2.2 विभिन्न प्रकार के सामाजिक परिवर्तन

इस अध्याय में संस्कृतीकरण, आधुनिकीकरण, पंथनिरपेक्षीकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणाओं का विभिन्न वर्गों में अध्ययन किया गया है। जैसे-जैसे हम अपनी विवेचना में आगे बढ़ेंगे हम पाएँगे कि ये चारों अवधारणाएँ कहीं न कहीं एक दूसरे से संबंधित हैं और कई स्थितियों में एक साथ पाई जाती हैं। ये कई स्थितियों में अलग-अलग ढंग से सक्रिय होती हैं। यह आश्चर्यजनक नहीं कि एक ही व्यक्ति एक जगह पर आधुनिक होता है तो दूसरी भिन्न स्थिति में वो पारंपरिक भी होता है। इस प्रकार की स्थिति भारतवर्ष में तथा अन्य अनेक गैर-पाश्चात्य देशों में स्वाभाविक है।

लेकिन आप जानते हैं कि समाजशास्त्र की विषय-वस्तु प्राकृतिक विश्लेषण पर आधारित नहीं है। (जैसाकि आपने अध्याय-1, *समाजशास्त्र परिचय* में पढ़ा है।) पिछले अध्याय में आपने जाना था कि औपनिवेशिक आधुनिकता में आंतरिक विरोधाभास था। उदाहरण के लिए पश्चिमी शिक्षा को लें। उपनिवेशवाद के दौरान अंग्रेज़ी शिक्षा से एक नए मध्य वर्ग का जन्म हुआ। अंग्रेज़ी भाषा में कुशल नए मध्यवर्गीय भारतीयों ने पश्चिम के अनेक दार्शनिकों के विचारों को पढ़ा-जाना तथा उनके उदार-प्रजातंत्र की अवधारणा से अवगत हुए। इन भारतीयों ने भारत को उदारता और प्रगतिशीलता के एक नए रास्ते पर लाने का सपना देखा। लेकिन फिर भी, औपनिवेशिक शासन से भारतीय स्वाभिमान को चोट लगी तो इन मध्यवर्गीय भारतीयों ने

क्रियाकलाप 2.2

समाजशास्त्र में इनका अर्थ पढ़ने के पूर्व यह रुचिकर होगा कि आप कक्षा में निम्नलिखित शब्दों का क्या अर्थ है, पर विचार करें।

- *आप किस तरह के व्यवहार को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करेंगे—*
  - *पश्चिमी*
  - *आधुनिक*
  - *धर्मनिरपेक्ष*
  - *सांस्कृतिक*
- *क्यों?*
- *इस अध्याय को पढ़ने के बाद पुनः क्रियाकलाप 2.2 पर आएँ।*
- *क्या आप इन शब्दों के सामान्य अर्थ एवं समाजशास्त्रीय अर्थ में कोई अंतर पाते हैं?*

© NCERT not to be republished

आधुनिकता एवं परंपरा का मिश्रण

क्रियाकलाप 2.3

- *कुछ इस प्रकार के अन्य उदाहरणों का उल्लेख करें जो आप दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में और व्यापक स्तर पर पाते हैं-*

My father's clothes represented his inner life very well. He was a south Indian Brahmin gentleman. He wore neat white turbans, a Sri Vaisnava caste mark ..yet wore Tootal ties, Kromentz buttons and collar studs, and donned English serge jackets over his muslin dhotis which he wore draped in traditional Brahmin style.

Source: A.K. Ramanujan in Marriot ed. 1990: 42

पारंपरिक ज्ञान और मेधा पर गर्व जताया। इस प्रवृत्ति को आप 19वीं सदी के सुधार आंदोलनों में भी देख चुके हैं।

इस अध्याय में आपको स्पष्ट होगा कि आधुनिकता के कारण न केवल नए विचारों को राह मिली बल्कि परंपरा पर भी पुनर्विचार हुआ और उसकी पुनर्विवेचना भी हुई। संस्कृति और परंपरा, दोनों का ही अस्तित्व सजीव है। मानव उन दोनों को ही सीखता है और साथ ही इनमें बदलाव लाता है। हम दैनिक जीवन से उदाहरण लेते हैं, जैसे— आज के भारत में किस प्रकार से साड़ी या जैन सेम या सरोंग पहना जाता है। पारंपरिक रूप से साड़ी, जो एक प्रकार का ढीला–बगैर सिला हुआ कपड़ा होता है, को विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से पहना जाता है। आधुनिक युग में मध्यवर्गीय महिलाओं में साड़ी पहनने के एक मानक तरीके का प्रचलन हुआ जिसमें पारंपरिक साड़ी को पश्चिमी पेटीकोट और ब्लाउज के साथ पहना जाने लगा।

भारत की संरचनात्मक और सांस्कृतिक विविधता स्वतः प्रमाणित है। यह विविधता उन विभिन्न तरीकों को आकार देती है जिसमें आधुनिकीकरण या पश्चिमीकरण, संस्कृतीकरण या पंथनिरपेक्षीकरण, विभिन्न समूहों के लोगों को अलग प्रभावित करते हैं या प्रभावित नहीं करते। इस पाठ के अगले पृष्ठों में आप इन भिन्नताओं को देखेंगे। स्थानाभाव के कारण हम इसकी विस्तृत व्याख्या नहीं करेंगे। आपसे अपेक्षा की जाती है कि आधुनिकीकरण के उन जटिल पक्षों को रेखांकित करें एवं उनका विवेचन करें जिन्होंने देश के विभिन्न भागों में लोगों को प्रभावित किया अथवा एक ही क्षेत्र में विभिन्न जातियों एवं वर्गों को प्रभावित किया और एक ही वर्ग अथवा समुदाय से संबधित पुरुषों एवं महिलाओं को प्रभावित किया।

Reprint 2025-26

2.3 सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकार

संस्कृतीकरण

संस्कृतीकरण शब्द की उत्पत्ति एम.एन. श्रीनिवास ने की। संस्कृतीकरण का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें निम्न जाति या जनजाति या अन्य समूह उच्च जातियों विशेषकर, द्विज जाति की जीवन पद्धति, अनुष्ठान, मूल्य, आदर्श, विचारधाराओं का अनुकरण करते हैं।

संस्कृतीकरण के बहुआयामी प्रभाव हैं। इसके प्रभाव भाषा, साहित्य, विचारधारा, संगीत, नृत्य, नाटक, अनुष्ठान व जीवन पद्धति में देखे जा सकते हैं।

मूलतः संस्कृतीकरण की प्रक्रिया हिंदू समाज के अंतर्गत विद्यमान है। यद्यपि श्रीनिवास को गैर हिंदू संप्रदायों और समूहों में भी यह प्रक्रिया दिखाई पड़ती है। विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन से यह पाया गया है कि यह प्रक्रिया देश के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग ढंग से होती है। जिन क्षेत्रों में उच्चस्तरीय सांस्कृतिक जातियाँ प्रभुत्वशाली थीं, उस क्षेत्र की संपूर्ण संस्कृति में किसी न किसी स्तर का संस्कृतीकरण हुआ। जहाँ गैर संस्कृतीकरण जातियाँ प्रभुत्वशाली थीं, वहाँ की संस्कृति को इन जातियों ने प्रभावित किया। इस प्रक्रिया को श्रीनिवास ने विसंस्कृतीकरण की संज्ञा दी। इसके अलावा अन्य क्षेत्रीय विभिन्नताएँ भी पाई जाती हैं। कई सदियों तक 19वीं शताब्दी के तीन चौथाई भाग तक पारसियों को प्रभुत्वशाली माना जाता था।

> *Kumudtai's journey into Sanskrit began with great interest and eagerness with Gokhale Guruji, her teacher at school…At the University, the Head of the Department was a well-known scholar and he took great pleasure in taunting Kumudtai… Despite the adverse comments she successfully completed her Masters in Sanskrit….*
>
> *Source: Kumud Pawade (1938)*

श्रीनिवास का तर्क है कि, "किसी भी समूह का संस्कृतीकरण उसकी प्रस्थिति को स्थानीय जाति संस्तरण में उच्चता की तरफ़ ले जाता है। सामान्यतया यह माना जाता है कि संस्कृतीकरण संबंधित समूह की आर्थिक अथवा राजनीतिक स्थिति में सुधार है अथवा हिंदुत्व की महान-परंपराओं का किसी स्रोत के साथ उसका संपर्क होता है। परिणामस्वरूप उस समूह में उच्च चेतना का भाव उभरता है। महान परंपराओं का यह स्रोत कोई तीर्थ स्थल हो सकता है, कोई मठ हो सकता है अथवा कोई मतांतर वाला संप्रदाय हो सकता है।" लेकिन तीव्र असमानता वाला समाज, जैसे भारतीय समाज में, उच्च जातियों की जीवनशैली, अनुष्ठान, ज्ञान आदि को निम्न जातियों द्वारा अपनाना मुश्किल है, क्योंकि इसके लिए अनेक सामाजिक रुकावटें हैं। वस्तुतः पारंपरिक तौर पर उच्च जाति के लोग उन निम्न जातीय लोगों को दंडित करते थे जो इस प्रकार की चेष्टा करने का साहस जुटा पाते थे। नीचे दिए गए उद्धरण से आप उपरोक्त विचार को समझ सकते हैं—

कुमुद पावड़े ने अपनी आत्मकथा में स्मरण किया है कि कैसे एक दलित महिला संस्कृत की शिक्षक बनी। शायद यह एक ऐसा माध्यम है जो उन्हें उन क्षेत्रों में जाने देता जिनमें अब तक लैंगिक प्रस्थिति एवं जाति के आधार पर प्रवेश संभव नहीं था। शायद वो संस्कृत के ज्ञान के लिए इसलिए भी प्रेरित हुईं ताकि वो मूल संस्कृत साहित्य में स्त्री और दलितों के बारे में कही गई बातों को जान सकें। जैसे-जैसे वो अपने अध्ययन में आगे बढ़ी, उन्हें अनेक प्रकार की सामाजिक प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ा जिनमें आश्चर्य से लेकर ईर्ष्या तक सम्मिलित थी। साथ ही उसमें संरक्षित स्वीकृति से लेकर पूर्ण अस्वीकृति तक के पक्ष सम्मिलित थे। जैसा कि वह कहती हैं—

Reprint 2025-26

इसका परिणाम ये हुआ कि मैं अपनी जाति को भूलने की पूरी कोशिश करती हूँ लेकिन ये प्रायः असंभव है और इससे मुझे वो अनुभव याद आता है जो मैंने कहीं सुना था: "जो जन्म से मिला हो, और जो मरने के बाद भी नष्ट न हो – वो जाति है।"

संस्कृतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसमें व्यक्ति सांस्कृतिक दृष्टि से प्रतिष्ठित समूहों के रीति रिवाज एवं नामों का अनुकरण कर अपनी प्रस्थिति को उच्च बनाते हैं। संदर्भ प्रारूप अधिकतर आर्थिक रूप में बेहतर होता है। दोनों ही स्थितियों में यह संकेत विद्यमान हैं कि जब व्यक्ति धनवान होने लगते हैं तो उनकी आकांक्षाओं और इच्छाओं को प्रतिष्ठित समूह भी स्वीकारने लगते हैं।

संस्कृतीकरण की अवधारणा की अनेक स्तरों पर आलोचना की गई है। सर्वप्रथम, इस अवधारणा की आलोचना में यह कहा जाता है कि इसमें सामाजिक गतिशीलता निम्न जाति का सामाजिक स्तरीकरण में उर्ध्वगामी परिवर्तन करती है, को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। इस प्रक्रिया से कोई संरचनात्मक परिवर्तन न होकर केवल कुछ व्यक्तियों का स्थिति परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि कुछ व्यक्ति, असमानता पर आधारित सामाजिक संरचना में, अपनी स्थिति में तो सुधार कर लेते हैं लेकिन इससे समाज में व्याप्त असमानता व भेदभाव समाप्त नहीं हो जाते। दूसरा, आलोचनात्मक पक्ष यह है कि इस अवधारणा की विचारधारा में उच्चजाति की जीवनशैली उच्च एवं निम्न जाति के लोगों की जीवनशैली निम्न है। अतः उच्च जाति के लोगों की जीवनशैली का अनुकरण करने की इच्छा को वांछनीय और प्राकृतिक मान लिया गया है।

क्रियाकलाप 2.4

संस्कृतीकरण के भाग को गौर से पढ़ें 'क्या आपको इस प्रक्रिया में जेंडर पर आधारित सामाजिक भेदभाव के सबूत दिखते हैं। जैसे कि यह प्रक्रिया महिलाओं को पुरुषों से अलग दर्शाती है। क्या आपको लगता है कि यह प्रक्रिया पुरुषों की स्थिति में कोई परिवर्तन लाती है, जबकि महिलाओं के लिए सत्य इससे विपरीत है।'

तीसरी आलोचना यह है कि संस्कृतीकरण की अवधारणा एक ऐसे प्रारूप को सही ठहराती है जो दरअसल असमानता और अपवर्जन पर आधारित है इससे संकेत मिलता है कि पवित्रता और अपवित्रता के जातिगत पक्षों को उपयुक्त माना जाए।

चौथी आलोचना में यह कहा जाता है कि उच्च जाति के अनुष्ठानों, रिवाजों और व्यवहार को संस्कृतीकरण के कारण स्वीकृति मिलने से लड़कियों और महिलाओं को असमानता की सीढ़ी में सबसे नीचे धकेल दिया जाता है। इससे कन्यामूल्य के स्थान पर दहेज प्रथा और अन्य समूहों के साथ जातिगत भेदभाव इत्यादि बढ़ गए हैं।

पाँचवीं दलित संस्कृति एवं दलित समाज के मूलभूत पक्षों को भी पिछड़ापन मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, निम्न जाति के लोगों द्वारा किए गए श्रम को भी निम्न एवं शर्मदायक माना जाता है। उन कार्यों को सभ्य नहीं माना जाता है जिन्हें निम्न जाति के लोग करते हैं। उनसे जुड़े सभी कार्यों, जैसे— शिल्प तकनीकी योग्यता, विभिन्न औषधियों की जानकारी, पर्यावरण का ज्ञान, कृषि ज्ञान, पशुपालन संबंधी जानकारी इत्यादि को औद्योगिक युग में गैर उपयोगी मान लिया गया है।

ब्राह्मण-विरोधी आंदोलन एवं क्षेत्रीय स्वचेतना के विकास ने 20वीं शताब्दी में ऐसे प्रयासों को जन्म दिया जिसके अंतर्गत अनेक भारतीय भाषाओं से संस्कृत के शब्दों एवं मुहावरों को हटा दिया गया। पिछड़े वर्गों के आंदोलनों का एक निर्णायक परिणाम यह हुआ कि जातीय समूह एवं व्यक्तियों की उर्ध्वगामी गतिशीलता में पंथनिरपेक्ष कारकों की भूमिका पर बल दिया जाने लगा। प्रभुत्व जाति की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अब वैश्य, क्षत्रिय एवं ब्राह्मण वर्ण से संबंधित लोगों को जाति पहचान बताने की कोई इच्छा नहीं थी। बल्कि दूसरी ओर प्रभुत्व जातीय सदस्यता प्रतिष्ठा का सूचक बन गई है। विगत वर्षों में ऐसी ही भावना दलितों में भी आई है जो अपने को दलित बताने में प्रतिष्ठा अनुभव करते हैं।

पश्चिमीकरण

आप पहले अध्याय में हमारे पश्चिमी-औपनिवेशिक अतीत के बारे में जान चुके हैं। ये भी जाना कि इसके प्रभाव से अनोखे व विरोधाभासी परिवर्तन आए। एम. एन. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण की परिभाषा देते हुए कहा कि यह भारतीय समाज और संस्कृति में, लगभग 150 सालों के ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप आए परिवर्तन हैं, जिसमें विभिन्न पहलू आते हैं, जैसे— प्रौद्योगिकी, संस्था, विचारधारा, और मूल्य।

पश्चिमीकरण के विभिन्न प्रकार रहे हैं। एक प्रकार के पश्चिमीकरण का मतलब उस पश्चिमी उप सांस्कृतिक प्रतिमान से है जिसे भारतीयों के उस छोटे समूह ने अपनाया जो पहली बार पश्चिमी संस्कृति के संपर्क में आए हैं। इसमें भारतीय बुद्धिजीवियों की उपसंस्कृति भी शामिल थी। इन्होंने न केवल पश्चिमी प्रतिमान चिंतन के प्रकारों, स्वरूपों एवं जीवनशैली को स्वीकारा बल्कि इनका समर्थन एवं विस्तार भी किया। 19वीं सदी के अनेक समाज सुधारक इसी प्रकार के थे। दिए गए बॉक्सों से आपको विभिन्न प्रकार के पश्चिमीकरण के बारे में ज्ञान होगा।

क्रियाकलाप 2.5

- *क्या आप ऐसे भारतीयों के विषय में सोच सकते हैं जो अपनी पोशाक एवं अभिव्यक्ति से पूर्णरूपेण पश्चिमी हों परंतु उनमें प्रजातांत्रिक व समानता के मूल्यों की कोई छाप न हो जोकि आधुनिक दृष्टिकोण के भाग हैं। हम आपको दो उदाहरण दे रहे हैं। क्या आप ऐसे अन्य उदाहरण वास्तविक जीवन एवं फ़िल्मों में पाते हैं।*
  हम ऐसे अनेक लोगों को देखते हैं जो पश्चिमी शिक्षा प्राप्त हैं लेकिन कुछ विशिष्ट सजातीय अथवा धार्मिक समुदायों के विषय में उनके विचार पूर्वाग्रही हैं। एक परिवार जिसने पश्चिमी संस्कृति के बाह्य स्वरूप को स्वीकार कर लिया है, जिसे उनके आवास की आंतरिक साज-सज्जा में देखा जा सकता है परंतु समाज में महिलाओं की भूमिकाओं के विषय में उनके विचार अत्यंत संकीर्ण हैं। बालिका भ्रूण हत्या, महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण एवं अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग।
- *आपको ये भी चर्चा करनी है कि इस तरह का दोहरापन और विरोधाभास केवल भारतीयों में ही देखने को मिलता है या गैर पश्चिमी समाज में रह रहे लोगों में भी व्याप्त है? क्या यह उतना ही सच नहीं है कि पश्चिमी समाजों में भी प्रजातीय एवं भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण विद्यमान है।*

अतः हम पाते हैं कि ऐसे लोग कम ही थे जो पश्चिमी जीवन शैली को अपना चुके थे या जिन्होंने पश्चिमी दृष्टिकोण से सोचना शुरू कर दिया था। इसके अलावा अन्य पश्चिमी सांस्कृतिक तत्वों जैसे नए उपकरणों का प्रयोग, पोशाक, खाद्य-पदार्थ तथा आम लोगों की आदतों और तौर-तरीकों में परिवर्तन आदि थे। हम पाते हैं कि पूरे देश में मध्य वर्ग के एक बड़े हिस्से के परिवारों में टेलीविजन, फ्रिज, सोफा सेट, खाने की मेज और उठने-बैठने के कमरे में कुर्सी आदि आम बात है।

पश्चिमीकरण में किसी संस्कृति-विशेष के बाह्य तत्त्वों के अनुकरण की प्रवृत्ति भी होती है। परंतु आवश्यक नहीं कि वे प्रजातंत्र और सामाजिक समानता जैसे आधुनिक मूल्यों में भी विश्वास रखते हों।

जीवनशैली एवं चिंतन के अलावा भारतीय कला और साहित्य पर भी पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ा। अनेक कलाकार जैसे रवि वर्मा, अबनिंद्रनाथ टैगोर, चंदू मेनन, और बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय सभी औपनिवेशिक स्थितियों के साथ अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ कर रहे थे। अगले पृष्ठ पर दिए गए बॉक्स में आपको पता चलेगा कि रवि वर्मा जैसे कलाकार की शैली, प्रविधि और कलात्मक विषय को पश्चिमी संस्कृति तथा देशज परंपराओं ने निर्मित किया। इस बॉक्स में उस चित्र की चर्चा हुई है जिसमें रवि वर्मा

© NCERT not to be republished

बॉक्स 2.2

1870 में रवि वर्मा को किजाक्के पलाट कृष्णा मेनन के परिवार का चित्रांकन करने के लिए अनुबंधित किया गया।... यह एक परिवर्ती कार्य था जो परिवर्तन के स्तर से गुजरते समय का सूचक था। इसमें सपाट द्विआयामी शैली का मिश्रण होता है। साथ ही पुराने जमाने का जल-मिश्रण, रंग तथा नयी तकनीक, दृष्टिकोणों एवं छायात्मकता

की नवीन प्रविधियों की उपस्थिति मिलती है जो कि तैलीय चित्र के रूप में व्यक्त होती है... इसकी अन्य विशेषता है स्थानों के वितरण करने की प्रविधि जैसे उम्र और स्तरीकरण के अनुसार बैठे हुए व्यक्तियों की व्यवस्था, उससे 19वीं सदी के उन यूरोपीय चित्रों की याद आती है जिसमें बुर्जुवा परिवार दिखाए गए हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि ये पेंटिंग मातृवंशीय केरल के नायरों की हैं जो कि कृष्णा मेनन की जाति थी, उस वक्त बनायी गई थी जब वे पितृस्थानीय एकल परिवार से ज़्यादा परिचित भी नहीं थे...

(स्रोत : जी. अरुणिमा "फेस वेल्यू: रवि वर्मास् पोर्टेचर एंड द प्रोजेक्ट ऑफ़ कॉलोनियल मॉडर्निटी" दी इंडियन इकोनॉमिक्स एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 40, 1 (2003) (पृष्ठ 57–80)।

राजा रवि वर्मा

ने केरल के देशीय समुदाय के एक परिवार का चित्रण किया है; तथा वो चित्र जिसमें एक ऐसा परिवार है जो कि आधुनिक पश्चिमी विशिष्ट पितृवंशीय एकाकी परिवार लगता है, जिसमें पिता, माता और बच्चे सम्मिलित हैं।

उपरोक्त विवेचना और उदाहरणों से यह पता चलता है कि सांस्कृतिक परिवर्तन विभिन्न स्तरों पर हुआ और इसके मूल में हमारा, औपनिवेशिक काल में पश्चिम से परिचय था। आज के युग में पीढ़ियों के बीच संघर्ष और मतभेद को एक प्रकार के सांस्कृतिक संघर्ष और मतभेद के रूप में भी देखा जाता है जो कि पश्चिमीकरण का परिणाम है। निम्नलिखित कथन को पढ़ते हुए आप इस अंतराल को समझेंगे क्या आपने इसे देखा है या ऐसा अनुभव किया है? आप अपने आप से ये प्रश्न पूछें कि क्या केवल पश्चिमीकरण ही पीढ़ियों के बीच होने वाले संघर्ष का कारण है? क्या ये संघर्ष आवश्यक बुराई है?

श्रीनिवास के अनुसार, निम्न जाति के लोग संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को अपनाते हैं जबकि उच्च जाति के लोग पश्चिमीकरण को। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में, इस तरह का सामान्यीकरण अनुपयुक्त है। जैसे कि केरल के थिय्या; (जो किसी भी प्रकार उच्च जाति के नहीं हैं), के अध्ययन से पता लगता है कि थिय्या भी पश्चिमीकरण की इच्छा रखते हैं और भरसक प्रयास भी करते हैं। अभिजात थिय्याओं ने तो ब्रिटिश संस्कृति को स्वीकार किया और एक ऐसी विश्वजनीन जीवन-शैली की महत्त्वाकांक्षा की जो जाति व्यवस्था की आलोचना करती है। ठीक इसी तरह पश्चिमी शिक्षा से लगता है कि उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में विभिन्न समूहों के लोगों के लिए नवीन अवसर उत्पन्न होंगे। निम्नलिखित उद्धरण से ये बात स्पष्ट होती है।

Reprint 2025-26

प्राय: मध्य वर्ग में पश्चिमीकरण से आया पीढ़ियों का मतभेद अधिक जटिल होता है— **बॉक्स 2.3**

...हालाँकि वे मेरे अपनी ही मांस मज्जा से हैं, लेकिन कभी-कभी वे मुझे पूरी तरह से अपरिचित से लगते हैं। हमारे बीच में कुछ भी समान नहीं है... न तो उनके जैसा सोचने का तरीका, न ही उनके जैसा पहनना-ओढ़ना, न ही बोलना-चालना। वे नयी पीढ़ी के हैं। मेरे सोचने का तरीका उनसे इतना अलग है कि हमारे बीच किसी भी प्रकार की पारस्परिकता असंभव है। फिर भी मैं उनको अपने हृदय से प्यार करती हूँ। मैं उन्हें हर वो चीज़ देना चाहूँगी जो वो चाहें क्योंकि उनकी खुशी ही मेरी इच्छा है। रबिंद्रनाथ के वो शब्द मेरे हृदय में एक मार्मिक अनुभव देते हैं— "तुम्हारा समय है; अब मेरे अंत की शुरुआत है।" मैं और मेरे बच्चे पल्लव, कल्लोल और किंगकिनी में कुछ भी समान नहीं है। पल्लव एक अलग देश में, एकदम से अलग संस्कृति में रहता है। उदाहरणस्वरूप, हम बारह साल की उम्र से मेखला चादर पहनते रहे थे। लेकिन मेरी बेटी किंगकिनी जो गुवाहाटी विश्वविद्यालय में बिजनेस मैनेजमेंट की विद्यार्थी है, पैंट और बैगी कमीज पहनती है और कल्लोल को अपने चेहरे पर उलझे हुए बाल रखना अच्छा लगता है। जब मैं मीरा के भजन सुनना चाहती हूँ, कल्लोल और किंगकिनी व्हिटनी हस्टन के पॉप गीत सुनना पसंद करते हैं। कभी-कभार जब मैं बरगीत की कुछ लाइनें गाने की कोशिश करती हूँ, किंगकिनी अपने गिटार पर पश्चिमी धुन बजाना चाहती है।

स्रोत : अनिमा दत्ता से उद्धृत, *1999* "एज़ डेज रोल ऑन" इन वूमनः ए कलेक्शन ऑफ़ असामिज शॉर्ट स्टोरीज, डायमंड जुबली वॉल्यूम, गुवाहाटी स्पेक्टर्म पब्लिकेशंस।

हम प्राय: पश्चिमीकरण की विवेचना करते हुए उपनिवेशवाद के प्रभाव का हवाला अवश्य देते हैं, लेकिन इसके अलावा हम यह भी पाते हैं कि हमारे समसामयिक जीवन में पश्चिमीकरण के अनेक स्वरूप उपस्थित होते हैं।

Reprint 2025-26

बॉक्स 2.4

मेरे दादा जो अन्य नागाओं की तरह ही यूरोपियनों के संपर्क में आए थे वे यह मानते थे कि शिक्षा से ही जीवन में आगे बढ़ा जा सकता है। उन्होंने अपने बच्चों के लिए वैसा ही जीवन चाहा जैसा उन्होंने ब्रिटिश प्रशासकों और मिशनरियों को जीते देखा। उन्होंने मेरी माँ को पहले असम के पास वाले स्कूल में फिर दूर शिमला भेजा, ताकि वे शिक्षित हो जाएँ। मेरी माँ को गाँव के एक शिक्षित आदमी ने बताया कि मेरी माँ पढ़-लिखकर वैसी ही औरत बन सकती है जिसने सारी दुनिया के सामने अपना भाषण दिया था— यह औरत थी विजयलक्ष्मी पंडित, पंडित नेहरू की बहन, जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। मेरे पिता ने स्वयं को स्कूल व कॉलेज की शिक्षा दिलाने के लिए कठिन परिश्रम किया था। अपनी मेधावी बुद्धि के कारण ही वह शिलांग में कॉलेज की पढ़ाई कर पाए। मेरे माता-पिता की पीढ़ी के सब लोगों ने, जो सक्षम थे, अंग्रेज़ी शिक्षा को लक्ष्य बनाया। उनके लिए यह एक प्रकार से ऊर्ध्वगामी विकास का रास्ता था। अंग्रेज़ी की शिक्षा ने इस क्षेत्र में, जहाँ रहने वाली जनजाति में प्रत्येक 20 किलोमीटर पर एक भिन्न भाषा बोली जाती है, भिन्न भाषाभाषी लोगों को आपस में तथा दुनिया के साथ जोड़ा। अब वो एक भाषा के माध्यम से बातें कर सकते थे और विचारों का आदान-प्रदान कर सकते थे। ये शिक्षित लोग अपने लोगों की आवाज़ बन गए तथा उन्होंने अंग्रेज़ी को राजकीय प्रशासकीय भाषा बनाया (आओ:2005:111)।

आधुनिकीकरण और पंथनिरपेक्षीकरण

आधुनिकीकरण शब्द का एक लंबा इतिहास है। 19वीं सदी से, और विशेषकर 20वीं सदी के दौरान, इस शब्द को सकारात्मक और वांछनीय मूल्यों से जोड़कर समझा जाने लगा। प्रत्येक समाज और उसके लोग आधुनिक बनना चाहते थे। प्रारंभिक वर्षों में आधुनिकीकरण का आशय प्रौद्योगिकी और उत्पादन प्रक्रियाओं में होने वाले सुधार से था। बाद में इस शब्द के वृहद मतलब सामने आने लगे। इसका मतलब विकास का वो तरीका हो गया जिसे पश्चिमी यूरोप या उत्तरी अमेरिका ने अपनाया। तदुपरांत ये सलाह दी जाने लगी कि अन्य समाजों में भी, आवश्यक रूप से विकास का यही तरीका और रास्ता अपनाया जाना चाहिए।

What kind of modernity?

They (upper caste founders of various oganisations and conferences, pretend to be modernists as long as they are in the service of the British government. The moment they retire and claim their pensions, they get into their brahmanical 'touch-me-not attire'...

Jotiba Phule's letter to the Conference of Marathi Authors

जैसाकि हमने अध्याय 1 में जाना, भारत में पूँजीवाद का प्रारंभ औपनिवेशिक शासन के संदर्भ में हुआ। भारत में आधुनिकीकरण और पंथनिरपेक्षीकरण का प्रारंभ भी औपनिवेशिक काल से संबद्ध है परंतु यह पश्चिम में हुई वृद्धि से अलग है। भारतीय अनुभव, इन मामलों में, पश्चिमी अनुभव से गुणात्मक रूप से भिन्न लगता है। इसके साक्ष्य के तौर पर आप 19वीं सदी में हुए समाज सुधारक आंदोलनों का स्मरण कर सकते हैं, जिसके बारे में इस पाठ के पूर्व में बताया गया था। हम पश्चिमीकरण और समाज सुधार आंदोलनों में एक स्पष्ट संबंध पाते हैं। अब आगे हम भारतीय संदर्भ में आधुनिकीकरण और पंथनिरपेक्षीकरण की चर्चा एक साथ करेंगे क्योंकि ये दोनों प्रक्रियाएँ परस्पर संबंधित हैं। ये दोनों ही आधुनिक विचारों का हिस्सा हैं। समाजशास्त्रियों ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की परिभाषा करते हुए इसके तत्त्वों को सामने लाने का प्रयास किया है।

> *'आधुनिकता' का मतलब ये समझ में आता है कि इसके समक्ष सीमित-संकीर्ण-स्थानीय दृष्टिकोण कमज़ोर पड़ जाते हैं और सार्वभौमिक प्रतिबद्धता और विश्वजनीन दृष्टिकोण (यानी कि समूचे विश्व का नागरिक होना) ज़्यादा प्रभावशाली होता है; इसमें उपयोगिता, गणना और विज्ञान की सत्यता को भावुकता, धार्मिक पवित्रता और अवैज्ञानिक तत्त्वों के स्थान पर महत्त्व दिया जाता है; इसके प्रभाव में सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर व्यक्ति को प्राथमिकता दी जाती है न कि समूह को; इसके*

Reprint 2025-26

मूल्यों के मुताबिक मनुष्य ऐसे समूह/संगठन में रहते और काम करते हैं जिसका चयन जन्म के आधार पर नहीं बल्कि इच्छा के आधार पर होता है इसमें भाग्यवादी प्रवृत्ति के ऊपर ज्ञान तथा नियंत्रण क्षमता को प्राथमिकता दी जाती है और यही मनुष्य को उसके भौतिक तथा मानवीय पर्यावरण से जोड़ता है; अपनी पहचान को चुनकर अर्जित किया जाता है न कि जन्म के आधार पर; इसका मतलब यह भी है कि कार्य को परिवार, गृह और समुदाय से अलग कर नौकरशाही संगठन में शामिल किया जाता है... (रूडॉल्फ और रूडॉल्फ, 1967)।

दूसरे शब्दों में लोग स्थानीय, सीमाबद्ध विचारों से प्रभावित न होकर सार्वभौमिक जगत व उसके मूल्यों को मानते हैं। आपका व्यवहार और विचार, आपके परिवार या जनजाति या जाति या समुदाय द्वारा तय नहीं होंगे। आपको अपना व्यवसाय अपनी पसंद से चुनने की स्वतंत्रता होती है न कि यह विवशता कि जो व्यवसाय आपके माता-पिता ने किया वही आप भी करें। कार्य का चुनाव आपकी इच्छा पर आधारित है न कि जन्म पर। आप कौन हैं से आपकी पहचान आपकी अर्जित उपलब्धियों से बनती हैं, वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को मान्यता प्राप्त होती है। तर्क को महत्ता मिलती है।

क्रियाकलाप 2.6

आप किसी अखबार या वेबसाइट (जैसे शादी.कॉम) में विवाह संबंधी विज्ञापन के कॉलम को और उसका स्वरूप देखें और जानें कि उसमें कितनी बार जाति व समुदाय का संदर्भ आता है? अगर ये संदर्भ बार-बार आता है तो इसका अर्थ यह है कि आज भी जाति उस प्रकार की भूमिका निभा रही है जो वह परंपरागत रूप में निभाती थी। अथवा क्या जाति की भूमिका परिवर्तित हुई है? विचार करें।

आधुनिक पश्चिम में पंथनिरपेक्षीकरण का मतलब ऐसी प्रक्रिया है जिसमें धर्म के प्रभाव में कमी आती है। आधुनिकीकरण के सिद्धांत के सभी प्रतिपादक विचारकों की मान्यता रही है कि आधुनिक समाज ज़्यादा से ज़्यादा पंथनिरपेक्ष होता है। पंथनिरपेक्षीकरण के सभी सूचक मानव के धार्मिक व्यवहार, उनका धार्मिक संस्थानों से संबंध, धार्मिक संस्थानों का सामाजिक तथा भौतिक प्रभाव और लोगों के धर्म में विश्वास करने की सीमा, को विचार में लेते हैं। यह माना जाता है कि पंथनिरपेक्षीकरण के सभी सूचक आधुनिक समाज में धार्मिक संस्थानों और लोगों के बीच बढ़ती दूरी के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। लेकिन हाल ही में धार्मिक चेतना में अभूतपूर्व वृद्धि और धार्मिक संघर्ष के उदाहरण सामने आए हैं।

हालाँकि अतीत की भाँति एक विचार यह भी है कि आधुनिक युग धार्मिक जीवन को आवश्यक रूप से विलुप्त करेगा। यह विचार पूरी तरह से सच नहीं है। आपको यह याद होगा कि किस प्रकार संचार के आधुनिक प्रकारों, संगठन और विचार के स्तर पर नए प्रकार के धार्मिक सुधार संगठनों का उद्भव हुआ। इसके अलावा भारत में किए जाने वाले कुछ अनुष्ठानों में प्रत्यक्ष रूप से पंथनिरपेक्षीकृत प्रभाव भी रहा है।

वस्तुतः अनुष्ठानों के पंथनिरपेक्ष आयाम पंथनिरपेक्षता के लक्ष्यों से पृथक् होते हैं। इनसे पुरुषों और महिलाओं को अवसर मिलता है कि वो अपनी मित्रों से और अपनी उम्र से बड़े लोगों से भी घुलें-मिलें और अपनी संपत्ति का भी कपड़े और जेवर पहनकर उनका प्रदर्शन करें। पिछले कुछ दशकों से अनुष्ठानों के आर्थिक, राजनीतिक और प्रस्थिति आयामी पक्ष ज़्यादा उभर कर सामने आए हैं। दिखावे की प्रवृत्ति को इस बात से समझा जा सकता है कि शादी-ब्याह के अवसर पर घर के बाहर लगी मोटर कार की कतार और अति

क्रियाकलाप 2.7

पारंपरिक त्योहारों, जैसे दीवाली, दुर्गा पूजा, गणेश पूजा, दशहरा, करवा चौथ, ईद, क्रिसमस के अवसर पर प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को देखें। ऐसे कुछ विज्ञापनों को अखबारों और पत्रिकाओं से निकालें। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे टेलीविजन पर होने वाले विज्ञापन पर भी ध्यान दें। पता लगाएँ कि इन विज्ञापनों में क्या संदेश दिए जा रहे हैं।

© NCERT not to be republished

महत्त्वपूर्ण व्यक्ति (वी.आई.पी.) के मेहमान बनकर आने, को उस परिवार की समृद्धि व विशेषता समझा जाता है। स्थानीय समुदाय में ऐसे परिवारों को ऊँची नज़र से देखा जाता है।

जाति के पंथनिरपेक्षीकरण का अर्थ किस तरह लिया जाए इस पर भी जबरदस्त वाद-विवाद होता रहा है। इसका क्या मतलब है? पारंपरिक भारतीय समाज में जाति व्यवस्था धार्मिक चौखटे के अंदर क्रियाशील थी। पवित्र-अपवित्र से संबंधित विश्वास व्यवस्था इस क्रियाशीलता का केंद्र थी। आज के समय में जाति एक राजनीतिक दबाव समूह के रूप में ज़्यादा कार्य कर रही है। समसामयिक भारत में जाति संगठनों और जातिगत राजनीतिक दलों का उद्भव हुआ है। ये जातिगत संगठन अपनी माँग मनवाने के लिए दबाव डालते हैं। जाति की इस बदली हुई भूमिका को जाति का पंथनिरपेक्षीकरण कहा गया है। नीचे दिया गया बॉक्स इसे दर्शाता है।

बॉक्स 2.5

सभी जानते हैं कि भारत में पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था जाति-संरचना और जातीय पहचान के इर्द-गिर्द संगठित है। लेकिन आधुनिक परिदृश्य में, जाति और राजनीति के संबंध की व्याख्या करते हुए आधुनिकता के सिद्धांतों से बना नज़रिया एक प्रकार के भय से ग्रसित होता है। वह इस प्रश्न से शुरू होता है कि क्या जाति समाप्त हो रही है?

निश्चित रूप से कोई भी सामाजिक व्यवस्था इस तरह समाप्त नहीं हो जाती। एक ज़्यादा उपयोगी दृष्टि अलबत्ता, यह होगी कि आधुनिक राजनीति के प्रभाव में जाति कौन-सा रूप लेकर सामने आ रही है, और जाति अभिमुखित समाज में राजनीति की क्या रूपरेखा है?

जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, दरअसल वो ऐसी राजनीति की खोज में हैं जिसका समाज में कोई आधार ही नहीं... राजनीति एक प्रतियोगात्मक प्रयास है जिसका उद्देश्य होता है शक्ति पर कब्ज़ा कर कुछ निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति करना। एक महत्वपूर्ण बात संगठन का होना तथा सहायता का निरूपण है। जहाँ राजनीति जन आधारित हो वहाँ ऐसे संगठन द्वारा जिससे जनसाधारण का जुड़ाव हो, सहायता का निरूपण किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ जातीय संरचना एक ऐसा संगठनात्मक समूह प्रदान करती है जिसमें जनसंख्या का एक बड़ा भाग निवास करता है, राजनीति को ऐसी ही संरचना के माध्यम से व्यवस्थित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

राजनीतिज्ञ जाति-समूहों को इकट्ठा करके अपनी शक्ति को संगठित करते हैं। वहाँ जहाँ अलग प्रकार के समूह और संस्थाओं के अलग आधार होते हैं, राजनीतिज्ञ उन तक भी पहुँचते हैं। और जैसे कि वे कहीं पर भी ऐसी संस्थाओं के स्वरूपों को परिवर्तित करते हैं वैसे ही जाति के स्वरूपों को भी परिवर्तित करते हैं।

(कोठारी 1977: 57–70)

निष्कर्ष

इस अध्याय में भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने वाले विभिन्न तरीकों को दर्शाया गया है। औपनिवेशिक अनुभवों के परिणाम दीर्घकालिक थे। इनमें से बहुत से अनैच्छिक और विरोधाभासी थे? आधुनिकता के पश्चिमी विचारों ने भारतीय राष्ट्रवादियों की काल्पनिकता को निर्मित किया। कुछ पारंपरिक शास्त्रों और ग्रंथों को एक नए दृष्टिकोण देने के लिए तत्पर हुए, जबकि एक अन्य समूह ने इन पारंपरिक ग्रंथों को अमान्य करार दिया। पश्चिमी सांस्कृतिक स्वरूपों की हमारे समाज में पैठ हुई। इसके अनुरूप ही एक नए प्रकार के सामाजिक व्यवहार के मानदंड सामने आए कि पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का आचरण किस प्रकार का हो; कलात्मक अभिव्यक्तियों में भी इसकी छाप नजर आई। हमारे समाज सुधार आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलनों पर पाश्चात्य समानता और प्रजातंत्र के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। इन सबसे एक ओर जहाँ पश्चिमी विचारों को भारतीय समाज में स्वीकृति मिली वहीं दूसरी तरफ़ भारतीय परंपरा पर प्रश्न किए गए

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

तथा उसकी पुनर्व्याख्या की गई? अगला अध्याय भारत के प्रजातांत्रिक अनुभवों के बारे में है जिसमें पुनः यह दर्शाया गया है कि कैसे एक अत्यधिक असमानता वाले समाज में समानता एवं सामाजिक न्याय के मूलभूत विचारों पर आधारित संविधान को लागू किया गया। इस अध्याय में पुनः दर्शाया गया है कि कैसे कुछ जटिल तरीकों से हमारे समाज में परपंरा और आधुनिकता को लगातार पुनर्परिभाषित किया।

प्रश्नावली

1. संस्कृतीकरण पर एक आलोचनात्मक लेख लिखें।
2. पश्चिमीकरण का साधारणतः मतलब होता है पश्चिमी पोशाकों व जीवन शैली का अनुकरण। क्या पश्चिमीकरण के दूसरे पक्ष भी हैं? क्या पश्चिमीकरण का मतलब आधुनिकीकरण है? चर्चा करें।
3. लघु निबंध लिखें —
   - संस्कार और पंथनिरपेक्षीकरण
   - जाति और पंथनिरपेक्षीकरण
   - जेंडर और संस्कृतीकरण

संदर्भ ग्रंथ

रामानुजन, ए. के. 1990. "इज़ देयर एन इंडियन वे ऑफ़ थिंकिंग: एन इनफॉरमल ऐस्से" इन मेरियट मेकिम इंडिया थ्रू हिंदू केटेगरी, सेज़, नयी दिल्ली

अब्राहम, जानकी. 2006. 'द स्टेन ऑफ़ व्हाइट : लायज़न, मेमोरिज़ एंड व्हाइट मेन एज़ रिलेटिव्ज़', मेन एंड मेसकुलिनिट्ज़ि वॉल्यूम.9, नं.2, पृष्ठ 131–151

एओ, एइनला शिलु. 2005. 'वेयर द पास्ट मीट्स द फ्यूचर' इन ऐड. गीती सेन वेयर द सन राइज़ेस वेन शेडोज़ फॉल आई.आई.सी क्वार्टरली मॉनसून विंटर 32, 2 तथा 3, पृष्ठ 109–112

चक्रवर्ती, उमा. 1998. रिराइटिंग हिस्ट्री : द लाइफ एंड टाइम्स ऑफ पंडिता रमाबाई, काली फॉर वूमेन, नयी दिल्ली

चौधरी, मैत्रयी. 1993. द इंडियन वूमेन्स मूवमेंट : रिफोर्म एंड रिवाइवल, रेडियेंट, नयी दिल्ली

दत्त, ए.के. 1993. 'फ्रॉम कॉलोनियल सिटी टू ग्लोबल सिटी : द फार फ्रॉम कम्प्लीट स्पेशियल ट्रांसफॉरमेंशन ऑफ कलकत्ता' ब्रुन, एस.डी. और विलियम्स, जे.एफ. (संपा) सिटीज़ ऑफ़ वर्ल्ड, पृष्ठ 351–388, हार्पर कॉलिंस, न्यूयॉर्क

खरे, आर.एस. 1998. कल्चरल डाइवर्सिटि एंड सोशल डिसकंटेंट : एंथ्रोप्लोलॉजिकल स्टडीज ऑन कंटेपोरेरी इंडिया, सेज़, नयी दिल्ली

कोठारी, रजनी. 1997. 'कास्ट एंड माडर्न पॉलिटिक्स' सुदीप्तो कविराज (संपा.) पॉलिटिक्स इन इंडिया, पृष्ठ 57–70 ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

पंडियन, एम.एस.एस. 2000. 'दलित एशेरज़न इन तमिलनाडु : एन एक्सप्लोरेट्री नोट' जरनल ऑफ़ पॉलिटिक्स इकोनॉमी, वॉल्यूम XII नं. 3 और 4

© NCERT not to be republished

रमन, वासंती. 2003. 'द डाइवर्स लाइफ-वर्ल्ड्स ऑफ़ इंडियन चाइल्डहुड' मारग्रिट पेरनॉ, इम्तियाज़ अहमद, हेलमुल्ट रेफेल्ड (संपा.), फेमली एंड जेंडर : चेंजिंग वेल्यूज़ इन जर्मनी एंड इंडिया में, सेज़, नयी दिल्ली

रिबा, मोजी. 2005. 'राइट्स, इन पासिंग....' आई.आई.सी. क्वार्टलि मॉनसून-विंटर 32, 2 तथा 3, पृष्ठ 113–121

रूडोल्फ एंड रूडोल्फ. *1967. द माडर्निटी ऑफ़ ट्रेडिशन : पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो*

सबरवाल, सतीश. 2001. 'फ्रेमवर्क इन चेंज : कॉलोनियल इंडियन सोसाइटी' सुसन विश्वानाथन (संपा.) 'स्ट्रक्चर एंड ट्रांसफॉरमेंशन : थ्योरी एंड सोसाइटी इन इंडिया', पृष्ठ 33–57, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली

© NCERT
not to be republished

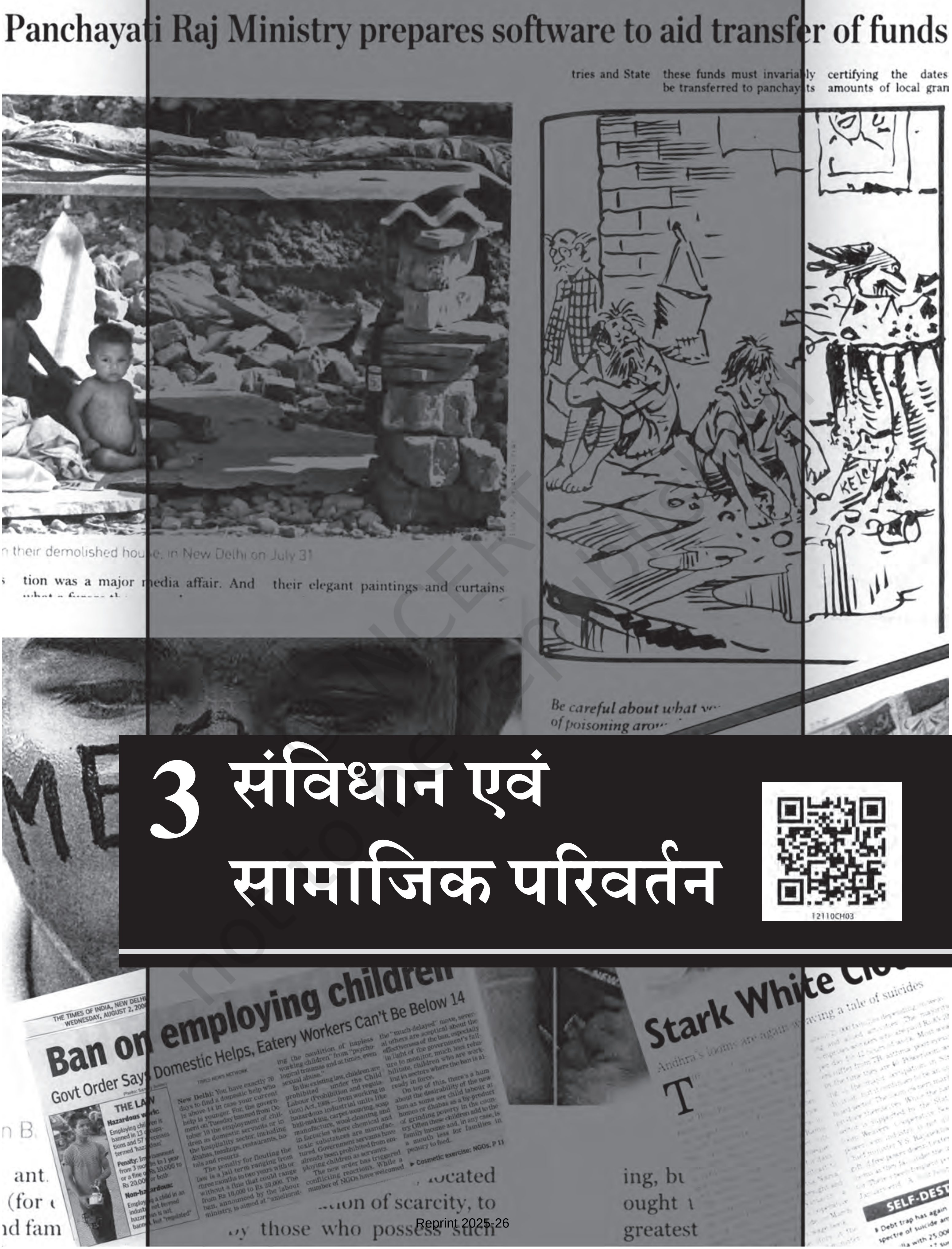

3 संविधान एवं सामाजिक परिवर्तन

12110CH03

not to be republished

आप देखेंगे कि संविधान में लोगों की सहायता करने की क्षमता निहित है क्योंकि यह सामाजिक न्याय के आधारभूत मानदंडों पर आधारित है। उदाहरण के लिए ग्राम पंचायतों से संबंधित निदेशक सिद्धांत एक संशोधन के रूप में के. संथानम द्वारा संविधान सभा में लाया गया था। 40 साल के बाद 1992 के 73वें संशोधन में यह एक संवैधानिक विधेयक बन गया। अगले भाग में आप इसके विषय में पढ़ेंगे।

संविधान केवल इस बात का संदर्भ ग्रंथ नहीं है कि सामाजिक न्याय के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं बल्कि इसमें सामाजिक न्याय के अर्थ को प्रचारित-प्रसारित करने की संभावनाएँ भी निहित हैं। सामाजिक न्याय की समकालीन समझ को ध्यान में रखते हुए अधिकारों और कर्त्तव्यों की व्याख्या में सामाजिक आंदोलनों ने भी न्यायालयों और प्राधिकरणों की सहायता की है। कानून और न्यायालय ऐसी संस्थाएँ हैं जहाँ प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोणों पर बहस होती है। संविधान वह माध्यम है जो राजनीतिक शक्ति को सामाजिक हित की ओर प्रवाहित करता है और उसे सुसंगत बनाता है।

संवैधानिक मानदंड और सामाजिक न्याय : सामाजिक न्याय सशक्तता की व्याख्या

यह जान लेना आवश्यक है कि कानून और न्याय में अंतर है। कानून का सार इसकी शक्ति है। कानून इसलिए कानून है क्योंकि इससे बल प्रयोग अथवा अनुपालन के संचरण के माध्यमों का प्रयोग होता है। इसके पीछे राज्य की शक्ति निहित होती है। न्याय का सार निष्पक्षता है। कानून की कोई भी प्रणाली अधिकारियों के संस्तरण के माध्यम से ही कार्यरत होती है। ऐसे प्रमुख मानदंड जिनसे नियम और अधिकारी संचालित होते हैं, संविधान कहलाता है। यह एक ऐसा दस्तावेज़ है जिससे किसी राष्ट्र के सिद्धांतों का निर्माण होता है। भारतीय संविधान भारत का मूल मानदंड है। अन्य सभी कानून, संविधान द्वारा नियत कार्य प्रणाली के अंतर्गत बनते हैं। ये कानून संविधान द्वारा निश्चित अधिकारियों द्वारा बनाए व लागू किए जाते हैं। कोई विवाद होने पर संविधान द्वारा अधिकार प्राप्त न्यायालयों के संस्तरण द्वारा कानून की व्याख्या होती है। 'उच्चतम न्यायालय' सर्वोच्च है और वही संविधान का सबसे अंतिम व्याख्याकर्त्ता भी है।

उच्चतम न्यायालय ने कई महत्वपूर्ण रूपों में मौलिक अधिकारों को बढ़ाया है। नीचे दिया गया बॉक्स इनमें से कुछ उदाहरणों को दर्शाता है—

बॉक्स 3.1

- *मौलिक अधिकार वह सब अंतर्भूत करता है जो इसके लिए आकस्मिक है। अनुच्छेद 21 जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार का वर्णन करता है और जीवन के लिए अनिवार्य गुणवत्ता, जीवनयापन के साधन, स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा और गरिमा की व्याख्या करता है। विभिन्न उद्घोषणाओं में जीवन की विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है और इसे एक पशुमात्र के अस्तित्व से बेहतर व महत्वपूर्ण रूप में व्याख्यायित किया गया है। ये व्याख्याएँ उन कैदियों को राहत पहुँचाने के लिए प्रयोग की जाती है जिन्हें प्रताड़ित करने और वंचित रखने का दंड मिला है। यह उन्हें मुक्त करने, बंधुआ मज़दूरों को पुनर्वासित करने और प्राथमिक स्वास्थ्य व शिक्षा उपलब्ध कराने की व्याख्या करता है।*
  1993 में उच्चतम न्यायालय ने सूचना के अधिकार को स्वीकार करते हुए कहा कि यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हिस्सा है और उसका आनुषांगिक अंग है जो अनुच्छेद 19(क) के अंतर्गत वर्णित है।
- *मौलिक अधिकारों के संदर्भ में नीति निर्देशक सिद्धांतों की प्रस्तुति—*
  उच्चतम न्यायालय ने 'समान कार्य के लिए समान वेतन' निदेशक तत्त्व को अनुच्छेद 14 के 'समानता के मौलिक अधिकार' के अंतर्गत माना तथा बहुत से बागान एवं कृषि श्रमिकों तथा अन्य को राहत पहुँचाई।

Reprint 2025-26

3.1 पंचायती राज और ग्रामीण सामाजिक रूपांतरण की चुनौतियाँ

पंचायती राज के आदर्श

पंचायती राज का शाब्दिक अनुवाद होता है 'पाँच व्यक्तियों द्वारा शासन'। इसका अर्थ गाँव एवं अन्य ज़मीनी स्तर पर लचीले लोकतंत्र की क्रियाशीलता से है। मूल स्तर से लोकतंत्र का विचार हमारे देश में विदेश से आयातित नहीं है, लेकिन ऐसा समाज जहाँ असमानताएँ अत्यंत तीव्र हैं, लोकतांत्रिक भागीदारी को लिंग, जाति और वर्ग के आधार पर बाधित किया जाता है। जैसाकि आप इस अध्याय में समाचारपत्रों की रिपोर्टों में आगे देखेंगे कि ऐसे गाँवों में पारंपरिक रूप से जातीय पंचायतें रही हैं लेकिन ये हमेशा प्रभुत्वशाली समूहों का ही प्रतिनिधित्व करती रही हैं। इनका दृष्टिकोण प्रायः रूढ़िवादी रहा है और ये लगातार लोकतांत्रिक मानदंडों और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विपरीत निर्णय लेते रहे हैं।

जब संविधान बनाया जा रहा था तो उसमें पंचायतों की कोई चर्चा नहीं की गई थी। उस समय कई सदस्यों ने इस मुद्दे पर अपने दुख, क्रोध और निराशा को प्रकट किया था। ठीक उसी समय अपने ग्रामीण अनुभव का उल्लेख करते हुए डा. अंबेडकर ने तर्क दिया कि स्थानीय कुलीन और उच्चजातीय लोग सुरक्षित परिधि से इस प्रकार घिरे हुए हैं कि स्थानीय स्वशासन का मतलब होगा भारतीय समाज के पददलित लोगों का निरंतर शोषण। निःसंदेह उच्च जातियाँ जनसंख्या के इस भाग को चुप करा देंगी। स्थानीय सरकार की अवधारणा गाँधीजी को भी प्रिय थी। वे प्रत्येक ग्राम को स्वयं में आत्मनिर्भर और पर्याप्त इकाई मानते थे जो स्वयं अपने को निर्देशित करे। ग्राम स्वराज्य को वे आदर्श मानते थे और चाहते थे कि स्वतंत्रता के बाद भी गाँवों में यही शासन चलता रहे।

पहली बार 1992 में 73वें संविधान संशोधन के रूप में मौलिक व प्रारंभिक स्तर पर लोकतंत्र और विकेंद्रीकृत शासन का परिचय मिलता है। इस अधिनियम ने पंयाचती राज संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्रदान की। अब यह अनिवार्य हो गया है कि स्थानीय स्वशासन के सदस्य गाँवों तथा नगरों में हर पाँच साल में चुने जाएँ। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि स्थानीय संसाधनों पर अब चुने हुए निकायों का नियंत्रण होता है।

पंचायती राज संस्था की त्रिस्तरीय व्यवस्था — **बॉक्स 3.2**

- *इसकी संरचना एक पिरामिड की भाँति है। संरचना के आधार पर लोकतंत्र की इकाई के रूप में ग्राम सभा स्थित होती है। इसमें पूरे गाँव के सभी नागरिक शामिल होते हैं। यही वह आम सभा है जो स्थानीय सरकार का चुनाव करती है और कुछ निश्चित उत्तरदायित्व उसे सौंपती है। ग्राम सभा परिचर्चा और ग्रामीण स्तर के विकासात्मक कार्यों के लिए एक मंच उपलब्ध कराती है और निर्णय लेने की प्रक्रिया में निर्बलों की भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।*
- *संविधान के 73वें संशोधन ने बीस लाख से अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक राज्य में त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली लागू की।*
- *यह अनिवार्य हो गया कि प्रत्येक पाँच वर्ष में इसके सदस्यों का चुनाव होगा।*
- *इसने अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए निश्चित आरक्षित सीटें तथा महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षित सीटें उपलब्ध कराईं।*
- *इसने पूरे ज़िले के विकास का प्रारूप निर्मित करने के लिए ज़िला योजना समिति गठित की।*

73वें और 74वें संविधान संशोधन ने ग्रामीण व नगरीय दोनों ही क्षेत्रों के स्थायी निकायों के सभी चयनित पदों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण दिया। इनमें से 17 प्रतिशत सीटें अनुसूचित जाति

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

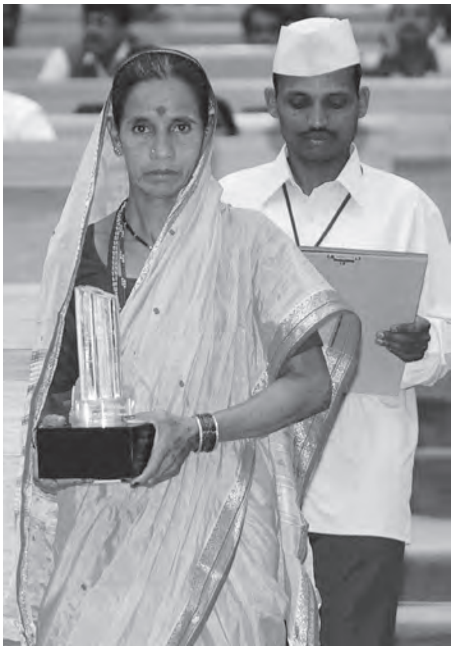

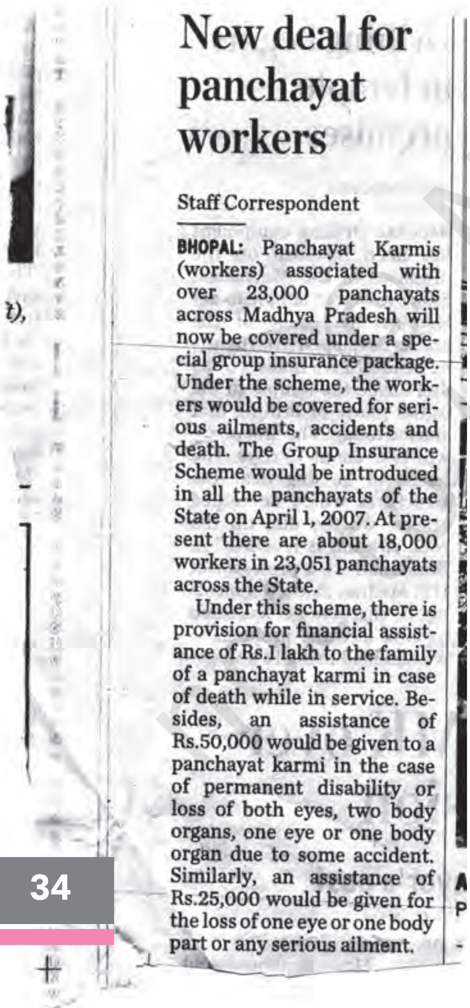

New deal for panchayat workers

Staff Correspondent

BHOPAL: Panchayat Karmis (workers) associated with over 23,000 panchayats across Madhya Pradesh will now be covered under a special group insurance package. Under the scheme, the workers would be covered for serious ailments, accidents and death. The Group Insurance Scheme would be introduced in all the panchayats of the State on April 1, 2007. At present there are about 18,000 workers in 23,051 panchayats across the State.

Under this scheme, there is provision for financial assistance of Rs.1 lakh to the family of a panchayat karmi in case of death while in service. Besides, an assistance of Rs.50,000 would be given to a panchayat karmi in the case of permanent disability or loss of both eyes, two body organs, one eye or one body organ due to some accident. Similarly, an assistance of Rs.25,000 would be given for the loss of one eye or one body part or any serious ailment.

व अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। यह संशोधन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके अंतर्गत पहली बार निर्वाचित निकायों में महिलाओं को शामिल किया गया जिससे उन्हें निर्णय लेने की शक्ति मिली। स्थानीय निकायों, ग्राम पंचायतों, नगर निगमों, ज़िला परिषदों आदि में एक तिहाई पदों पर महिलाओं का आरक्षण है। 73वें संशोधन के तुरंत बाद 1993–94 के चुनाव में 8,00,000 महिलाएँ एक साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं से जुड़ीं। वास्तव में महिलाओं को मताधिकार देने वाला यह एक बड़ा कदम था। स्थानीय स्वशासन के लिए त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली का प्रावधान करने वाला संवैधानिक संशोधन पूरे देश में 1992–93 से लागू है (बॉक्स 3.2 पढ़ें)।

पंचायतों की शक्तियाँ और उत्तरदायित्व

संविधान के अनुसार पंचायत को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने हेतु शक्तियाँ व अधिकार दिए जाने चाहिए। आज सभी राज्य सरकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे स्थानीय प्रतिनिधिक संस्थाओं को पुनर्जीवित करें।

पंचायतों को निम्नलिखित शक्तियाँ व उत्तरदायित्व प्राप्त हैं—

- आर्थिक विकास के लिए योजनाएँ एवं कार्यक्रम बनाना।
- सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
- शुल्क, यात्री कर, जुर्माना, अन्य कर आदि लगाना व एकत्र करना।
- सरकारी उत्तरदायित्वों के हस्तांतरण में सहयोग करना, विशेष रूप से वित्त को स्थानीय अधिकारियों तक पहुँचाना।

पंचायतों द्वारा किए जाने वाले सामाजिक कल्याण के कार्यों में शामिल है कि श्मशानों एवं कब्रिस्तानों का रखरखाव, जन्म और मृत्यु के आँकड़े रखना, मातृत्व केंद्रों और बाल कल्याण केंद्रों की स्थापना, पशुओं के तालाब पर नियंत्रण, परिवार-नियोजन का प्रचार और कृषि-कार्यों का विकास। इसके अलावा सड़कों के निर्माण, सार्वजनिक भवनों के निर्माण, तालाबों व स्कूलों के निर्माण जैसे विकासात्मक कार्य भी इसमें शामिल हैं। पंचायतें कुटीर उद्योगों के विकास में भी सहयोग करती हैं और छोटे सिंचाई कार्यों की भी देखभाल करती हैं। बहुत सी सरकारी योजनाएँ, जैसे कि एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, एकीकृत बाल विकास योजना आदि पंचायत के सदस्यों द्वारा संचालित होती हैं।

संपत्ति, व्यवसाय, पशु, वाहन आदि पर लगाए गए कर, चुंगी, भू-राजस्व आदि पंचायतों की आय के मुख्य स्रोत हैं। ज़िला पंचायत द्वारा प्राप्त अनुदान पंचायत के संसाधनों में वृद्धि करते हैं। पंचायतों के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने कार्यालय के बाहर बोर्ड लगाएँ जिसमें प्राप्त वित्तीय सहायता के उपयोग से संबंधित आँकड़े लिखे हों। यह व्यवहार यह सुनिश्चित करने के

© NCERT not to be republished

Panchayati Raj Ministry prepares software to aid transfer of funds

Special Correspondent

NEW DELHI: The Union Panchayati Raj Ministry has prepared a software to maintain databases of bank accounts of all Panchayati Raj Institutions (PRIs) to facilitate the transfer of funds through banking channels, preferably electronically.

Once the data is entered, money can be transferred directly to the 2,40,000 PRIs from the State's Consolidate Fund.

Karnataka has already implemented this system, using the fast expanding electronic network of banks to transfer funds from the State treasury to individual panchayats.

Here, the State Government sends 12th Finance Commission funds and its own untied statutory grant to all panchayats directly from the State Department of Panchayati Raj through banks without any intermediary. The arrangement involves six nationalised and 12 gramin banks, in which all 5,800 panchayats at all levels hold accounts.

This has reduced the time taken for funds to reach each panchayat from two months to 12 days.

The Ministry of Finance has indicated its willingness to work with the Panchayati Raj Ministry towards developing a consensus on adoption of this tool kit, across Central ministries and State Governments.

The 12th Finance Commission has recommend that a sum of Rs. 20,000 be made available as grants to the State Governments between 2005-2010 to augment the Consolidated Fund at State level to facilitate the supplementing of the financial resources placed at the disposal of the panchayats.

The Union Finance Ministry has also mandated that these funds must invariably be transferred to panchayats within 15 days of their being credited to State Consolidated Fund.

The Finance Ministry guidelines also make it clear that grants will not be released to a State where elections to the panchayats have not been held, each State Finance Secretary would be required to provide a certificate within 15 days of the release of each instalment by the Government certifying the dates and amounts of local grants received by the State from the Government, and the dates and amounts of grants released by the State to the PRIs.

In the case of delayed transfer to the PRIs from the State, an amount of interest at the rate equal to the Reserve Bank of India rate has to be additionally paid by the State to the PRIs, for the period of delay.

लिए अपनाया गया कि ज़मीनी स्तर के सामान्य जन के 'सूचना के अधिकार' को सुनिश्चित किया जा सके और पंचायतों के सारे कार्य जनता के समक्ष हों। लोगों के पास पैसों के आवंटन की छानबीन का अधिकार है। साथ ही वे यह भी पूछ सकते हैं कि गाँव के कल्याण और विकास के हेतु लिए गए निर्णयों के कारण क्या हैं।

कुछ राज्यों में न्याय पंचायतों की भी स्थापना की गई है। कुछ छोटे-मोटे दीवानी और आपराधिक मामलों की सुनवाई का अधिकार इनके पास होता है। ये जुर्माना लगा तो सकते हैं लेकिन कोई सजा नहीं दे सकते। ये ग्रामीण न्यायालय प्रायः कुछ पक्षों के आपसी विवादों में समझौता कराने में सफल होते हैं। विशेष रूप से ये तब प्रभावशाली होते हैं जब किसी पुरुष द्वारा दहेज के लिए स्त्री को प्रताड़ित किया जाए या उसके विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही की जाए।

जनजाति क्षेत्रों में पंचायती राज

बहुत से आदिवासी क्षेत्रों की प्रारंभिक स्तर के लोकतांत्रिक कार्यों की अपनी समृद्ध परंपरा रही है। हम मेघालय से संबंधित एक उदाहरण दे रहे हैं। गारो, खासी और जयंतिया, तीनों ही आदिवासी जातियों की सैकड़ों साल पुरानी अपनी राजनीतिक संस्थाएँ रही हैं। ये राजनीतिक संस्थाएँ इतनी सुविकसित थीं कि ग्राम, वंश और राज्य के स्तर पर ये बड़ी कुशलता से कार्य करती थीं। उदाहरणार्थ, खासियों की पारंपरिक राजनीतिक प्रणाली में प्रत्येक वंश की अपनी परिषद् होती थी जिसे 'दरबार कुर' कहा जाता था और जो उस वंश के मुखिया के निर्देशन में कार्य करता था। यद्यपि मेघालय में ज़मीनी स्तर पर लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्थाओं की परंपरा रही है, लेकिन आदिवासी क्षेत्रों का एक बड़ा खंड संविधान के 73वें संशोधन के प्रावधान से बाहर है। शायद यह इसलिए क्योंकि उस समय की नीतियाँ बनाने वाले पारंपरिक राजनीतिक संस्थाओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे।

बॉक्स 3.3

दलित जाति की कलावती चुनाव लड़ने के संबंध में चिंतित थी। आज वह एक पंचायत सदस्य है और यह अनुभव कर रही है कि जब से वह पंचायत सदस्य बनी है तब से उसका विश्वास और आत्मसम्मान बढ़ गया है। सबसे महत्वपूर्ण यह कि अब उसका अपना एक नाम है। पंचायत की सदस्य बनने से पहले वह 'रामू की माँ' या 'हीरालाल की पत्नी' के नाम से जानी जाती थी। यदि वह ग्राम-प्रधान पद का चुनाव हार गई तो उसे अनुभव होगा कि उसकी सखियों की नाक कट गई।

स्रोत — यह आलेख 'महिला समाख्या' नामक गैर सरकारी संगठन द्वारा दर्ज किया गया है, जो कि ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए कार्य करता है।

Reprint 2025-26

बॉक्स 3.4

वन पंचायत

उत्तराखंड में अधिकांश कार्य महिलाएँ करती हैं, क्योंकि पुरुष प्रायः रक्षा सेवाओं के लिए बाहर नियुक्त होते हैं। खाना बनाने के लिए अधिकांश ग्रामीण लकड़ियों का प्रयोग करते हैं। जैसाकि आप जानते होंगे कि वनों का कटाव पर्वतीय क्षेत्रों की एक बड़ी समस्या है। कभी-कभी पशुओं का चारा और लकड़ी इकट्ठा करने के लिए औरतों को मीलों पैदल चलना पड़ता है। इस समस्या के समाधान के लिए औरतों ने वन-पंचायतों की स्थापना की। वन पंचायत की औरतें पौधशालाएँ बनाकर छोटे पौधों का पालन-पोषण करती हैं, जिन्हें पहाड़ी ढालों पर रोपा जा सके। इसकी सदस्य आसपास के जंगलों की अवैध कटाई से सुरक्षा भी करती हैं। चिपको आंदोलन – जिसमें कि पेड़ों को कटने से बचाने के लिए औरतें उनसे चिपक जाती थीं, इस क्षेत्र में ही प्रारंभ किया गया था।

बॉक्स 3.5

निरक्षर महिलाओं के लिए पंचायती राज प्रशिक्षण

यह पंचायती राज प्रणाली की शक्तियों के प्रचार-प्रसार का एक नवाचारी उपाय है। सुखीपुर और दुखीपुर नामक दो गाँवों की कहानी कपड़े की फड़ (कहानी कहने का एक परंपरागत लोक माध्यम) के द्वारा प्रस्तुत की गई। दुखीपुर गाँव में एक भ्रष्ट प्रधान थी – विमला। उसने गाँव में स्कूल बनवाने के लिए पंचायत से धन लिया था, लेकिन उसका उपयोग उसने अपने परिवार का घर बनवाने के लिए किया। गाँव का बाकी हिस्सा दुखी और गरीब था। दूसरी तरफ, सुखीपुर गाँव में एक साधारण वर्ग की औरत (नजमा) प्रधान थी; उसने ग्रामीण विकास के पैसे को गाँव के भौतिक संसाधनों को बढ़ाने के लिए खर्च किया। इस गाँव में प्राथमिक चिकित्सालय, सड़कें व पक्के मकान थे। बसें यहाँ आराम से पहुँच सकती थीं। लोक संगीत और चित्रमय फड़ दोनों एक साथ समर्थ सरकार और उसमें भागीदारी प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी हथियार थे। कहानी कहने का ये नया तरीका निरक्षर महिलाओं में जागरूकता फैलाने में बहुत प्रभावशाली था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस प्रचार ने यह संदेश दिया कि केवल मतदान करना, चुनाव में खड़े होना या जीतना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह जानना भी आवश्यक है कि किसी व्यक्ति को क्यों मत दिया जाए, उसमें ऐसी क्या विशेषता होनी चाहिए और वह आगे क्या करना चाहता/चाहती है। गीत फड़ के माध्यम से कही गई कहानी सत्यनिष्ठा का पक्ष भी प्रबल करती है।

यह प्रशिक्षण कार्यक्रम 'महिला समाख्या' नामक गैर सरकारी संगठन द्वारा समायोजित किया गया था जो ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए कार्य करता है।

Reprint 2025-26

जैसाकि समाजशास्त्री टिपलुट नोंगबरी ने कहा है कि आदिवासी संस्थाएँ अपनी संरचना और क्रियाकलाप में लोकतांत्रिक ही हों, यह आवश्यक नहीं है। भूरिया समिति की रिपोर्ट (जिसने इस मुद्दे का अध्ययन किया है) पर टिप्पणी करते हुए नोंगबरी ने कहा कि हालाँकि पारंपरिक आदिवासी संस्थाओं पर समिति की चिंता प्रशंसनीय है, लेकिन यह स्थिति की जटिलता का आकलन कर पाने में असमर्थ रही। आदिवासी समाजों में प्रबल समतावादी लोकाचार पाया जाता है, इसके बावजूद उनमें स्तरीकरण के तत्त्व कहीं न कहीं उपस्थित हैं। आदिवासी राजनीतिक संस्थाएँ केवल महिलाओं के प्रति असहिष्णुता के लिए ही नहीं जानी जाती, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया ने इस व्यवस्था में विकृतियाँ भी उत्पन्न कर दी हैं जिससे यह पहचानना मुश्किल है कि क्या पारंपरिक है और क्या अपारंपरिक (नोंगबरी, 2003:220)। यह आपको परंपरा की परिवर्तनशील प्रकृति की याद दिलाता है जिसकी चर्चा हम अध्याय 1 व 2 में कर चुके हैं।

लोकतंत्रीकरण और असमानता

अब आपके सामने स्पष्ट हो जाएगा कि जिस देश में जाति, समुदाय और लिंग आधारित असमानता का लंबा इतिहास हो, ऐसे समाज में लोकतंत्रीकरण आसान नहीं है। पिछली पुस्तक में आप विभिन्न प्रकार की असमानताओं से परिचित हो चुके हैं। अध्याय 4 में ग्रामीण भारतीय संरचना की और अच्छी जानकारी प्राप्त करेंगे। ऐसी असमान व अलोकतांत्रिक सामाजिक संरचना को देखने के बाद यह आश्चर्यजनक नहीं लगता कि बहुत से मामलों में गाँव के कुछ विशेष समूह, समुदाय, जाति से संबंधित लोग न तो गाँव की समितियों में शामिल किए जाते हैं और न ही उन्हें ऐसे क्रियाकलापों की सूचना दी जाती है। ग्राम सभा के सदस्य प्रायः एक ऐसे छोटे से गुट द्वारा नियंत्रित व संचालित किए जाते हैं जो अमीर किसानों या उच्च जाति के ज़मींदारों के होते हैं। बहुसंख्यक लोग देखते भर रह जाते हैं और ये लोग बहुमत को अनदेखा करके विकासात्मक कार्यों का और सहायता राशि बाँटने का फैसला कर लेते हैं।

3.2 लोकतांत्रिक राजनीति में राजनीतिक दल, दबाव एवं हित समूह

हर सुबह के अखबार पर एक दृष्टिमात्र से ही अनेक ऐसे उदाहरण दिखेंगे कि विभिन्न समूह कैसे अपनी आवाज़ सुनाना चाहते हैं और सरकार का ध्यान अपनी परेशानियों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं।

उद्योगपति 'फेडरेशन ऑफ़ इंडियन कॉमर्स एंड चैंबर्स'; 'एसोसिएशन ऑफ़ चैंबर्स ऑफ़ कॉमर्स' जैसे संगठन बनाते हैं। कर्मचारी 'इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस', या 'द सेंटर फ़ॉर इंडियन ट्रेड यूनियंस' बनाते हैं। किसान कृषि संगठन बनाते हैं, जैसा कि शेतकरी संगठन कृषि मज़दूरों का अपना अलग संघ होता हैं। अंतिम पाठ में आप अन्य प्रकार के संगठनों और सामाजिक आंदोलनों जैसे आदिवासी एवं पर्यावरण आंदोलन के बारे में पढ़ेंगे।

सरकार के लोकतांत्रिक प्रारूप में राजनीतिक दल मुख्य भूमिका अदा करते हैं। एक राजनीतिक दल को निर्वाचन प्रक्रिया द्वारा सरकार पर न्यायपूर्ण नियंत्रण स्थापित करने की ओर उन्मुख संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। राजनीतिक दल एक ऐसा संगठन होता है जो सत्ता हथियाने और सत्ता का उपयोग कुछ विशिष्ट कार्यों को संपन्न करने के उद्देश्य से स्थापित करता है। राजनीतिक दल समाज की कुछ विशेष समझ और यह कैसे होना चाहिए पर आधारित होते हैं। लोकतांत्रिक प्रणाली में विभिन्न समूहों के हित राजनीतिक दलों द्वारा ही प्रतिनिधित्व प्राप्त करते हैं जो उनके मुद्दों को उठाते हैं। विभिन्न हित समूह

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 3.1

- *एक सप्ताह के समाचारपत्र-पत्रिकाओं को देखें। उनमें ऐसे उदाहरणों को लिखें जहाँ हितों का संघर्ष हो।*
- *विवादास्पद मुद्दों का पता लगाएँ।*
- *उन तरीकों का पता लगाइए जिनसे संबंधित समूह अपने हितों का फ़ायदा उठाते हैं।*
- *क्या यह किसी राजनीतिक दल का औपचारिक प्रतिनिधि मंडल है जो प्रधानमंत्री या किसी अन्य अधिकारी से मिलना चाहता है।*
- *क्या यह विरोध सड़कों पर किया जा रहा है?*
- *क्या यह विरोध लिखित रूप में अथवा समाचार पत्रों में सूचना के द्वारा किया जा रहा है?*
- *क्या यह सार्वजनिक बैठकों के द्वारा किया जा रहा है? ऐसे उदाहरणों का पता लगाइए।*
- *यह पता लगाइए कि क्या किसी राजनीतिक दल, व्यावसायिक संघ, गैर सरकारी संगठन अथवा किसी भी अन्य निकाय ने इस मुद्दे को उठाया है?*

राजनीतिक दलों को प्रभावित करने के लिए कार्य करेंगे। जब किसी समूह को लगता है कि उसके हित की बात नहीं की जा रही है तो वह एक अलग दल बना लेता है। या फिर ये दबाव समूह बना लेते हैं जो सरकार से अपनी बात मनवाने की कोशिश करते हैं। हित समूह राजनीतिक क्षेत्र में कुछ निश्चित हितों को पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं। ये प्राथमिक रूप से वैधानिक अंगों के सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने के लिए बनाए जाते हैं। कुछ स्थितियों में राजनीतिक संगठन शासन सत्ता पाना तो चाहते हैं लेकिन वे इंकार कर देते हैं क्योंकि उन्हें कुछ मानक माध्यमों द्वारा ऐसा अवसर नहीं मिलता है। ऐसे संगठन तब तक आंदोलन में बने रहते हैं जब तक उन्हें मान्यता नहीं मिलती।

पहले व दूसरे, दोनों ही क्रियाकलापों में बताया गया है कि सरकार पर दबाव बनाने के लिए सभी समूहों में समान क्षमता नहीं है। अतः कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि दबाव समूह की अवधारणा प्रबल सामाजिक समूहों जैसे वर्ग, जाति अथवा लैंगिक समूह आदि की शक्ति को हतोत्साहित करती है। वे यह अनुभव करते हैं कि यह कहना अधिक सही होगा कि प्रबल वर्ग ही राज्य को नियंत्रित करते हैं। यहाँ इस बात का यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक आंदोलन और दबाव समूह लोकतंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाते। आठवाँ अध्याय यही दर्शाता है।

बॉक्स 3.6

हर साल फरवरी के अंत में भारत सरकार के वित्त मंत्री संसद के सामने बजट पेश करते हैं। इसके पहले हर रोज अखबार में यह खबर छपती है कि भारतीय उद्यमियों के संगठन, श्रमिक संघों, किसानों और महिलाओं के संगठनों ने वित्त मंत्रालय के साथ बैठक की।

बॉक्स 3.7

दल के संबंध में मैक्स वेबर के विचार

वर्गों की वास्तविक स्थिति अर्थ प्रणाली के क्रम में है, जबकि प्रस्थिति समूहों का स्थान सामाजिक क्रम (आर्डर) में है..... लेकिन दल शक्ति संरचना के अंतर्गत होते हैं...।

दलों की क्रियाएँ हमेशा एक ऐसे उद्देश्य के लिए होती हैं जिनकी प्राप्ति एक नियोजित दृष्टि के लिए की जाती है। उद्देश्य एक 'कारण' हो सकता है (दल का उद्देश्य किसी आदर्श या भौतिक आवश्यकता के लिए कार्यक्रम की वास्तविकता को जानना भी हो सकता है), या उद्देश्य निजी भी हो सकता है (आराम, शक्ति और इनके माध्यम से नेता और दल के अनुयायियों का सम्मान)।

(वेबर 1948:194)

Reprint 2025-26

प्रश्नावली

1. क्या आपने बाल मज़दूर और मज़दूर किसान संगठन के बारे में सुना है? यदि नहीं तो पता कीजिए और उनके बारे में 200 शब्दों में एक लेख लिखिए।
2. ग्रामीणों की आवाज़ को सामने लाने में 73वाँ संविधान-संशोधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। चर्चा कीजिए।
3. एक निबंध लिखकर उदाहरण देते हुए उन तरीकों को बताइए जिनसे भारतीय संविधान ने साधारण जनता के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं और उनकी समस्याओं का अनुभव किया है।
4. लोकतंत्र में राजनैतिक दलों की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
5. लोकतांत्रिक व्यवस्था में दबाव समूह की भूमिका का वर्णन करें।
6. दबाव समूह का गठन किस प्रकार होता है?

संदर्भ ग्रंथ

आनंद, निखिल. 2006. 'डिस्कनेक्टिंग एक्सपीरियंस : मेकिंग वर्ल्ड क्लास रोड्स इन मुंबई' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली अगस्त 5 पृष्ठ 3422–3429

अंबेडकर, बाबा साहेब. 1992. 'द बुद्ध एंड हिज़ धर्म' वी. मून (संपा.) डा. बाबा साहेब अंबेडकरः राइटिंग एंड स्पीचेस, वॉल्यूम 11, बॉम्बे ऐजूकेशनल डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ़ महाराष्ट्र

अमर्त्य, सेन. 2004. द आर्गुमेंटेटिव इंडियन, राइटिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री, कल्चर एंड आइडेंटिटी, एलेन लेन, पेंग्विन ग्रुप, लंदन

वेबर, मैक्स. 1948. ऐस्सेज़ इन सोसियोलॉजी संपा. विद एन इंट्रोडक्शन द्वारा एच. एच. गर्थ और सी. राईट मिल्स, रूटलेज एंड केगन पॉल, लंदन

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

4 ग्रामीण समाज में विकास एवं परिवर्तन

भारतीय समाज प्राथमिक रूप से ग्रामीण समाज ही है, हालाँकि यहाँ नगरीकरण बढ़ रहा है। भारत के बहुसंख्यक लोग गाँव में ही रहते हैं (69 प्रतिशत, 2011 की जनगणना के अनुसार) उनका जीवन कृषि अथवा उससे संबंधित व्यवसायों से चलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बहुत से भारतीयों के लिए भूमि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है। भूमि संपति का एक महत्वपूर्ण प्रकार भी है। लेकिन भूमि न तो केवल उत्पादन का साधन है और न ही केवल संपत्ति का एक प्रकार। न ही केवल कृषि है जो कि उनके जीविका का एक प्रकार है। यह जीने का एक तरीका भी है। हमारी बहुत सी सांस्कृतिक रस्मों और उनके प्रकार में कृषि की पृष्ठभूमि होती है। आप पिछले पाठों को याद कीजिए कि कैसे संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तन घनिष्ठ रूप में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में नव वर्ष के त्योहार जैसे तमिलनाडु में पोंगल, आसाम में बीहू, पंजाब में बैसाखी, कर्नाटक में उगाड़ी ये सब मुख्य रूप से फसल काटने के समय मनाए जाते हैं, और नए कृषि मौसम के आने की घोषणा करते हैं। कुछ अन्य कृषि संबंधी त्यौहारों के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए।

कृषि एवं संस्कृति के बीच एक घनिष्ठ संबंध है। हमारे देश में कृषि की प्रकृति और अभ्यास प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न तरह का मिलेगा। ये भिन्नताएँ विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों में बिंबित होती हैं। आप कह सकते हैं कि ग्रामीण भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना दोनों कृषि और कृषिक (एगरेरियन) जीवन पद्धति से बहुत निकटता से जुड़ी हुई है।

अधिकतम ग्रामीण जनसंख्या के लिए कृषि जीविका का एकमात्र महत्वपूर्ण स्रोत या साधन है। लेकिन ग्रामीण सिर्फ कृषि ही नहीं है। बहुत से ऐसे क्रियाकलाप हैं जो कृषि और ग्राम्य जीवन की मदद के लिए हैं और वे ग्रामीण भारत में लोगों के जीविका के स्रोत हैं! उदाहरण के लिए बहुत से ऐसे कारीगर या दस्तकार जैसे कुम्हार, खाती, जुलाहे, लुहार एवं सुनार भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा और खंड हैं। औपनिवेशिक काल से ही वे संख्या में धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। आपने पहले अध्याय में पढ़ ही लिया है कि कैसे मशीन से बने सामानों के आगमन ने उनकी हाथ से बनी हुई वस्तुओं का स्थान ले लिया है।

बहुत से अन्य विशेषज्ञ एवं दस्तकार जैसे कहानी सुनाने वाले, ज्योतिषी, पुजारी, भिश्ती एवं तेली इत्यादि भी ग्रामीण जीवन में लोगों को सहारा देते हैं। ग्रामीण भारत में व्यवसायों की भिन्नता यहाँ की जाति

Reprint 2025-26

व्यवस्था में प्रतिबिंबित होती है, जहाँ कि कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञ और अपनी सेवाएँ देने वाले धोबी, कुम्हार एवं सुनार इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इनमें से कुछ परंपरागत व्यवसाय आज टूट रहे हैं। लेकिन ग्रामीण नगरीय आर्थिकी के परस्पर अंत:संबंध से कई व्यवसाय गाँवों में आ रहे हैं। बहुत से लोग गाँवों में रहते हैं, नौकरी करते हैं या उनकी जीविका ग्रामीण अकृषि क्रियाकलापों पर आधारित है। उदाहरण के लिए बहुत से गाँव में रहने वाले लोग सरकारी नौकरी जैसे डाकखाने में, शिक्षा विभाग में, कारखाने में कामगार या सेना की नौकरी करते हैं, उनकी जीविका अकृषि क्रियाकलापों से चलती है।

क्रियाकलाप 4.1

- *आपके क्षेत्र में मनाए जाने वाले किसी ऐसे महत्वपूर्ण त्योहार के बारे में सोचिए जिसका संबंध फसलों या कृषि जीवन से है। इस त्योहार में शामिल विभिन्न रीति रिवाजों का क्या अभिप्राय है, और वे कृषि के साथ कैसे जुड़े हैं?*
- *भारत मे बहुत से ऐसे कस्बे और शहर बढ़ रहे हैं जिनके चारों ओर गाँव है। क्या आप किसी ऐसे शहर या कस्बे के बारे में बता सकते हैं जो पहले गाँव था या ऐसा क्षेत्र जो पहले कृषि भूमि था? इस स्थान के विकसित होने के बारे में आप क्या सोचते हैं। और उन लोगों का क्या हुआ जिनकी जीविका इस भूमि से चलती थी।*

The Diversity of Occupations

4.1 कृषिक संरचनाः ग्रामीण भारत में जाति एवं वर्ग

ग्रामीण समाज में कृषियोग्य भूमि ही जीविका का एकमात्र महत्वपूर्ण साधन और संपत्ति का एक प्रकार है। लेकिन किसी विशिष्ट गाँव या किसी क्षेत्र में रहने वालों के बीच इसका उचित विभाजन नहीं है। न ही सभी के पास भूमि होती है। वास्तव में भूमि का विभाजन घरों के बीच बहुत असमान रूप से होता है। भारत के कुछ भागों में अधिकांश लोगों के पास कुछ न कुछ भूमि होती है – अक्सर जमीन का बहुत छोटा टुकड़ा होता है। कुछ दूसरे भागों में 40 से 50 प्रतिशत परिवारों के पास कोई भूमि नहीं होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी जीविका या तो कृषि मज़दूरी से या अन्य प्रकार के कार्यों से चलती है। इसका सहज अर्थ यह हुआ कि कुछ थोड़े परिवार बहुत अच्छी अवस्था में है। बड़ी संख्या में लोग गरीबी की रेखा के ऊपर या नीचे होते हैं।

उत्तराधिकार के नियमों और पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था के कारण, भारत के अधिकांश भागों में महिलाएँ ज़मीन की मालिक नहीं होती हैं। कानून महिलाओं को पारिवारिक संपत्ति में बराबर की हिस्सेदारी दिलाने में सहायक होता है। वास्तव में उनके पास बहुत सीमित अधिकार होते हैं, और परिवार का हिस्सा होने के नाते भूमि पर अधिकार होता है जिसका कि मुखिया एक पुरुष होता है।

भूमि स्वामित्व के विभाजन अथवा संरचना संबंध के लिए अक्सर कृषिक संरचना शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषियोग्य भूमि ही उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है, भूमि रखना ही ग्रामीण वर्ग संरचना को आकार देता है। कृषि उत्पादन की प्रक्रिया में आपकी भूमिका का निर्धारण मुख्य रूप से भूमि पर आपके अभिगमन से होता है। मध्यम और बड़ी ज़मीनों के मालिक साधारणतः कृषि से पर्याप्त अर्जन ही नहीं बल्कि अच्छी आमदनी भी कर लेते हैं (हालाँकि यह फसलों के मूल्य पर निर्भर करता है जो कि बहुत अधिक घटता-बढ़ता रहता है, साथ ही अन्य कारणों जैसे मानसून पर भी निर्भर करता है) लेकिन *कृषि मज़दूरों* को अक्सर निम्नतम निर्धारित मूल्य से कम दिया जाता है और वे बहुत कम कमाते हैं। उनकी आमदनी निम्नतम होती है। उनका रोज़गार असुरक्षित होता है। अधिकांश कृषि-मज़दूर रोज़ाना दिहाड़ी कमाने वाले होते हैं और वर्ष में बहुत से दिन उनके पास कोई काम नहीं होता है। इसे बेरोज़गारी कहते हैं। समान रूप से काश्तकार या पट्टेधारी (कृषक जो भूस्वामी से जमीन पट्टे पर लेता है) की आमदनी मालिक-कृषकों से कम होती है, क्योंकि वह ज़मीन के मालिक को यथेष्ट किराया चुकाता है – साधारणतः फसल से होने वाली आमदनी का 50 से 75 प्रतिशत।

अतः कृषक समाज को उसकी वर्ग संरचना से ही पहचाना जाता है। परंतु हमें यह भी अवश्य याद रखना चाहिए कि यह जाति व्यवस्था के द्वारा संरचित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जाति और वर्ग के संबंध बड़े जटिल होते हैं। ये संबंध हमेशा स्पष्टवादी नहीं होते। हम प्रायः यह सोचते है कि ऊँची जातिवालों के पास अधिक भूमि और आमदनी होती है और यह कि जाति और वर्ग में पारस्परिकता है, उनका संस्तरण नीचे की ओर होता है। कुछ क्षेत्रों में यह मोटे तौर पर सही है लेकिन पूर्ण सत्य नहीं है। उदाहरण के लिए कई जगहों पर सबसे ऊँची जाति ब्राह्मण बड़े भूस्वामी नहीं हैं, अतः वे कृषिक संरचना से भी बाहर हो गए हालाँकि वे ग्रामीण समाज के अंग हैं। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में भूस्वामित्व वाले समूह के लोग 'शूद्र' या 'क्षत्रिय' वर्ण के हैं। प्रत्येक क्षेत्र में, सामान्यतः एक या दो जातियों के लोग ही भूस्वामी होते हैं, वे संख्या के आधार पर भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने ऐसे लोगों को प्रबल जाति का नाम दिया। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रबल जाति समूह काफी शक्तिशाली होता है। आर्थिक और राजनीतिक रूप से वह स्थानीय लोगों पर प्रभुत्व

बनाए रखता है। उत्तर प्रदेश के जाट और राजपूत कर्नाटक के वोक्कालिगास और लिंगायत, आंध्र प्रदेश के कम्मास और रेड्डी और पंजाब के जाट सिख प्रबल भूस्वामी समूहों के उदाहरण हैं।

सामान्यतः प्रबल भूस्वामियों के समूहों में मध्य और ऊँची जातीय समूहों के लोग आते हैं, अधिकांश सीमांत किसान और भूमिहीन लोग निम्न जातीय समूहों के होते हैं। दफ्तरी वर्गीकरण के अनुसार ये लोग अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों अथवा अन्य पिछड़े वर्गों के होते हैं। भारत के कई भागों में, पहले 'अछूत' अथवा दलित जाति के लोगों को भूमि रखने का अधिकार नहीं था, वे अधिकांशतः प्रबल जाति के भूस्वामी समूहों के लोगों के यहाँ कृषि मज़दूर रहते थे। इसमें एक मज़दूर सेना बनी जिससे भूस्वामियों ने खेत जुतवाकर कृषि करवाई और ज़्यादा लाभ कमाया।

बॉक्स 4.1

कृषि उत्पादन और कृषिक संरचना के बीच एक सीधा संबंध होता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था होती है, जहाँ काफी वर्षा होती है, जहाँ सिंचाई के कृत्रिम साधन हों (जैसे चावल उत्पादन करने वाले क्षेत्र जो नदी के मुहाने (डेल्टा) पर होते हैं, उदाहरण के लिए तमिलनाडु में कावेरी वेसिन वहाँ गहन कृषि के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। यहाँ बहुत असमान कृषिक संरचना विकसित हुई। बड़ी संख्या में भूमिहीन मज़दूर, जो कि अधिकांशतः बंधुआ और निम्न जाति के होते हैं इस क्षेत्र की कृषीय संरचना के लक्षण थे। (कुमार 1998)

जाति और वर्ग का अनुपात अच्छा नहीं था अर्थात् विशिष्ट अर्थ में सबसे अच्छी ज़मीन और साधन उच्च एवं मध्य जातियों के पास थे, अतः शक्ति एवं विशेषाधिकार भी। इसका महत्वपूर्ण निहितार्थ ग्रामीण समाज पर होता है। देश के अधिकतर क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था मालिकाना जाति के पास सभी महत्वपूर्ण साधन हैं और सभी मज़दूरों पर उनका नियंत्रण है ताकि वे उनके लिए काम करें। उत्तरी भारत के कई भागों में अभी भी 'बेगार' और मुफ़्त मज़दूरी जैसी पद्धति प्रचलन में है। गाँव के ज़मींदार या भूस्वामी के यहाँ निम्न जाति समूह के सदस्य वर्ष में कुछ निश्चित दिनों तक मज़दूरी करते हैं। बहुत से गरीब कामगार पीढ़ियों से उनके यहाँ बँधुआ मज़दूर की तरह काम कर रहे हैं, हालाँकि कानूनन इस तरह की व्यवस्थाएँ समाप्त हो गई हैं, लेकिन वे कई क्षेत्रों में अभी भी चल रही हैं।

क्रियाकलाप 4.2

- *सोचिए कि आपने जाति व्यवस्था के बारे में क्या सीखा। कृषिक या ग्रामीण वर्ग संरचना और जाति के मध्य पाए जाने वाले विभिन्न संबंधों को वर्गीकृत कीजिए! इसकी संसाधनों, मज़दूर एवं व्यवसाय की विभिन्नता के साथ विवेचना कीजिए।*

4.2 भूमि सुधार के परिणाम

औपनिवेशिक काल

भारत में ऐतिहासिक कारणों से कुछ क्षेत्र मात्र एक या दो मुख्य समूहों के प्रभुत्व में रहे। लेकिन यह जानना महत्वपूर्ण है कि कृषिक संरचना पूर्व-औपनिवेशिक से औपनिवेशिक और स्वतंत्रता के पश्चात बृहद रूप में परिवर्तित होती रही। जबकि वही प्रबल जाति पूर्व-औपनिवेशिक काल में भी कृषिक जाति थी, वे प्रत्यक्ष रूप में ज़मीन के मालिक नहीं थे। इनके स्थान पर, शासन करने वाले समूह जैसे कि स्थानीय राजा या ज़मींदार (भूस्वामी जो अपने क्षेत्र में राजनीतिक रूप से भी शक्तिशाली थे, सामान्यतः क्षत्रिय या अन्य ऊँची जाति के

© NCERT not to be republished

होते थे) भूमि पर नियंत्रण रखते थे। किसान अथवा कृषक जो कि उस भूमि पर कार्य करता था, वह फसल का एक पर्याप्त भाग उन्हें देता था। जब ब्रिटिश औपनिवेशिक भारत में आए, तो उन्होंने कई क्षेत्रों में इन स्थानीय ज़मींदारों द्वारा ही काम चलवाया। उन्होंने ज़मींदारों को संपत्ति के अधिकार भी दे दिए। ब्रिटिश लोगों के लिए काम करते हुए उन्हें ज़मीन पर पहले से ज़्यादा नियंत्रण मिला। हालाँकि औपनिवेशिकों ने कृषि भूमि पर बहुत बड़ा टैक्स लगा दिया था, ज़मींदार कृषक से टैक्स के रूप में जितनी ज़्यादा उपज और पैसा ले सकते थे, ले लेते थे। ज़मींदारी व्यवस्था का एक परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश काल के दौरान कृषि उत्पादन कम होने लगा। ज़मींदारों ने किसानों को अपने दबाव से पीस डाला, साथ ही बार-बार पड़ने वाले अकाल और युद्ध ने जनता को एक तरह से मार डाला।

औपनिवेशिक भारत में बहुत से ज़िलों का प्रशासन ज़मींदारी व्यवस्था द्वारा चलता था। अन्य क्षेत्रों में यह सीधा ब्रिटिश शासन के अधीन था, जिसमें भूप्रबंध रैयतवाड़ी व्यवस्था के द्वारा होता था। (तेलुगू में रैयत का अर्थ है – कृषक) इस व्यवस्था में ज़मींदार के स्थान पर वास्तविक कृषक (वे खुद बहुधा ज़मींदार होते थे न कि कृषक) ही टैक्स चुकाने के लिए ज़िम्मेदार होते थे। क्योंकि औपनिवेशिक सरकार सीधा किसानों या भूस्वामियों से ही सरोकार रखती थी न कि किसी लॉर्ड के द्वारा, इसमें टैक्स का भार कम होता था और कृषकों को कृषि में निवेश करने के लिए अधिक प्रोत्साहन मिलता था। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन हुआ और वे संपन्न हुए।

औपनिवेशिक भारत में ज़मीन के टैक्स देने की यह पृष्ठभूमि (आप अपनी इतिहास की पुस्तक में इस बारे में ज़्यादा जान पाएँगे) वर्तमान भारत में कृषिक संरचना का अध्ययन करते हुए ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। क्योंकि आज वर्तमान संरचना में परिवर्तन एक शृंखला के रूप में आने शुरू हो गए हैं।

स्वतंत्र भारत

भारत के स्वतंत्र होने के बाद नेहरू और उनके नीति सलाहकारों ने नियोजित विकास के कार्यक्रमों की तरफ़ अपना ध्यान केंद्रित किया। कृषिकीय सुधारों के साथ ही साथ औद्योगीकरण भी इसमें शामिल था। नीति निर्माताओं ने उस समय भारत की निराशाजनक कृषि स्थिति पर अपने जवाबी मुद्दे बताए जो इसमें शामिल किए गए। मुख्य मुद्दे थे— पैदावार का कम होना, आयातित अनाज पर निर्भरता और ग्रामीण जनसंख्या के एक बड़े भाग में गहन गरीबी का होना। कृषि की उन्नति के लिए कृषिक संरचना में महत्वपूर्ण सुधार किए जाएँ और विशेष रूप से भूस्वामित्व एवं भूमि के बँटवारे की व्यवस्था मे भी सुधार किए जाएँ। सन् 1950 से 1970 के बीच में भूमि सुधार कानूनों की एक शृंखला को शुरू किया गया– इसे राष्ट्रीय स्तर के साथ राज्य के स्तर पर भी चलाया गया, इसका इरादा इन परिवर्तनों को लाने का था।

विधेयक में पहला सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था ज़मींदारी व्यवस्था को समाप्त करना, इससे उन बिचौलियों की फ़ौज समाप्त हो गई जो कि कृषक और राज्य के बीच में थी। भू-सुधार के लिए पास किए गए कानूनों में यह संभवतः सबसे अधिक प्रभावशाली कानून था। यह महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भूमि पर ज़मींदारों के उच्च अधिकारों को दूर करने में और उनकी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों को कम करने में सफल रहा। निश्चित रूप से, यह बिना संघर्ष के नहीं हो सकता था, लेकिन इसमें अंततोगत्वा वास्तविक भूस्वामियों एवं स्थानीय कृषकों की स्थिति को मज़बूत कर दिया।

भू-सुधार के कानूनों के अंतर्गत अन्य मुख्य कानून था पट्टेदारी का उन्मूलन और नियंत्रण या नियमन अधिनियम। उन्होंने या तो पट्टेदारी को पूरी तरह से हटाने का प्रयत्न किया या किराए के नियम बनाए ताकि पट्टेदार को कुछ सुरक्षा मिल सके। अधिकतर राज्यों में यह कानून कभी भी प्रभावशाली तरीके से लागू नहीं

Reprint 2025-26

किया गया। पश्चिम बंगाल और केरल में कृषिक संरचना में आमूल चूल परिवर्तन आए जिससे पट्टेदार को भूमि के अधिकार दिए गए।

क्रियाकलाप 4.3

➤ *भू-दान आंदोलन के बारे में जानें*

भूमि सुधार की तीसरी मुख्य श्रेणी में भूमि की हदबंदी अधिनियम थे। इन कानूनों के तहत एक विशिष्ट परिवार के लिए ज़मीन रखने की उच्चतम सीमा तय कर दी गई। प्रत्येक क्षेत्र में हदबंदी भूमि के प्रकार, उपज और अन्य इसी प्रकार के कारकों पर निर्भर थी। बहुत अधिक उपजाऊ ज़मीन की हदबंदी कम थी जबकि अनउपजाऊ, बिना पानी वाली ज़मीन की हदबंदी अधिक सीमा तक थी। यह संभवतः राज्यों का कार्य था, कि वह निश्चित करे कि अतिरिक्त भूमि (हदबंदी सीमा से ज़्यादा) को वह अधिगृहित कर लें, और इसे भूमिहीन परिवारों को तय की गई श्रेणी के अनुसार पुनः वितरित कर दें जैसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति में। परंतु अधिकांश राज्यों में ये अधिनियम दंतविहीन साबित हुए? इसमें बहुत से ऐसे बचाव के रास्ते और युक्तियाँ थीं जिससे परिवारों और घरानों ने अपनी भूमि को राज्यों को देने से बचा लिया था। हालाँकि कुछ बड़ी जागीरों या जायदादों (एस्टेट) को तोड़ दिया गया, लेकिन अधिकतर मामलों में भूस्वामियों ने अपनी भूमि रिश्तेदारों या अन्य लोगों के बीच विभाजित कर दी इसमें उनके नौकर के नाम भी तथाकथित बेनामी बदल दी गईं – जिसमें उन्हें ज़मीन पर नियंत्रण करने का अधिकार दिया गया (वास्तव में उनके नाम नहीं किया गया) कुछ स्थानों पर कुछ अमीर किसानों ने अपनी पत्नी को वास्तव में तलाक दे दिया (परंतु उसी के साथ रहते रहे) सीलिंग अधिनियम की व्यवस्था से बचने के लिए, जो कि एक अविवाहित महिला को अलग हिस्सा देने की अनुमति देता है लेकिन पत्नियों को नहीं। इन्हें बेनामी हस्तांतरण भी कहा जाता था।

कृषिक संरचना पूरे देश में बहुत ही भिन्न स्तर पर मिलती है। विभिन्न प्रकार और विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार की प्रगति भी असमान रूप से हुई। मोटे तौर पर कहें तो यह कहा जा सकता है कि हालाँकि इसमें औपनिवेशिक काल से अब तक वास्तव में परिवर्तन आया, लेकिन अभी भी बहुत असमानता बची हुई है। इस संरचना ने कृषि संबंधी उपज पर ध्यान खींचा। भूमि सुधार न केवल कृषि उपज को अधिक बढ़ाने के लिए बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों से गरीबी हटाने और सामाजिक न्याय दिलाने के लिए भी आवश्यक है।

4.3 हरित क्रांति और इसके सामाजिक परिणाम

हमने देखा कि अधिकतर क्षेत्रों में भू-सुधार का ग्रामीण समाज तथा कृषिक संरचना पर एक सीमित प्रभाव ही है। इसके विपरीत 1960–70 के दशकों की हरित क्रांति द्वारा उन क्षेत्रों में जहाँ यह प्रभावशाली रही, महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जैसाकि आप जानते हैं कि हरित क्रांति कृषि आधुनिकीकरण का एक सरकारी कार्यक्रम था। इसके लिए आर्थिक सहायता अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी गई थी तथा यह अधिक उत्पादकता वाले अथवा संकर बीजों के साथ कीटनाशकों, खादों तथा किसानों के लिए अन्य निवेश देने पर केंद्रित थी। हरित क्रांति कार्यक्रम केवल उन्हीं क्षेत्रों में लागू किया गया था जहाँ सिंचाई का समुचित प्रबंध था क्योंकि नए बीजों तथा कृषि पद्धति हेतु समुचित जल की आवश्यकता थी। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से गेहूँ तथा चावल उत्पादन करने वाले क्षेत्रों पर ही लक्षित था। परिणामस्वरूप हरित क्रांति पैकेज की प्रथम लहर केवल कुछ क्षेत्रों में जैसे पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तटीय आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में ही चली। इन क्षेत्रों में त्वरित सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों ने समाजशास्त्रियों द्वारा हरित क्रांति के बारे में शृंखलाबद्ध अध्ययनों तथा ज़ोरदार वाद-विवादों की बाढ़ ला दी।

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

नयी तकनीक द्वारा कृषि उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि हुई। दशकों बाद पहली बार भारत खाद्यान्न उत्पादन में स्वावलंबी बनने में सक्षम हुआ। हरित क्रांति सरकार तथा इसमें योगदान देने वाले वैज्ञानिकों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी गई है। हालाँकि इसके कुछ नकारात्मक सामाजिक तथा पर्यावरण के विपरीत प्रभावों की ओर हरित क्रांति के क्षेत्रों का अध्ययन करने वाले समाजशास्त्रियों ने संकेत किया है।

हरित क्रांति के अधिकतर क्षेत्रों में मूल रूप से मध्यम तथा बड़े किसान ही नयी तकनीक का लाभ उठा सके। इसका कारण यह था कि इसमें किया जाने वाला निवेश महँगा था, जिनका व्यय छोटे तथा सीमांत किसान उठाने में उतने सक्षम नहीं थे जितने कि बड़े किसान। जब कृषक मूल रूप से स्वयं के लिए उत्पादन करते हैं, तथा बाज़ार के लिए उत्पादन करने में असमर्थ होते हैं तब उन्हें जीवननिर्वाही कृषक कहा जाता है तथा आमतौर पर उन्हें कृषक की संज्ञा दी जाती है। काश्तकार अथवा किसान वे हैं जो परिवार की आवश्यकता से अधिक अतिरिक्त उत्पादन करने में सक्षम होते हैं, तथा इस प्रकार वे बाज़ार से जुड़े होते हैं। हरित क्रांति और इसके बाद होने वाले कृषि व्यापारीकरण का मुख्य लाभ *उन किसानों को मिला जो बाज़ार के लिए अतिरिक्त उत्पादन करने में सक्षम थे।*

इस प्रकार हरित क्रांति के प्रथम चरण, 1960 तथा 1970 के दशकों में, नयी तकनीक के लागू होने से ग्रामीण समाज में असमानताएँ बढ़ने का आभास हुआ। हरित क्रांति की फसलें अधिक लाभ वाली थीं क्योंकि इनसे अधिक उत्पादन होता था। अच्छी आर्थिक स्थिति वाले किसान जिनके पास ज़मीन, पूँजी, तकनीक तथा जानकारी थी तथा जो नए बीजों और खादों में पैसा लगा सकते थे, वे अपना उत्पादन बढ़ा सके और अधिक पैसा कमा सके। हालाँकि कई मामलों में इससे पट्टेदार कृषक बेदखल भी हुए। ऐसा इसलिए कि भूस्वामियों ने अपने पट्टेदारों से ज़मीन वापस ले ली क्योंकि अब सीधे कृषि कार्य करना अधिक लाभदायक था। इससे धनी किसान और अधिक संपन्न हो गए तथा भूमिहीन तथा सीमांत भू-धारकों की दशा और बिगड़ गई।

इसके अतिरिक्त पंजाब तथा मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में कृषि उपकरणों जैसे टिलर, ट्रेक्टर, थ्रैशर व हारवेस्टर के प्रयोग ने सेवा प्रदान करने वाली जातियों के उन समूहों को भी बेदखल कर दिया जो इन कृषि संबंधी क्रियाकलापों को करते थे। इस बेदखली की प्रक्रिया ने ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर प्रवासन की गति को और भी बढ़ा दिया।

हरित क्रांति की अंतिम परिणति 'विभेदीकरण' एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसमें धनी अधिक धनी हो गए तथा कई निर्धन पूर्ववत रहे या अधिक गरीब हो गए। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कई क्षेत्रों में मज़दूरों की माँग बढ़ने से कृषि मज़दूरों का रोज़गार तथा उनकी दिहाड़ी में भी बढ़ोतरी हुई। इसके अतिरिक्त कीमतों की बढ़ोतरी तथा कृषि मज़दूरों के भुगतान के तरीकों में बदलाव, खाद्यान्न के स्थान पर नगद भुगतान से अधिकतर ग्रामीण मज़दूरों की आर्थिक दशा खराब हो गई।

हरित क्रांति का दूसरा चरण 1980 के दशक में शुरू हुआ जिसमें सूखे तथा आंशिक सिचिंत क्षेत्रों में रहने वाले किसानों ने हरित क्रांति की खेती के तरीकों का पालन करना शुरू किया। इन क्षेत्रों में सूखी कृषि से सिंचित कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण बदलाव आया है तथा साथ ही फसल के प्रतिमानों एवं प्रकारों में भी परिवर्तन आया है। बढ़ते व्यापारीकरण तथा बाज़ार पर निर्भरता ने इन क्षेत्रों में (उदाहरण के लिए जहाँ कपास की खेती को प्रोत्साहित किया गया है) जीवन व्यापार की असुरक्षा को घटाने की बजाय बढ़ाया ही है क्योंकि किसान जो एक समय अपने प्रयोग के लिए खाद्यान्न का उत्पादन करते थे अब अपनी आमदनी के लिए बाज़ार पर निर्भर हो गए। *बाजारोन्मुखी कृषि में विशेषतः जब एक ही फसल उगाई जाती है, तो कीमतों में कमी अथवा खराब फसल से किसानों की आर्थिक बरबादी हो सकती* है। हरित क्रांति के अधिकांश क्षेत्रों

में किसानों ने बहुफसली कृषि व्यवस्था, जिसमें वे जोखिम को बाँट सकते थे, के स्थान पर एकल फसली कृषि व्यवस्था को अपनाया, जिसका अर्थ यह था कि फसल नष्ट होने पर उनके पास निर्भरता हेतु कुछ भी नहीं है।

बॉक्स 4.2

स्थानीय मत में सावयवी उत्पाद की संपूर्णता की संकर उत्पाद के साथ तुलना की गई है। मदभावी गाँव की एक बुज़ुर्ग महिला भार्गव हुगर ने कहा।
क्या... वे गेहूँ, लाल सोरघम उगाते हैं... कुछ कंद और मिर्च के पौधे उगाते हैं... कपास। अब सब केवल संकर है... ज्वारी (सावयव/स्थानीय?) कहाँ है? संकर पौधे... और पैदा होने वाले बच्चे भी संकर होते हैं। (वासवी 1994:295–96)

हरित क्रांति की रणनीति की एक नकारात्मक परिणति क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि थी। वे क्षेत्र जहाँ यह तकनीकी परिवर्तन हुआ अधिक विकसित हो गए जबकि अन्य क्षेत्र पूर्ववत रहे। उदाहरण के लिए हरित क्रांति को देश के पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों तथा पंजाब-हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक लागू किया गया (दास 1999)। यह वे क्षेत्र हैं जहाँ सामंतवादी कृषि संरचना आज भी सुस्थापित है जिसमें भूधारक जातियों तथा भूस्वामी निम्न जातियाँ, भूमिहीन मज़दूरों तथा छोटे किसानों पर अपनी सत्ता बरकरार रखे हुए है। जाति तथा वर्ग की तीक्ष्ण असमानताओं तथा शोषणकारी मज़दूर संबंधों ने इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की हिंसा जिसमें अंतर्जातीय हिंसा सम्मिलित है, को हाल के वर्षों में बढ़ावा दिया है।

अक्सर यह सोचा जाता है कि कृषि की 'वैज्ञानिक' पद्धति की जानकारी देने से भारतीय कृषकों की दशा में सुधार होगा। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारतीय कृषक सदियों से, हरित क्रांति के प्रारंभ से कहीं पहले से, कृषि कार्य करते आ रहे हैं। उन्हें कृषि भूमि तथा उसमें बोई जाने वाली फसलों के बारे में बहुत सघन तथा विस्तृत पारंपरिक जानकारी है। ऐसी बहुत सी जानकारी, जैसे बीजों की बहुत सी पारंपरिक किस्में जिन्हें किसानों ने सदियों में उन्नत किया था, लुप्त होती जा रही हैं, क्योंकि संकर तथा जैविक सुधार वाले बीजों की किस्मों को अधिक उत्पादकता वाले तथा 'वैज्ञानिक' बीजों के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है (गुप्ता 1988; वासवी 1999)। पर्यावरण तथा समाज पर कृषि के आधुनिक तरीकों के नकारात्मक प्रभाव को देखते हुए, बहुत से वैज्ञानिक तथा कृषक आंदोलन अब कृषि के पारंपरिक तरीकों तथा अधिक सावयवी बीजों के प्रयोग की ओर लौटने की सलाह दे रहे हैं। बहुत से ग्रामीण लोग स्वयं विश्वास करते हैं कि संकर किस्म, पारस्परिक किस्मों से कम स्वस्थ होती हैं।

4.4 स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण समाज में परिवर्तन

स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक संबंधों की प्रकृति में अनेक प्रभावशाली रूपांतरण हुए, विशेषतः उन क्षेत्रों में जहाँ हरित क्रांति लागू हुई। ये बदलाव थे—

- गहन कृषि के कारण कृषि मज़दूरों की बढ़ोतरी;
- भुगतान में सामान (अनाज) के स्थान पर नगद भुगतान;
- पारंपरिक बंधनों में शिथिलता अथवा भूस्वामी एवं किसान या कृषि मज़दूरों (जिन्हें बँधुआ मज़दूर भी कहते हैं) के मध्य पुश्तैनी संबंधों में कमी होना;
- और 'मुक्त' दिहाड़ी मज़दूरों के वर्ग का उदय।

भूस्वामियों (जो अधिकतर प्रबल जाति के होते थे) तथा कृषि मज़दूरों के (अधिकतर निम्न जातियों के) मध्य संबंधों की प्रकृति में परिवर्तन का वर्णन समाजशास्त्री जान ब्रेमन ने 'संरक्षण से शोषण' की ओर बदलाव में किया था (ब्रेमन 1974)। ऐसे परिवर्तन उन तमाम क्षेत्रों में हुए जहाँ कृषि का व्यापारीकरण

© NCERT not to be republished

अधिक हुआ, अर्थात् जहाँ फसलों का उत्पादन मूल रूप से बाज़ार में बिक्री के लिए किया गया। मज़दूर संबंधों का यह बदलाव कुछ विद्वानों द्वारा पूँजीवादी कृषि की ओर एक बदलाव के रूप में देखा जाता है। क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था, उत्पादन के साधन (इस मामले में भूमि) तथा मज़दूरों के पृथक्कीकरण तथा 'मुक्त' दिहाड़ी मज़दूरों के प्रयोग पर आधारित होता है। सामान्यतः, यह सच है कि अधिक विकसित क्षेत्रों के किसान अधिक बाज़ारोन्मुखी हो रहे थे। कृषि के अधिक व्यापारीकरण के कारण ये ग्रामीण क्षेत्र भी विस्तृत अर्थ व्यवस्था से जुड़ते जा रहे थे। इस प्रक्रिया से मुद्रा का गाँवों की तरफ़ बहाव बढ़ा तथा व्यापार के अवसरों व रोज़गार में विस्तार हुआ। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बदलाव की यह प्रक्रिया वास्तव में औपनिवेशिक काल में प्रारंभ हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में भूमियों के बड़े टुकड़े कपास की कृषि के लिए दिए गए थे, तथा कपास की खेती करने वाले किसान सीधे विश्व बाज़ार से जुड़ गए। हालाँकि इसकी गति तथा विस्तार में स्वतंत्रता के बाद तेज़ी से परिवर्तन हुआ, क्योंकि सरकार ने कृषि की आधुनिक पद्धतियों को प्रोत्साहित किया, तथा अन्य रणनीतियों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण का प्रयास किया। राज्य सरकार ने ग्रामीण अधिसंरचना जैसे सिंचाई सुविधाएँ, सड़कें, बिजली तथा कृषि संबंधी ग्रामीण अधिसंरचना में निवेश किया। सरकारी समितियों द्वारा उधार की सुविधा भी उपलब्ध करवाई। नियमित रूप से कृषि उत्पाद में वृद्धि के लिए बिना किसी अवरोध के बिजली सप्लाई भी ग्रामीण भारत के लिए आवश्यक है। इसे यंत्रपरक आवश्यकता भी कहा जा सकता है। 2014 में शुरू की गई दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना इस दिशा में भारत सरकार का एक सराहनीय प्रयास है। ग्रामीण विकास के इन प्रयासों का समग्र परिणाम न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा कृषि में रूपांतरण था बल्कि कृषिक संरचना तथा ग्रामीण समाज में भी रूपांतरण था।

देश के विभिन्न भागों में कृषि कार्य

1960 के दशक से कृषि विकास द्वारा ग्रामीण सामाजिक संरचना को बदलने वाला एक तरीका नयी तकनीक अपनाने वाले मध्यम तथा बड़े किसानों की समृद्धि थी, जिसकी चर्चा पूर्व भाग में की गई है। अनेक कृषि संपन्न क्षेत्रों जैसे तटीय आंध्रप्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा मध्य गुजरात में प्रबल जातियों के संपन्न किसानों ने कृषि से होने वाले लाभ को अन्य प्रकार के व्यापारों में निवेश करना प्रारंभ कर दिया। विविधता की इस प्रक्रिया से नए उद्यमी समूहों का उदय हुआ जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों से इन विकासशील क्षेत्रों के बढ़ते कस्बों की ओर पलायन किया, जिससे नए क्षेत्रीय अभिजात वर्गों का उदय हुआ जो आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से प्रबल हो गए (रट्टन, 1995)। वर्ग संरचना के इस परिवर्तन के साथ ही ग्रामीण तथा अर्द्ध-नगरीय क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का विस्तार, विशेषतः निजी व्यावसायिक महाविद्यालयों की स्थापना से नव ग्रामीण अभिजात वर्ग द्वारा अपने बच्चों को शिक्षित करना संभव हुआ, जिनमें से बहुतों ने व्यावसायिक अथवा श्वेत वस्त्र व्यवसाय अपनाए अथवा व्यापार प्रारंभ कर नगरीय मध्य वर्गों के विस्तार में योगदान दिया।

इस प्रकार त्वरित कृषि विकास वाले क्षेत्रों में पुराने भूमि अथवा कृषि समूह का समेकन हुआ, जिन्होंने स्वयं को एक गतिमान उद्यमी, ग्रामीण नगरीय प्रबल वर्ग के रूप में परिवर्तित कर लिया। लेकिन अन्य क्षेत्रों जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में प्रभावशाली भू-सुधारों का अभाव, राजनीतिक गतिशीलता तथा पुनर्वितरण के साधनों के कारण वहाँ तुलनात्मक रूप से कृषिक संरचना तथा अधिकांश लोगों की जीवन दशाओं में थोड़े बदलाव हुए। इसके विपरीत केरल जैसे राज्य विकास की एक भिन्न प्रक्रिया से गुजरे जिसमें राजनीतिक गतिशीलता, पुनर्वितरण के साधन तथा बाह्य अर्थव्यवस्था (मूल रूप से खाड़ी के देश) से जुड़ाव ने ग्रामीण परिवेश में भरपूर बदलाव किया। केरल में ग्रामीण क्षेत्र मूल रूप से कृषि प्रधान होने के बजाए मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला है जिनमें कुछ कृषि कार्य खुदरा विक्रय तथा सेवाओं के एक विस्तृत संजाल के साथ जुड़ा हुआ है, और जहाँ एक बड़ी संख्या में परिवार विदेश से भेजे जाने वाले धन पर निर्भर हैं।

कृषि व्यवस्था में बदलती हुई तकनीकें

इस घर को देखिए। यह सुकुतम केरल के एक गाँव चक्कार में है यह पालघाट कस्बे से जो कि ज़िले से 3 किमी. की दूरी पर है।

Reprint 2025-26

4.5 मज़दूरों का संचार (सरकुलेशन)

प्रवासी कृषि मज़दूरों की बढ़ोतरी ग्रामीण समाज का एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन है जो कृषि के व्यापारीकरण से जुड़ा है। मज़दूरों अथवा पहरेदारों तथा भूस्वामियों के बीच संरक्षण का पारंपरिक संबंध टूटने से तथा पंजाब जैसे हरित क्रांति के संपन्न क्षेत्रों में कृषि मज़दूरों की माँग बढ़ने से मौसमी पलायन का एक प्रतिमान उभरा जिसमें हज़ारों मज़दूर अपने गाँवों से अधिक संपन्न क्षेत्रों, जहाँ मज़दूरों की अधिक माँग तथा उच्च मज़दूरी थी, की तरफ़ संचार करते हैं। 1990 के दशक के मध्य से ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती असमानताएँ, जिन्होंने अनेक गृहस्थियों को स्वयं को बनाए रखने के लिए बहुस्तरीय व्यवसायों को सम्मिलित करने पर बाध्य किया, से भी मज़दूर पलायन करते हैं। जीवन व्यापार की रणनीति के तौर पर पुरुष समय-समय पर काम तथा अच्छी मज़दूरी की खोज में अप्रवास कर जाते हैं, जबकि स्त्रियों तथा बच्चों को अक्सर गाँव में बुज़ुर्ग माता-पिता के साथ छोड़ दिया जाता है। प्रवासन करने वाले मज़दूर मुख्यतः सूखाग्रस्त तथा कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों से आते हैं तथा वे वर्ष के कुछ हिस्सों के लिए पंजाब तथा हरियाणा के खेतों में, अथवा उत्तर प्रदेश के ईंट के भट्टों में, अथवा नयी दिल्ली या बैंगलोर जैसे शहरों में, भवन निर्माण कार्य में काम करने के लिए जाते हैं। प्रवासन करने वाले इन मज़दूरों को जान ब्रेमन ने 'घुमक्कड़ मज़दूर' (फूटलूज़ लेबर) कहा है, परंतु इसका अर्थ स्वतंत्रता नहीं है। इसके विपरीत ब्रेमन (1982) का अध्ययन बताता है कि भूमिहीन मज़दूरों के पास बहुत से अधिकार नहीं होते, उदाहरण के लिए उन्हें अक्सर न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं दी जाती है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि धनी किसान अक्सर फसल काटने तथा इसी प्रकार की अन्य गहन कृषि क्रियाओं के लिए स्थानीय कामकाजी वर्ग के स्थान पर, प्रवासन करने वाले मज़दूरों को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि प्रवासन करने वाले मज़दूरों का आसानी से शोषण किया जा सकता है तथा उन्हें कम मज़दूरी भी दी जा सकती है। इस प्राथमिकता ने कुछ क्षेत्रों में एक विशिष्ट प्रतिमान पैदा किया है, जहाँ स्थानीय भूमिहीन मज़दूर अपने गाँव से कृषि के चरम मौसम में काम की तलाश में प्रवास कर जाते हैं जबकि दूसरे क्षेत्रों में प्रवासन करने वाले मज़दूर स्थानीय खेतों में काम करने के लिए लाए जाते हैं। यह प्रतिमान विशेषतः गन्ना उत्पादित क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रवासन तथा काम की सुरक्षा के अभाव से इन मज़दूरों के कार्य तथा जीवन दशाएँ खराब हो जाती हैं।

मज़दूरों के बड़े पैमाने पर संचार से ग्रामीण समाज, दोनों ही भेजने वाले तथा प्राप्त करने वाले क्षेत्रों, पर अनेक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़े हैं। उदाहरण के लिए निर्धन क्षेत्रों में, जहाँ परिवार के पुरुष सदस्य वर्ष का अधिकतर हिस्सा गाँवों के बाहर काम करने में बिताते हैं, कृषि मूलरूप से एक महिलाओं का कार्य बन गया है। महिलाएँ भी कृषि मज़दूरों के मुख्य स्रोत के रूप में उभर रही हैं जिससे 'कृषि मज़दूरों का महिलाकरण' हो रहा है। महिलाओं में असुरक्षा अधिक है क्योंकि वे समान कार्य के लिए पुरुषों से कम मज़दूरी पाती हैं। अभी हाल तक सरकारी आँकड़ों में कमाने वालों तथा मज़दूरों के रूप में महिलाएँ मुश्किल से नज़र आती थीं जबकि महिलाएँ भूमि पर भूमिहीन मज़दूर तथा कृषक के रूप में श्रम करती हैं, मौज़ूदा पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था तथा अन्य सांस्कृतिक व्यवहार जिनसे पुरुष के अधिकारों का हित होता है, आमतौर पर महिलाओं को भूमि के स्वामित्व से पृथक रखता है।

4.6 भूमंडलीकरण, उदारीकरण तथा ग्रामीण समाज

उदारीकरण की नीति जिसका अनुसरण भारत 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध से कर रहा है, का कृषि तथा ग्रामीण समाज पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इस नीति के अंतर्गत विश्व व्यापार संगठन (डब्लू.टी.ओ.)

Reprint 2025-26

में भागीदारी होती है, जिसका उद्देश्य अधिक मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था है, और जिसमें भारतीय बाज़ारों को आयात हेतु खोलने की आवश्यकता है। दशकों तक सरकारी सहयोग और संरक्षित बाज़ारों के बाद भारतीय किसान अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार से प्रतिस्पर्धा हेतु प्रस्तुत है। उदाहरण के लिए हम सभी ने आयातित फलों तथा अन्य खाद्य सामग्री को अपने स्थानीय बाज़ारों में देखा है – ये वे वस्तुएँ हैं जो कुछ वर्ष पूर्व तक आयात प्रतिस्थापन नीतियों के कारण उपलब्ध नहीं थी। हाल ही में भारत ने गेंहू के आयात का भी फैसला किया, जो एक विवादास्पद फैसला था जिसने खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता की पूर्व नीति को उलट दिया। और साथ ही जो स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका के खाद्यान्न पर हमारी निर्भरता की कटु स्मृति कराता है।

LETTER FROM MANSURPUR

In western UP, sugarcane is life

Avijit Ghosh | TNN

Mansurpur (UP): It's early morning. And a bunch of anarchic lorries and tractors swollen with sugarcane are already holding up the traffic on NH 58. A little ahead, a posse of bullock carts in similar condition has formed a hydra-headed queue before a sugar mill in this dusty kasba. It will be hours before the yield is delivered.

Outside, Raj Kumar Tyagi of Mubarakpur village sits by his tractor unmindful of asthmatic dust hanging thick in the air. "We are used to waiting," he says. "That's what a crop like sugarcane that takes almost a year to mature teaches farmers."

The wait, from all accounts, has been worth it. "This year, the quality and quantity is good," says Vipin Tyagi, manager (cane), Uttam Sugar Mills. The state government hasn't announced the year's procurement price yet. But the cheery mood flows from a rustic wisdom that former pradhan of Tughluqpur village, Om Singh, typifies. He says, "With UP assembly elections due early next year, farmers believe chief minister Mulayam Singh Yadav will declare a high procurement rate just like wheat." Farmer-friendly organisations have been issuing press statements to keep the pressure. Last year, cane farmers earned around Rs 130-135 per quintal. This year, they hope to fetch at least Rs 150 per quintal.

But the long, jointed fibrous stalk isn't just the region's primary crop. In these parts, sugarcane is synonymous with life. It's not only the spine of the local economy; it's also the soul of its social calendar. The quantum of production and its price decides both marriage spending and motorcycle sales. The crop acts as a guarantee for farmers in need of loans. In these badlands, where kidnapping is a cottage industry, it means a lot for criminals too.

"Before the harvest, kidnappers hide their victims in tall sugarcane fields. After the crop is reaped, the venue shifts elsewhere," says Amarendra Sengar, SP, Muzaffarnagar district. "But unlike Punjab, where festivals like Lohri are linked to wheat harvesting, no such celebrations are associated with sugarcane," says Muzaffarnagar-based psychologist Sanjay Singh.

Guest Editor's CHOICE

Statistics show UP contributes about 44% of India's total cane production. About 2.25 million hectares is under sugarcane cultivation. In 2006-06, the state produced around 135 million tonnes of the crop.

And western UP is cane heartland. As Pervez Garg of Mansurpur Traders Association puts it succinctly, "Everything we do or don't do is linked to sugarcane." Sari sales in his shop rise by 30% during the harvest season. Mobile phone retailer Sudesh Kumar sells three phones on an average during the off-season but the harvest months (November to March), sees sales move north to six phones a day. "Sometimes, the number is as high as nine," he informs. But for a liquor seller in Khatauli kasba, the season has a different meaning. "To me, it means the end of the beer and the beginning of whisky season," he says.

BUMPER CROP: Sales of consumer goods like bikes and mobiles surge during the harvest months in rural parts of western UP

► Delays irk farmers, P 19

ग्रामीण क्षेत्र

ये कृषि के भूमंडलीकरण की प्रक्रिया अथवा कृषि को विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में सम्मिलित किए जाने के संकेत हैं – वह प्रक्रिया जिसका किसानों और ग्रामीण समाज पर सीधा प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ पंजाब और कर्नाटक जैसे कुछ क्षेत्रों में किसानों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों (जैसे पेप्सी, कोक) से कुछ निश्चित फसलें (जैसे टमाटर और आलू) उगाने की संविदा दी गई है, जिन्हें ये कंपनियाँ उनसे प्रसंस्करण अथवा निर्यात हेतु खरीद लेती हैं। ऐसी 'संविदा खेती' पद्धति में, कंपनियाँ उगाई जाने वाली फसलों की पहचान करती हैं, बीज तथा अन्य वस्तुएँ निवेशों के रूप में उपलब्ध करवाती हैं, साथ ही जानकारी तथा अक्सर कार्यकारी पूँजी भी देती है। बदले में किसान बाज़ार की ओर से आश्वस्त रहता है क्योंकि कंपनी पूर्वनिर्धारित तय मूल्य पर उपज के क्रय का आश्वासन देती है। 'संविदा खेती' कुछ विशिष्ट मदों जैसे फूल (कट फ्लावर), अंगूर, अंजीर तथा अनार जैसे फल, कपास तथा तिलहन के लिए आजकल बहुत सामान्य है। जहाँ 'संविदा खेती' किसानों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है वहीं यह किसानों के लिए अधिक असुरक्षा भी बन जाती है, क्योंकि वे अपने जीवन व्यापार के लिए इन कंपनियों पर निर्भर हो जाते हैं। निर्यातोन्मुखी उत्पाद जैसे फूल और खीरे हेतु 'संविदा खेती' का अर्थ यह भी है कि कृषि भूमि का प्रयोग खाद्यान्न उत्पादन से हटकर किया जाता है। 'संविदा खेती' का समाजशास्त्रीय महत्त्व यह है कि यह बहुत से व्यक्तियों को उत्पादन प्रक्रिया से अलग कर देती है, तथा उनके अपने देशीय कृषि ज्ञान को निरर्थक बना देती है। इसके अतिरिक्त 'संविदा खेती' मूलरूप से अभिजात मदों का उत्पादन करती है तथा चूँकि यह अक्सर खाद तथा कीटनाशक का उच्च मात्रा में प्रयोग करते हैं, इसलिए यह बहुधा पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित नहीं होती।

कृषि के भूमंडलीकरण का एक अन्य तथा अधिक प्रचलित पक्ष बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इस क्षेत्र में कृषि मदों जैसे बीज, कीटनाशक तथा खाद के विक्रेता के रूप में प्रवेश है। पिछले दशक के आसपास से सरकार ने अपने कृषि विकास कार्यक्रमों में कमी की है तथा 'कृषि विस्तार' एजेंटों का स्थान गाँव में बीज, खाद तथा कीटनाशक कंपनियों के एजेंटों ने ले लिया है। ये एजेंट अकसर किसानों के लिए नए बीजों तथा कृषि कार्य हेतु

© NCERT not to be republished

फूलों की खेती

जानकारी का एकमात्र स्रोत होते हैं, और निःसंदेह वे अपने उत्पाद बेचने के इच्छुक होते हैं। इससे किसानों की महँगी खाद और कीटनाशकों पर निर्भरता बढ़ी है, जिससे उनका लाभ कम हुआ है, बहुत से किसान ऋणी हो गए हैं, तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण संकट भी पैदा हुआ है।

बॉक्स 4.3

किसानों द्वारा आत्महत्या

देश के विभिन्न भागों में 1997–98 से किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या का संबंध कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन व आर्थिक एवं कृषि नीतियों में परिवर्तन से होने वाली कृषिक समस्या से है। इनमें शामिल हैं— भूस्वामित्व के प्रतिमान में परिवर्तन; फसलों के प्रतिमान में परिवर्तन विशेषतः नगदी फसल की ओर झुकाव के कारण; उदारीकरण की नीतियाँ जिन्होंने भारतीय कृषि को भूमंडलीय शक्तियों के सम्मुख कर दिया है; उच्च लागत वाले निवेशों पर अत्यधिक निर्भरता; राज्य का कृषि विस्तार गतिविधियों से बाहर होना तथा बहुराष्ट्रीय बीज तथा खाद कंपनियों द्वारा उनका स्थान लेना; कृषि के लिए राज्य सहयोग में कमी; तथा कृषि कार्यों का वैयक्तीकरण। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2001 तथा 2006 के मध्य आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा महाराष्ट्र में 8,900 किसानों ने आत्महत्याएँ की। (सूरी, 2006:1523)

हालाँकि ऐसा उत्पादन करने का अर्थ था, कई प्रकार के जोखिम उठाना। कृषि रियायतों में कमी के कारण उत्पादन लागत में तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है, बाज़ार स्थिर नहीं है तथा बहुत से किसान अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए महँगे मदों में निवेश करने हेतु अत्यधिक उधार लेते हैं।

ऋण ग्रस्तता एवं कृषि उत्पादन की प्रक्रिया में आने वाले प्राकृतिक एवं सामाजिक संकट किसानों की आत्महत्या के मुख्य कारक हैं। अनेक आकस्मिक संकट प्रकृति में आए उतार चढ़ाव से उत्पन्न होते हैं। 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' एवं 'ग्राम उदय से भारत उदय' अभियान और साथ ही 'नेशनल

अरबन मिशन' (राष्ट्रीय ग्रामीण–नगरीय मिशन) सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन और किसान क्रेडिट कार्ड आदि वे कार्यक्रम हैं, जिन्हें भारत सरकार संचालित करती है। इन कार्यक्रमों ने पूरे देश में किसानों के लिए एकीकृत सहायता के मार्ग खोले हैं। इसके अतिरिक्त इन कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण लोगों के जीवनयापन में गुणात्मक सुधार हुआ है।

क्रियाकलाप 4.4

➢ *समाचारपत्र ध्यानपूर्वक पढ़ें। दूरदर्शन अथवा रेडियो के समाचार सुनें। कब-कब ग्रामीण क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है? किस तरह के मुद्दे आमतौर पर बताए जाते हैं?*

प्रश्नावली

1. दिए गए गद्यांश को पढ़ें तथा प्रश्नों का उत्तर दें।
   अघनबीघा में मज़दूरों की कठिन कार्य-दशा, मालिकों की एक वर्ग के रूप में आर्थिक शक्ति तथा प्रबल जाति के सदस्य के रूप में अपरिमित शक्ति के संयुक्त प्रभाव का परिणाम थी। मालिकों की सामाजिक शक्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष, राज्य के विभिन्न अंगों का अपने हितों के पक्ष में हस्तक्षेप करवा सकने की क्षमता थी। इस प्रकार प्रबल तथा निम्न वर्ग के मध्य खाई को चौड़ा करने में राजनीतिक कारकों का निर्णयात्मक योगदान रहा है।
   (i) मालिक राज्य की शक्ति को अपने हितों के लिए कैसे प्रयोग कर सके, इस बारे में आप क्या सोचते हैं?
   (ii) मज़दूरों की कार्य दशा कठिन क्यों थी?
2. भूमिहीन कृषि मज़दूरों तथा प्रवासन करने वाले मज़दूरों के हितों की रक्षा करने के लिए आपके अनुसार सरकार ने क्या उपाय किए हैं, अथवा क्या किए जाने चाहिए?
3. कृषि मज़दूरों की स्थिति तथा उनकी सामाजिक-अर्थिक उर्ध्वगामी गतिशीलता के अभाव के बीच सीधा संबंध है। इनमें से कुछ के नाम बताइए।
4. वे कौन से कारक हैं जिन्होंने कुछ समूहों के नव धनाढ्य, उद्यमी तथा प्रबल वर्ग के रूप में परिवर्तन को संभव किया है? क्या आप अपने राज्य में इस परिवर्तन के उदाहरण के बारे में सोच सकते हैं?
5. हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं की फ़िल्में अक्सर ग्रामीण परिवेश में होती हैं। ग्रामीण भारत पर आधारित किसी फ़िल्म के बारे में सोचिए तथा उसमें दर्शाए गए कृषक समाज और संस्कृति का वर्णन कीजिए। उसमें दिखाए गए दृश्य कितने वास्तविक हैं? क्या आपने हाल में ग्रामीण क्षेत्र पर आधारित कोई फ़िल्म देखी है? यदि नहीं तो आप इसकी व्याख्या किस प्रकार करेंगे?
6. अपने पड़ोस में किसी निर्माण स्थल, ईंट के भट्टे या किसी अन्य स्थान पर जाएँ जहाँ आपको प्रवासी मज़दूरों के मिलने की संभावना हो, पता लगाइए कि वे मज़दूर कहाँ से आए हैं? उनके गाँव से उनकी भर्ती किस प्रकार की गई, उनका मुकादम कौन है? अगर वे ग्रामीण क्षेत्र से हैं तो गाँवों में उनके जीवन के बारे में पता लगाइए तथा उन्हें काम ढूँढ़ने के लिए प्रवासन करके बाहर क्यों जाना पड़ा?
7. अपने स्थानीय फल विक्रेता के पास जाएँ और उससे पूछें कि वे फल जो वह बेचता है, कहाँ से आते हैं, और उनका मूल्य क्या है? पता लगाइए कि भारत के बाहर से फलों के आयात (जैसेकि आस्ट्रेलिया से सेव) के बाद स्थानीय उत्पाद के मूल्यों का क्या हुआ। क्या कोई ऐसा आयातित फल है जो भारतीय फलों से सस्ता है?

© NCERT not to be republished

8. ग्रामीण भारत में पर्यावरण स्थिति के विषय में जानकारी एकत्र कर एक रिपोर्ट लिखें। उदाहरण के लिए विषय, कीटनाशक, घटता जल स्तर, तटीय क्षेत्रों में झींगें की खेती का प्रभाव, भूमि का लवणीकरण तथा नहर सिंचित क्षेत्रों में पानी का जमाव, जैविक विविधता का ह्रास।

__संभावित स्रोत:__ स्टेट ऑफ इंडियन इन्वायरमेंट रिपोर्ट्स, रिपोर्ट्स फ्रॉम सेंटर फॉर साइंस एंड डेवलपमेंट तथा एक पत्रिका – डाउन टू अर्थ।

संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, बीना. 1994. अ फिल्ड ऑफ़ वन्स आनः जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साऊथ एशिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

ब्रेमन, जान. 1974. पेट्रोनेज एंड एक्सप्लॉयटेशन; चेजिंग अग्रेरियन रिलेशन्स इन साउथ गुजरात, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफॉरनिया प्रेस, बर्कले

ब्रेमन, जान. 1985. ऑफ़ पीज़ेंट्स, माइग्रेंट्स एंड पॉपर्स; रूरल लेबर सरकुलेशन एंड केपिटलिस्ट प्रोडक्शन इन वेस्ट इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

ब्रेमन, जान, और सुदीप्तो, मुंडेल (सं). 1991. रूरल ट्रांसफॉरमेंशन इन एशिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

दास, राजू जे. 1999. 'ज्योग्रॉफिकल अनइवननेस ऑफ़ इंडियाज़ ग्रीन रिवोल्यूशन', जरनल ऑफ कंटेपोरेरी एशिया 29 (2)

गुप्ता, अखिल. 1998. पोस्टकॉलोनियल डेवलपमेंट्स : एग्रीकल्चर इन द मेकिंग ऑफ़ मार्डन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

कुमार, धर्म. 1998. कॉलोनियलिज़्म, प्रॉपर्टी एंड द स्टेट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

रूट्टन, मारियो. 1995. फार्म्स एंड फैक्टर्स; सोशल प्रोफाइल ऑफ लार्ज फारमर्स एंड रूरल इंडस्ट्रियलिस्ट इन वेस्ट इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

श्रीनिवास, एम.एन. 1987. द डोमिनेन्ट कास्ट एंड अदर ऐसेज़, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

सुरी, के.सी. 2006. 'पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ़ एगरेरियन डिस्ट्रेस' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 41: 1523–29

थॉर्नर, एलिस. 1982. 'सेमी-फ्यूडर ऑर केपिटलिज़्म? कंटेपोरेरी डिबेट ऑन क्लासेज़ एंड मोड्स ऑफ़ प्रोडक्शन इन इंडिया' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 17:1961–68, 1993–99, 2061–66

थॉर्नर, डेनियल. 1991. एग्रीरियन स्ट्रक्चर। दीपंकर गुप्ता (संघ), सोशल स्ट्राटीफिकेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

बसवी ए.आर. 1994. हाइबिड टाइम्स, हाइब्रिड पीपल : कल्चर एंड एग्रीकल्चर इन साउथ इंडिया, मेन, जरनल ऑफ़ द रॉयल एंथ्रोप्लॉजी सोसाइटी, (29) 2।

वासवी, ए.आर. 1999. 'एग्रीरियल डिस्ट्रेस इन बिहार : स्टेट, मार्केट एंड सुसाइड्स' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 34:2263–68

वासवी, ए.आर. 1999. 'हरब्रिंगर्स ऑफ रेन : लेंड एंड लाइफ इन साउथ इंडिया', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

© NCERT not to be republished

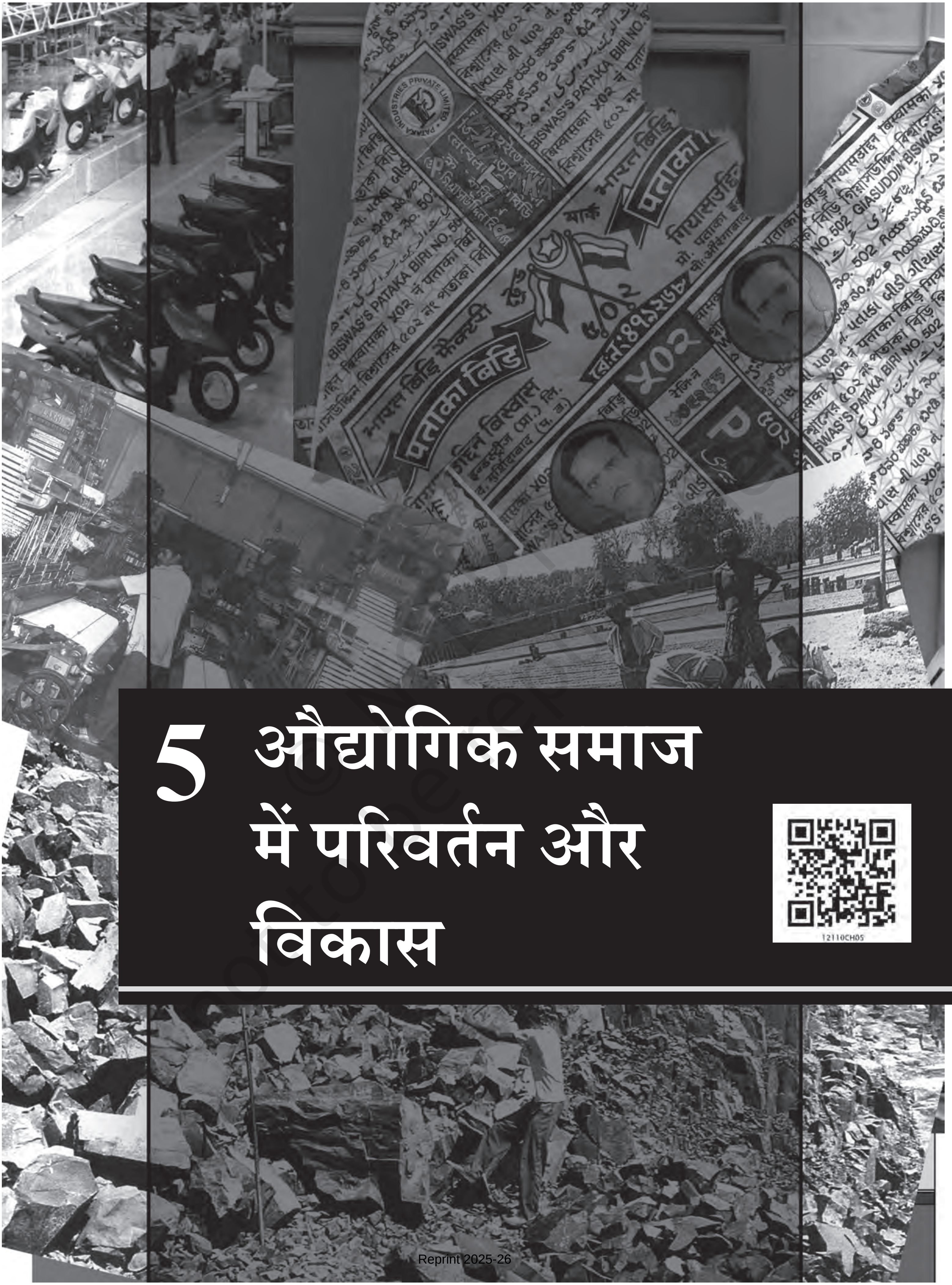

5 औद्योगिक समाज में परिवर्तन और विकास

12110CH05

बॉलीवुड, मुंबई, महाराष्ट्र आपके और मेरे लिए एक स्वप्न लोक की तरह हो सकता है, परंतु बहुत से लोगों के लिए यह उनके कार्य करने का स्थान है। किसी अन्य उद्योग की तरह, इसके कामगार भी संघ के सदस्य हैं। उदाहरण के लिए नर्तक, जोखिम के कार्य करने वाले कलाकार एवं अतिरिक्त कलाकार, कनिष्ठ कलाकार संघ (जूनियर आर्टिस्ट एसोसिएशन) के सदस्य होते हैं। उनकी माँग है कि आठ घंटे की शिफ्ट हो, मेहनताना वाजिब हो और कार्यावस्था सुरक्षित हो। इस उद्योग के उत्पादनों का विज्ञापन एवं बाज़ार में जाना फ़िल्म वितरक के द्वारा, एवं सिनेमा हॉल मालिकों अथवा संगीत के कैसेट्स एवं वीडियोज बेचने वाली दुकानों के द्वारा होता है। और इस उद्योग में कार्य करने वाले लोग, किसी अन्य उद्योग की तरह उसी शहर में रहते हैं, लेकिन शहर में उनके द्वारा किए गए विभिन्न कार्य, वे लोग कौन हैं और कितना कमाते हैं, पर निर्भर करता है। फ़िल्मी सितारे और कपड़ा मिलों के मालिक जुहू जैसे स्थानों पर रहते हैं, जबकि अतिरिक्त कलाकार और कपड़ा मिल के मज़दूर गोरेगाँव जैसी जगहों पर रहते हैं। कुछ पाँच सितारा होटलों में जाते हैं और जापान का सुशी (Sushi) जैसा खाना खाते हैं जबकि कुछ स्थानीय हाथगाड़ियों पर वड़ा पाव खाते हैं। मुंबई के लोगों को कहाँ वे रहते हैं, क्या वे खाते हैं और कितने कीमती कपड़े पहनते हैं, के आधार पर विभाजित किया जाता है। परंतु कुछ सामान्य बातें या वस्तुएँ जो शहर उन्हें देता है, के आधार पर वे समान (संगठित) भी हैं – वे एक जैसी फ़िल्में और क्रिकेट मैच देखते हैं, वे समान वायु प्रदूषित वातावरण में आवागमन करते हैं, और उन सबकी आकाँक्षा होती है कि उनके बच्चे अच्छा काम करें।

लोग कहाँ और कैसा कार्य करते हैं, वे किस तरह का व्यवसाय करते हैं, यह सब उनकी पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। इस अध्याय में हम देखेंगे कि प्रौद्योगिकी में होने वाले परिवर्तन और लोग किस प्रकार का कार्य करते हैं जिससे भारत में सामाजिक संबंधों में परिवर्तन आता है। दूसरी तरफ़, सामाजिक संस्थाएँ जैसे जाति, नातेदारी का संजाल, लिंग एवं क्षेत्र भी, कार्य को संगठित करने के तरीके अथवा उत्पाद को बाज़ार में भेजने के तरीके को प्रभावित करते हैं। यह समाजशास्त्रियों के लिए शोध का एक बड़ा क्षेत्र है।

उदाहरण के लिए हम महिलाओं को कुछ अन्य क्षेत्रों जैसे इंजीनियरिंग की बजाय नर्सिंग अथवा शिक्षण के कार्यों में अधिक क्यों पाते हैं? यह मात्र एक संयोग है अथवा इसके पीछे समाज की यह सोच है कि महिलाएँ देखभाल एवं पालन पोषण के क्षेत्र के लिए अधिक उपयुक्त हैं। बनिस्बत उन कार्यों के जो 'सख्त' और 'पुरुषोचित' नज़र आते हैं! जबकि नर्सिंग के कार्य में एक पुल को डिज़ाइन करने से अधिक बल की आवश्यकता होती है। अगर अधिक महिलाएँ इंजीनियरिंग के क्षेत्र में जाती हैं तो वे इस व्यवसाय को कैसे प्रभावित करती हैं? अपने आप से पूछिए कि क्यों भारत में कॉफी के विज्ञापन में पैकेट पर दो कप दिखाए जाते हैं जबकि अमेरिका में एक कप? इसका उत्तर यह है कि बहुत से भारतीय कॉफी पीने को सामाजिकता निभाने का एक अवसर मानते हैं जबकि अमेरिका में कॉफी पीना सवेरे उठकर स्फूर्ति लाने वाले पेय को पीने जैसा है। समाजशास्त्री इन प्रश्नों में रुचि रखते हैं कि कौन क्या उत्पादित करता है, कौन कहाँ कार्य करता है, कौन, किसको और कैसे बेचता है? ये व्यक्तिगत रुचि नहीं है बल्कि सामाजिक प्रारूपों का नतीजा है। इसके विपरीत लोगों की रुचियाँ यह समझाने में कि सामाजिक कार्य कैसे होते हैं, से प्रभावित होती हैं।

5.1 औद्योगिक समाज की कल्पना

समाजशास्त्र के अनेकों महत्वपूर्ण कार्य तब किए गए थे जबकि औद्योगीकरण एक नयी अवधारणा था और मशीनों ने एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया हुआ था। कार्ल मार्क्स, वेबर और एमील दुर्खाइम जैसे विचारकों ने उद्योग की बहुत सी नयी संकल्पनाओं से स्वयं को जोड़ा। ये थी नगरीकरण जिसने आमने-सामने के संबंध

© NCERT not to be republished

को बदला जोकि ग्रामीण समाजों में पाए जाते थे। जहाँ कि लोग अपने या जान पहचान के भूस्वामियों के खेतों में काम करते थे, उन संबंधों का स्थान आधुनिक कारखानों एवं कार्यस्थलों के अज्ञात व्यावसायिक संबंधों ने ले लिया। औद्योगीकरण से एक विस्तृत श्रम विभाजन होता है। लोग अधिकतर अपने कार्यों का अंतिम रूप नहीं देख पाते क्योंकि उन्हें उत्पादन के एक छोटे से पुर्जे को बनाना होता है। अक्सर यह कार्य दोहराने और थकाने वाला होता है, लेकिन फिर भी बेरोजगार होने से यह स्थिति अच्छी है। मार्क्स ने इस स्थिति को 'अलगाव' कहा, जिसमें लोग अपने कार्य से प्रसन्न नहीं होते, उनकी उत्तरजीविता भी इस बात पर निर्भर करती है कि मशीनें मानवीय श्रम के लिए कितना स्थान छोड़ती हैं।

औद्योगीकरण कुछ एक स्थानों पर जबरदस्त समानता लाता है, उदाहरण के लिए रेलगाड़ियों, बसों और साइबर कैफे में जातीय भेदभाव के महत्त्व का ना होना। दूसरी तरफ़, भेदभाव के पुराने स्वरूपों को नए कारखानों और कार्यस्थलों में अभी भी देखा जा सकता है। हालाँकि, इस संसार में सामाजिक असमानताएँ कम हो रही हैं लेकिन आर्थिक या आय से संबंधित असमानताएँ उत्पन्न हो रही हैं। बहुधा-सामाजिक और आय संबंधी असमानता परस्पर एक-दूसरे पर छा जाती है। उदाहरण के लिए अच्छे वेतन वाले व्यवसायों जैसे मेडीसिन, कानून अथवा पत्रकारिता में उच्च जाति के लोगों का वर्चस्व आज भी बना हुआ है। महिलाएँ (अधिकांशतः) समान कार्य के लिए कम वेतन पाती हैं।

क्रियाकलाप 5.1

अभिसरण शोध *जिसे कि आधुनिकीकरण के सिद्धांतकारों क्लार्क ने आगे बढ़ाया के अनुसार 21वीं शताब्दी का आधुनिकीकृत भारत 19वीं शताब्दी की विशेषताओं से साझा करने के बजाय उनकी अधिक विशेषताएँ 21वीं शताब्दी के चीन या संयुक्त राज्यों जैसी होंगी। क्या आपको यह सच लगता है? क्या संस्कृति, भाषा एवं परंपराएँ नयी तकनीक के कारण विलुप्त हो जाती हैं, और क्या संस्कृति नए उत्पादों को अपनाने के तरीके को प्रभावित करती है? इन बिंदुओं पर अपने स्वयं के विचारों को उदाहरण देते हुए लिखिए।*

5.2 भारत में औद्योगीकरण

भारतीय औद्योगीकरण की विशिष्टताएँ

भारत में औद्योगीकरण से होने वाले अनुभव कई प्रकारों से पाश्चात्य प्रतिमान से समान और कई प्रकारों से भिन्न थे। विभिन्न देशों के बीच किए गए तुलनात्मक विश्लेषण यह सुझाते हैं कि औद्योगीकरण पूँजीवाद का कोई आदर्श प्रतिमान नहीं है। चलिए अब हम, इसे भिन्नताओं के बिंदु से प्रारंभ करते हैं, इसे लोगों के कार्य करने के तरीके से संबद्ध करते हैं। विकसित देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग नौकरीपेशा लोगों का होता है, उसके बाद उद्योगों में और 10 प्रतिशत से कम कृषि कार्यों में लगे होते हैं (आई.एल.ओ के आँकड़े) 2018–19 में भारत में लगभग 43 प्रतिशत लोग प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं खदान), 25 प्रतिशत लोग द्वितीयक क्षेत्र (उत्पादन, निर्माण और उपयोगिता) और 23 प्रतिशत लोग तृतीयक क्षेत्र (व्यापार, यातायात, वित्तीय सेवाएँ इत्यादि) में कार्यरत थे। फिर भी, अगर हम इन क्षेत्रों की आर्थिक वृद्धि को देखें तो कृषि कार्यों के हिस्से में तेज़ी से ह्रास हुआ और इस क्षेत्र में होने वाले कार्य लगभग आधे से अधिक हो गए। यह स्थिति बहुत ही गंभीर है क्योंकि इसका अर्थ यह हुआ कि जिस क्षेत्र में लोग ज़्यादा कार्यरत हैं वह उन्हें अधिक आमदनी देने में सक्षम नहीं हैं। भारत में 2018–19 में रोज़गार के विभिन्न क्षेत्रों के हिस्से इस प्रकार थे— कृषि में 42.5 प्रतिशत, खदान एवं खनन में 0.4 प्रतिशत, निर्माण में 12.1 प्रतिशत, व्यापार, होटल एवं रेस्त्रां में 12.6 प्रतिशत, यातायात भंडारण एवं संचार में 5.9 प्रतिशत, सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत सेवाओं में 13.8 प्रतिशत।

Reprint 2025-26

रोजगार के आधार पर कामगारों का वितरण, 1972–2019

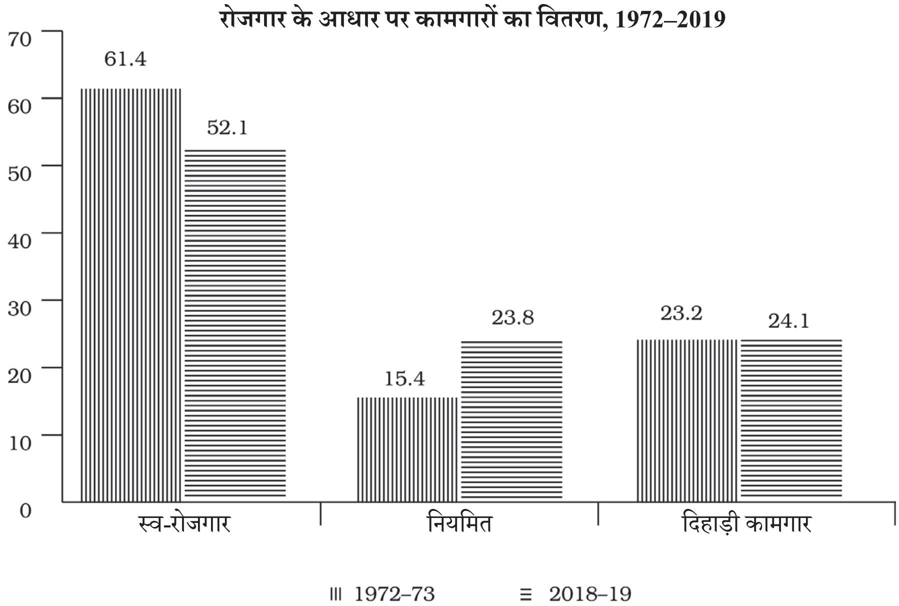

विकसित और विकासशील देशों में एक और बड़ा अंतर नियमित वेतनभोगी कार्यरत लोगों की संख्या का होना है। विकसित देशों में औपचारिक रूप से कार्यरत लोग बहुसंख्यक हैं। भारत में 52 प्रतिशत से अधिक लोग स्व-रोज़गारी हैं, केवल 24 प्रतिशत लोग नियमित वेतनभोगी रोज़गार में हैं, जबकि लगभग 24 प्रतिशत लोग अनियमित मज़दूर हैं। यहाँ दी गई तालिका में 1972–73 से 2018–19 तक ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाया गया है।

अर्थशास्त्रियों एवं अन्यों ने अक्सर संगठित या औपचारिक और असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्रों के मध्य अंतर स्थापित किया है। इस बात पर मतभेद है कि इन क्षेत्रों को परिभाषित कैसे किया जाए। एक परिभाषा के अनुसार संगठित क्षेत्र की इकाई में 10 और अधिक लोगों के पूरे वर्ष रोज़गार में रहने से इन क्षेत्रों का गठन होता है। सरकारी तौर पर इनका पंजीकरण होना चाहिए ताकि कर्मचारियों को उपयुक्त वेतन या मज़दूरी, पेंशन और अन्य सुविधाएँ मिलना सुनिश्चित हो सकें। भारत में 90 प्रतिशत से अधिक कार्य चाहे वह कृषि, उद्योग अथवा नौकरी हो, असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में आते हैं। संगठित क्षेत्र के इतना छोटा होने का सामाजिक आशय क्या है?

इसका पहला अर्थ यह है कि बहुत कम लोग बड़ी फर्मों में रोज़गार करते हैं जहाँ कि वे दूसरे क्षेत्रों और पृष्ठभूमि वाले लोगों से मिल पाते हैं। नगरीय क्षेत्र इस प्रकार के कुछ मौके दे पाता है – नगरीय क्षेत्र में आपका पड़ोसी भिन्न क्षेत्र का हो सकता है – मोटे तौर पर, अधिकतर भारतीय लोग छोटे पैमाने पर कार्य कर रहे स्थानों पर ही काम करते हैं। यहाँ कार्य के कई पक्षों का निर्धारण वैयक्तिक संबंधों से होता है। अगर नियोजक आपको पसंद करता है, तो आपका वेतन बढ़ सकता है, अगर आप उसके साथ झगड़ा करते हैं तो आप अपना रोज़गार भी गँवा सकते हैं। बड़े संस्थानों में ऐसा नहीं होता। वहाँ कार्य के निश्चित नियम होते हैं, वहाँ नियुक्ति अधिक पारदर्शी होती है और अगर आपके अपने ऊँचे पदाधिकारी से कुछ मतभेद होते हैं तो उसकी शिकायत और क्षतिपूर्ति की निश्चित कार्यविधियाँ होती हैं। दूसरे, बहुत ही कम भारतीय सुरक्षित और लाभदायक नौकरियों में प्रवेश करते हैं। जो वहाँ हैं उनमें भी दो-तिहाई सरकारी नौकरी करते हैं। इसीलिए लोग सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए बहुत मेहनत करते हैं। बचे हुए लोग बुढ़ापे में अपने बच्चों पर आश्रित होने के लिए बाध्य हैं। जाति, धर्म तथा क्षेत्र की दीवारों को पार करने में सरकारी नौकरियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। एक समाजशास्त्री तर्क देते हुए उन कारणों की चर्चा करते हैं कि भिलाई स्टील प्लांट में सांप्रदायिक दंगे क्यों नहीं होते हैं? कारण यह है कि वहाँ भारत के सभी भागों के लोग एक साथ काम करते हैं। तीसरे, बहुत ही कम लोग संघ के सदस्य हैं, जो कि सुरक्षित क्षेत्र की विशेषता है, अनौपचारिक एवं असंगठित क्षेत्र के कर्मी एकत्रित होकर सामूहिक रूप से अपने उपयुक्त वेतन और सुरक्षित कार्यावस्था के लिए लड़ने

Reprint 2025-26

का अनुभव नहीं रखते। सरकार ने अब असंगठित क्षेत्रों की अवस्था पर निगरानी रखने के लिए नियम बनाए हैं, लेकिन वहाँ भी कार्यान्विति में नियोजक अथवा ठेकेदार की मनमर्जी ही प्रभावी होती है।

भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं भारतीय उद्योगों में परिवर्तन

सन् 1990 के दशक से सरकार ने उदारीकरण की नीति को अपनाया है। निजी कंपनियाँ, विदेशी फर्मों को उन क्षेत्रों में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है जिन्हें पहले ये सरकार के लिए, जैसे दूरसंचार, नागरिक उड्डयन एवं ऊर्जा आदि के लिए आरक्षित थे। उद्योगों को खोलने के लिए अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) वांछित नहीं है। अब भारतीय दुकानों पर विदेशी वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। उदारीकरण के परिणामस्वरूप बहुत सी भारतीय कंपनियों–छोटी एवं बड़ी को बहुदेशीय कंपनियों ने खरीद लिया है। साथ ही साथ कुछ भारतीय कंपनियाँ बहुदेशीय कंपनियाँ– छोटी एवं बड़ी बन गई हैं। इसका पहला उदाहरण है जब पारले पेय को कोका कोला ने खरीदा। पारले पेय की सालाना आमदनी 250 करोड़ रुपये थी, जबकि कोका कोला का विज्ञापन बजट 400 करोड़ रुपये है। विज्ञापन का यह स्तर स्वाभाविक रूप से उपभोग को बढ़ा देता है, परंपरागत कोका कोला ने आज कई भारतीय पेयों का स्थान ले लिया है। उदारीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र खुदरा व्यापार हो सकता है। आपके विचार से क्या भारतीय, भारतीय डिपार्टमेंटल स्टोर (भारतीय बहुविभागीय भंडारों), किराने की दुकान, अपने पड़ोस में या छोटे शहरों की कपड़े की दुकान से खरीदारी करने को वरीयता देते हैं, अथवा वे व्यापार के लिए बाहर जाते हैं?

सरकार सार्वजनिक कंपनियों के अपने हिस्सों को निजी क्षेत्र की कंपनियों को बेचने का प्रयास कर रही है, जिसे विनिवेश कहा जाता है। कई सरकारी कर्मचारी इससे भयभीत हैं कि कहीं विनिवेश के कारण उनकी नौकरी न चली जाए। मार्डन फूड जिसे सरकार ने स्वास्थ्यवर्धक सस्ता खाना उपलब्ध कराने के लिए बनाया था, और वह निजीकरण की जाने वाली पहली कंपनी थी, ने 60 प्रतिशत कर्मचारियों को पहले पाँच वर्षों में जबरन सेवामुक्त कर दिया।

अधिकांश कंपनियों ने अपने स्थायी कर्मचारियों की संख्या में कटौती कर दी, वे अपने कार्य बाह्यस्रोतों जैसे छोटी कंपनी से यहाँ तक कि घरों से भी करवाने लगे। बहुदेशीय कंपनियाँ पूरे विश्व में बाह्य स्रोतों से काम करवाती हैं, विकासशील देशों जैसे भारत से उन्हें सस्ते मज़दूर उपलब्ध हो जाते हैं। क्योंकि छोटी कंपनियों को बड़ी कंपनियों से कार्य प्राप्त करने के लिए स्पर्धा करनी होती है अतः वे कामगारों को कम वेतन देते हैं और कार्यावस्था भी अधिकतर खराब होती है। छोटी फर्मों में मज़दूर संगठनों का गठन भी मुश्किल होता है। अधिकांश कंपनियाँ, यहाँ तक कि सरकार भी अब बाह्य स्रोतों और अनुबंध पर काम करवाने लगी है। लेकिन यह प्रवृत्ति निजी क्षेत्रों में विशेष रूप से दिखाई देती है।

सारांश में, भारत अभी भी एक कृषि प्रधान देश है। सेवा क्षेत्र— दुकानें, बैंक, आई.टी. उद्योग, होटल्स, और अन्य सेवाओं के क्षेत्र में, अधिक लोग आ रहे हैं और नगरीय मध्यवर्ग की संख्या भी बढ़ रही है, नगरीय मध्यवर्ग के साथ वे मूल्य जो टेलीविजन सीरियलों और फ़िल्मों में दिखाई देते हैं, भी बढ़ रहे हैं। परंतु हम यह भी देखते हैं कि भारत में बहुत कम लोगों के पास सुरक्षित रोज़गार हैं, यहाँ तक कि छोटी संख्या के स्थायी सुरक्षित रोज़गार भी अनुबंधित कामगारों के कारण असुरक्षित होते जा रहे हैं। अब तक सरकारी रोज़गार ही जनसंख्या के अधिकांश लोगों का कल्याण करने का एक बड़ा मार्ग था, लेकिन अब वह भी कम होता जा रहा है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस पर विचार-विमर्श भी किया लेकिन विश्वव्यापी उदारीकरण एवं निजीकरण के साथ आमदनी की असमानताएँ भी बढ़ रही हैं। आपको इस विषय पर अधिक जानकारी भूमंडलीकरण के अगले अध्याय में पढ़ने को मिलेगी।

Reprint 2025-26

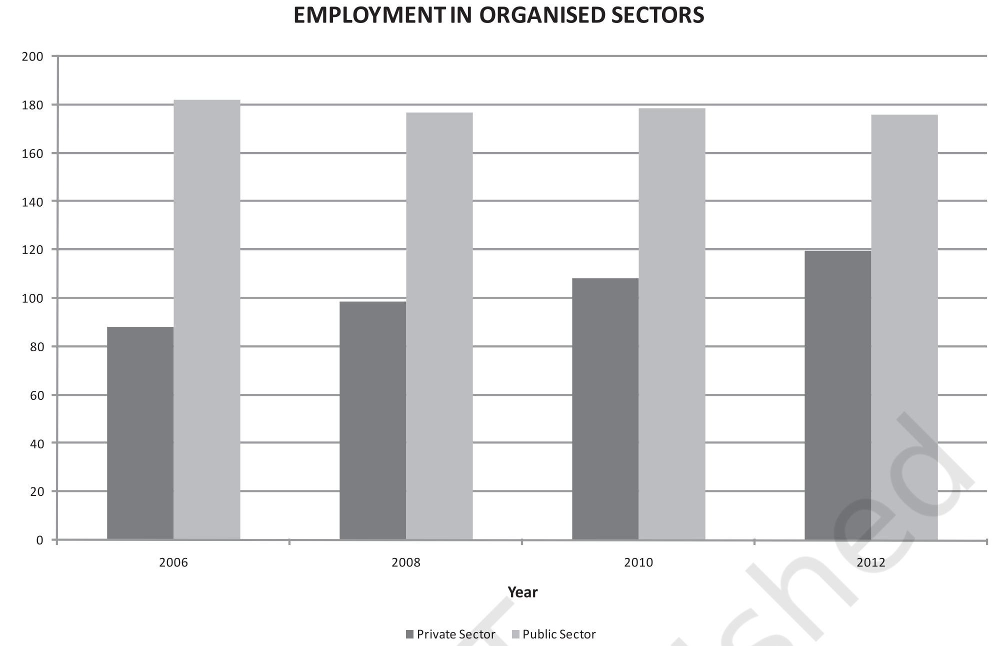

साथ ही बड़े उद्योगों में भी सुरक्षित रोज़गार कम होता जा रहा है, सरकार ने भी उद्योग लगाने के लिए भूमि अधिग्रहण की नीति प्रारंभ की है। ये उद्योग आस-पास के क्षेत्र के लोगों को रोज़गार नहीं दिलवाते हैं बल्कि ये वहाँ जबरदस्त प्रदूषण फैलाते हैं। बहुत से किसानों जिनमें मुख्य रूप से आदिवासी शामिल हैं, कुल विस्थापितों में ये करीब 40 प्रतिशत हैं, ने क्षतिपूर्ति की कम दर के लिए विरोध किया और इन्हें जबरन दिहाड़ी मज़दूर बनना पड़ा और उन्हें बड़े शहरों के फुटपाथ पर काम करते देखा जा सकता है। आप अध्याय 3 में दी गई हितों की प्रतियोगिता की परिचर्चा को याद कीजिए।

अगले भाग में हम देखते हैं कि लोग किस तरह काम पाते हैं, वे वास्तव में अपने कार्यस्थल पर क्या करते हैं और किस तरह की कार्यावस्था से रू-ब-रू होते हैं?

5.3 लोग काम किस तरह पाते हैं

बहुत कम अनुपात में लोग विज्ञापन या रोज़गार कार्यालय के द्वारा नौकरी प्राप्त कर पाते हैं। वे लोग जो स्वनियोजित हैं, जैसे— नलसाज, बिजली मिस्त्री और बढ़ई (खाती या तरखान) एक तरफ़ हैं और निजी ट्यूशन देने वाले अध्यापक, वास्तुकार और स्वतंत्र रूप से काम करने वाले छाया चित्रकार, दूसरी तरफ़ हैं। इन सभी की कार्य अवधि इनके निजी संपर्कों पर निर्भर रहती है। वे सोचते हैं कि उनका काम ही उनका विज्ञापन है। मोबाइल फ़ोन ने नलसाजों एवं अन्य ऐसे लोगों की जिंदगी को अधिक सरल बना दिया है, अब वे ज़्यादा लोगों के लिए कार्य कर सकते हैं।

एक फ़ैक्ट्री के कामगारों को रोज़गार देने का तरीका भिन्न होता है। पहले बहुत से कामगार ठेकेदार या काम देने वालों से रोज़गार पाते थे। कानपुर कपड़ा मिल में रोज़गार दिलाने वाले को मिस्त्री बोलते थे, और वे खुद भी वहाँ काम करते थे। वे समान क्षेत्रों या समुदायों से मज़दूर की तरह आते थे, परंतु मालिक उन पर

कृपालु होते थे, अतः वे सब कामगारों के मुखिया बन जाते थे। दूसरी तरफ़ मिस्त्री निजी कामगारों पर समुदाय संबंधी दबाव डालता था। आजकल काम दिलाने वाले का महत्त्व कम हो गया है और कार्यकारिणी तथा यूनियन दोनों ही अपने लोगों को काम दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ कामगार यह भी चाहते हैं कि उनका काम उनके बच्चों को दे दिया जाए। बहुत सी फ़ैक्ट्रियों में बदली कामगार भी होते हैं, जो कि छुट्टी पर गए हुए मज़दूरों के स्थान पर काम करते हैं। बहुत से बदली कामगार एक ही कंपनी में बहुत लंबे समय से काम कर रहे होते हैं किंतु उन्हें सबके समान स्थायी पद और सुरक्षा नहीं दी जाती है। इसे संगठित क्षेत्र में अनुबंधित कार्य कहते हैं। रोज़गार के अवसरों में दो तत्व शामिल होते हैं—

(i) किसी संगठन में रोज़गार

(ii) स्व-रोज़गार

हाल ही में भारत सरकार ने "मुद्रा योजना", "आत्मनिर्भर भारत" या "मेक इन इंडिया" जैसे कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया है जिससे रोज़गार और स्व-रोज़गार सम्भव हो सके। इन प्रयासों से हाशिए पर खड़े लोगों, जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं सहित सभी वर्गों का संवर्द्धन करने की उम्मीद है। इन सकारात्मक प्रयासों ने भारत के युवाओं जिन्हें जनांकिकीय डिविडैंट भी कहा जाता है, को विकास की प्रक्रिया से जोड़ दिया गया।

हालाँकि, दिहाड़ी मज़दूरों के काम की ठेकेदारी व्यवस्था ज़्यादातर भवन-निर्माण कार्य के स्थान पर या ईंटे बनाने के स्थान आदि पर दिखाई देती है। ठेकेदार गाँव जाता है और वहाँ काम चाहने वालों से इसके बारे में पूछता है। वह उन्हें कुछ पैसा उधार भी देता है, उधार दिए गए पैसे में काम के स्थान तक आने के यातायात का पैसा होता है। उधार पैसा अग्रिम दिहाड़ी माना जाता है, और जब तक उधार नहीं चुक जाता वह बिना पैसे के काम करता है। पहले कृषि मज़दूर अपने कर्जे के बदले ज़मींदार के पास बंधुआ मज़दूर की तरह रहते थे। अब उद्योगों में अनियत कामगार के रूप में जाते हैं, हालाँकि वे अभी भी कर्ज़दार हैं, परंतु वे अनुबंधक के अन्य सामाजिक दायित्वों से बँधे हुए नहीं होते हैं। इस अर्थ में, वे औद्योगिक समाज में अधिक मुक्त हैं। वे अनुबंध को तोड़कर किसी और के यहाँ काम ढूँढ़ सकते हैं। कभी-कभी पूरा परिवार प्रवसन कर जाता है और बच्चे काम में अपने माता-पिता की सहायता करते हैं।

5.4 काम को किस तरह किया जाता है?

इस भाग में हम यह जानकारी देंगे कि काम को वास्तव में किस तरह किया जाता है। हमारे आसपास हम जिन उत्पादों को देखते हैं उन्हें कैसे बनाया जाता है? एक ऑफ़िस या फैक्ट्री में मैनेजर और कामगारों के संबंध कैसे होते हैं? भारत में बड़े कार्यस्थलों में संपूर्ण कार्य को स्वतः घर में हो रहे उत्पादन की तरह किया जाता है।

मैनेजर का मुख्य कार्य होता है कामगारों को नियंत्रित रखना और उनसे अधिक काम करवाना। कामगारों से अधिक कार्य करवाने के दो तरीके होते हैं। पहला कार्य के घंटों में वृद्धि। दूसरा निर्धारित दिए गए समय में उत्पादित वस्तु की मात्रा को बढ़ा देना। मशीनें उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होती हैं। परंतु ये खतरे भी पैदा करती हैं और अंततः मशीनें कामगारों का स्थान ले रही हैं। इसीलिए मार्क्स और महात्मा गाँधी दोनों ने मशीनीकरण को रोज़गार के लिए खतरा माना।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 5.2

हिंद स्वराज्य में गाँधी जी और मशीन 1924— मैं मशीनों के प्रति पागलपन का विरोधी हूँ, लेकिन मशीनों का विरोधी नहीं हूँ। मैं उस सनक का विरोधी हूँ जो मज़दूरों को कम करती हैं। आदमी श्रम से बचने के लिए मज़दूरों को कम करते जाएँगे जबकि हज़ारों मज़दूरों को बिना काम के सड़कों पर भूख से मरने के लिए फेंक न दिया जाए। मैं समय और मज़दूर दोनों को बचाना चाहता हूँ। मानवजाति के विखंडन के लिए नहीं बल्कि सबके लिए। मैं संपत्ति को कुछ हाथों में एकत्रित नहीं होने देना चाहता, बल्कि उसे सबके हाथों में देखना चाहता हूँ।

1934— एक राष्ट्र के रूप में जब हम चर्खे को अपनाते हैं तो हम न केवल बेरोज़गारी की समस्या का समाधान करते हैं बल्कि यह भी घोषित करते हैं कि हमारी किसी भी राष्ट्र का शोषण करने की इच्छा नहीं है, और हम अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण को भी समाप्त करना चाहते हैं।

उदाहरण द्वारा बताइए कि मशीनें किस तरह कामगारों के लिए समस्या पैदा करती हैं? गाँधीजी के दिमाग में क्या विकल्प था? चर्खे को अपनाने से शोषण को कैसे रोका जा सकता है?

स्कूटर का कारखाना

भारत का एक सबसे पुराना उद्योग है – कपड़ा मिल। वहाँ के कामगार अपने आप को मशीन के विस्तार की तरह वर्णित करते हैं। एक पुराना बुनकर रामचंद्र जो कि 1940 में कानपुर कपड़ा मिल में काम करता था कहता है—

> *आपको ऊर्जा की आवश्यकता होती है, आँखे, गर्दन, टाँगे, हाथ और शरीर का प्रत्येक हिस्सा घूमता है। बुनाई के काम में लगातार टकटकी लगानी पड़ती है, आप कहीं नहीं जा सकते, आप का पूरा ध्यान मशीन पर केंद्रित होना चाहिए। जब चार मशीनें चल रही हों तो चारों को चलना चाहिए, उन्हें रुकना नहीं चाहिए (जोशी 2003)*

अधिक मशीनों वाले उद्योगों में, कम लोगों को काम दिया जाता है, लेकिन जो होते हैं उन्हें भी मशीनी गति से काम करना होता है। मारुति उद्योग लिमिटेड में प्रत्येक मिनट में दो कारें तैयार होकर एकत्रित होने वाले स्थान पर आ जाती हैं। पूरे दिन में कामगारों को केवल 45 मिनट का विश्राम मिलता है— दो चाय की छुट्टियाँ साढ़े सात मिनट प्रत्येक और आधा घंटा खाने की छुट्टी। उनमें से प्रत्येक 40 वर्ष का होने तक पूरी तरह थक जाता है और स्वैच्छिक अवकाश ले लेता है। जबकि उत्पादन अधिक हो रहा है और कारखाने में स्थायी रूप से काम करने वालों की संख्या कम हो गई है। कारखाने में सभी कार्य जैसे सफ़ाई, सुरक्षा, यहाँ तक कि

पुर्जों का उत्पादन भी बाह्य स्रोतों से होता है। पुर्जे देने वाले, कारखाने के आसपास ही रहते हैं और प्रत्येक पुर्जे को दो घंटे या नियत समय में भेज देते हैं। बाह्य स्रोतों से किया गया कार्य समय पर पूरा हो जाता है और कंपनी को सस्ता पड़ता है। लेकिन इससे कामगारों में तनाव आ जाता है, अगर उनकी सप्लाई नहीं आ पाती, तो उनके उत्पादन का लक्ष्य विलंब से पूरा हो पाता है, और जब वह आ जाता है तो उसे रखने के लिए उन्हें भागदौड़ करनी पड़ती है। कोई आश्चर्य नहीं अगर ऐसा करने में वे पूरी तरह निढाल हो जाते हैं।

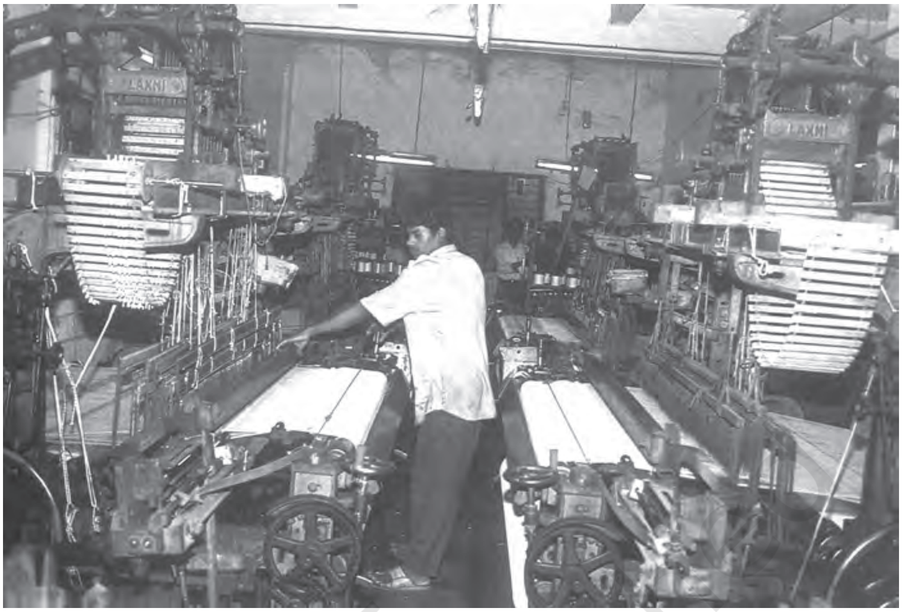
प्रिंटिंग प्रेस का एक दृश्य

अब जरा सेवा के क्षेत्रों को देखा जाए। सॉफ़्टवेयर में काम करने वाले लोग मध्यम वर्गीय और पूर्णतः शिक्षित होते हैं। उनका कार्य स्वतःस्फूर्त एवं रचनात्मक होता है। पर जैसाकि बॉक्स में दर्शाया गया है कि उनका कार्य भी टायलरिज्म लेबर प्रक्रिया के अनुरूप ही होता है।

बॉक्स 5.1

आई.टी. क्षेत्र में 'समय की चाकरी'

औसतन 10–12 घंटे का कार्यदिवस, और रातभर कार्य करने वाले कर्मचारी भी असामान्य बात नहीं हैं, (जिसे 'नाइट आउट' कहते हैं) जब उनकी परियोजना की अंतिम सीमा आ जाती है। लंबे कार्य घंटों का होना एक उद्योग की केंद्रीय 'कार्य संस्कृति' होती है। कुछ हद तक इसका कारण भारत और ग्राहक के देश के बीच समय की भिन्नता भी है, जैसे कि सम्मेलन का समय शाम का होता है जबकि अमेरिका में उस समय कार्य दिवस का प्रारंभ होता है। दूसरा कारण बाह्य स्रोतों की कार्य संरचना में अधिक कार्य का होना है जो, परियोजना की लागत और समयसीमा के तालमेल से जुड़ी होती है। एक आठ घंटे काम करने वाले इंजीनियर के श्रम के आधार पर काम को अंतिम सीमा तक पहुँचाने के लिए उसे अतिरिक्त घंटों और दिनों तक काम करना पड़ता है। अतिरिक्त कार्य घंटों को सामान्य व्यवस्थापित 'फ्लैक्सी-टाइम' सामान्य व्यवस्थापन के प्रयोग द्वारा तर्कसंगत (वैधता) बनाया जाता है, जो कि सैद्धांतिक रूप में कार्यकर्ता को अपने कार्य के घंटे नियत करने की छूट देती है (एक सीमा तक) लेकिन प्रायोगिक रूप में इसका अर्थ है कि वे तब तक कार्य करें जब तक कि वे हाथ में लिए हुए कार्य को समाप्त न कर दें। लेकिन इसके बावजूद भी जब उनके पास वास्तव में कार्य का दबाव नहीं होता, तब भी वे ऑफिस में देर तक रुक जाते हैं, जो कि या तो साथियों के दबाव के कारण होता है अथवा वे अपने अधिकारियों को दिखाना चाहते हैं कि वे कड़ी मेहनत कर रहे हैं।

(केरोल उपाध्या, 2005)

इन कार्य घंटों के परिणामस्वरूप बंगलोर, हैदराबाद और गुड़गाँव जैसे स्थानों जहाँ बहुत-सी आई.टी. कंपनियाँ और कॉल सेंटर हैं, दुकानों और रेस्तराओं ने भी अपने खुलने का समय बदल दिया है, और देरी से खुलने लगे हैं। अगर पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं तो बच्चों को शिशुपालन गृह में छोड़ा जाता है।

Reprint 2025-26

संयुक्त परिवार जो कि लुप्तप्राय हो गए थे, भी औद्योगीकरण के कारण फिर से बनने लगे हैं। हम देखते हैं कि दादा-दादी बच्चों की मदद से परिवार में पुनः स्थापित हो गए हैं।

समाजशास्त्र में एक महत्वपूर्ण विवाद है कि क्या औद्योगीकरण और नौकरी में परिवर्तन से जिसमें कि ज्ञान पर आधारित कार्य जैसे सूचना तकनीक है, क्या इनसे समाज की कुशलता बढ़ रही है? भारत में सूचना तकनीक की वृद्धि को वर्णित करने के लिए प्रायः एक सूक्ति सुनने में आती है 'नॉलेज इकॉनोमी' (ज्ञान आर्थिकी)। लेकिन आप एक किसान की दक्षता की तुलना किससे करेंगे जो यह जानता है कि कई सौ फ़सलों को कैसे उगाया जाता है। क्या आप उसकी मौसम, मिट्टी और बीज की समझ पर विश्वास करेंगे या कि एक सॉफ़्टवेयर व्यवसायी पर? दोनों ही अपने कार्यों में दक्ष हैं लेकिन अलग तरह से। प्रसिद्ध समाजशास्त्री हैरी ब्रेवरमैन यह तर्क देते हैं कि वास्तव में मशीनों का प्रयोग कार्यकर्ताओं की दक्षता को कम करता है। उदारहण के लिए पहले वास्तुकार को नक्काशी में दक्षता भी हासिल थी परंतु अब कंप्यूटर उनके बहुत से काम कर देता है।

5.5 कार्यावस्थाएँ

हम सबको शक्ति, एक मज़बूत घर, कपड़े और अन्य सामानों की आवश्यकता होती है, लेकिन हमें याद रखना चाहिए ये किसी के (प्रायः बहुत खराब अवस्था में) काम करने की वजह से हमें प्राप्त होते हैं। सरकार ने कार्य की दशाओं को बेहतर करने के लिए बहुत से कानून बना दिए हैं। अब हम एक खदान की अवस्था को देखते हैं जहाँ बहुत से लोग काम करते हैं। केवल कोयले की खान में ही 5.5 लाख लोग काम करते हैं। खदान एक्ट 1952 जिसे अब व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और काम करने की स्थिति कोड, 2020 में शामिल किया गया है, ने स्पष्ट किया है कि एक व्यक्ति खान में सप्ताह में अधिक से अधिक कितने घंटे कार्य कर सकता है, अतिरिक्त घंटों तक काम करने पर उसे अलग से पैसा दिया जाना चाहिए और सुरक्षा के नियमों का पालन होना चाहिए। बड़ी कंपनियों में इन नियमों का पालन किया जाता है, लेकिन छोटी खानों और खुली खानों में नहीं। यहाँ तक कि उप-ठेका की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। कई ठेकेदार मज़दूरों का रजिस्टर भी ठीक से नहीं रखते हैं, अतः वे दुर्घटना की अवस्था में किसी भी लाभ को देने की ज़िम्मेदारी से मुकर सकते हैं। एक खान का कार्य समाप्त होने पर कंपनी को उस स्थान पर किए गए गड्ढे को भरकर उस जगह को पहले जैसी कर देनी चाहिए, पर वे ऐसा नहीं करते हैं।

खुली खदान

भूमिगत खानों में कार्य करने वाले कामगार बाढ़, आग, ऊपरी या सतह के हिस्से के धँसने से बहुत खतरनाक स्थितियों का सामना करते हैं। गैसों के उत्सर्जन और ऑक्सीजन के बंद होने के कारण बहुत से कामगारों को साँस से संबंधित बीमारियाँ हो जाती हैं। जैसे क्षय रोग या सिलिकोसिस। जो खुली खानों में काम करते हैं, वे तेज़ धूप और वर्षा में काम करते हैं, खान के फटने से

या किसी चीज़ के गिरने से आने वाली चोट का सामना भी करते हैं। इस तरह होने वाली दुर्घटनाओं की दर भारत में अन्य देशों की तुलना में काफ़ी ज़्यादा है।

कई उद्योगों में कामगार प्रवासी होते हैं। मछली संसाधन जो समुद्र के किनारे होते हैं, में अधिकांशतः तमिलनाडु, कर्नाटक एवं केरल की एकल युवा महिलाएँ कार्य करती हैं। ये दस-बारह की संख्या में एक छोटे से कमरे में रहती हैं, कभी-कभी तो वे वहाँ पारी में रहती हैं। युवा महिलाओं को आज्ञाकारी (विनम्र) और डटकर काम करने वाली माना जाता है। कई पुरुष भी अकेले प्रवास करते हैं, वे या तो अविवाहित होते हैं, या अपने परिवार को गाँव में छोड़कर आते हैं। इन प्रवासियों के पास सामाजिकता निभाने के लिए बहुत कम समय होता है और जो भी थोड़ा बहुत होता है उसे वे अन्य प्रवासी कामगारों के साथ व्यतीत करते हैं। ऐसे राष्ट्र में जहाँ संयुक्त परिवार का हस्तक्षेप होता है, लोगों का भूमंडलीकरण की अर्थ व्यवस्था में काम करना उन्हें अकेलेपन और असुरक्षा की तरफ़ ले जाता है। अभी भी बहुत सी युवा महिलाएँ कुछ स्वतंत्रता और आर्थिक स्वायतत्ता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

5.6 घरों में होने वाला काम

घरों पर किया जाने वाला काम आर्थिकी का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें लेस बनाना, ज़री या ब्रोकेड का काम, गलीचों, बीड़ियों, अगरबत्तियों और ऐसे ही अन्य उत्पादों को बनाया जाता है। ये कार्य मुख्य रूप से महिलाओं या बच्चों द्वारा किए जाते हैं। एक एजेंट (प्रतिनिधि) इन्हें कच्चा माल दे जाता है और संपूर्ण कार्य को ले भी जाता है। घर पर कार्य करने वालों को चीज़ों के नग (पीस) के हिसाब से पैसे दिए जाते हैं, जो इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने कितने नग (पीस) बनाए हैं।

अब हम बीड़ी उद्योग के बारे में जानकारी लेते हैं। बीड़ी बनाने की प्रक्रिया जंगल के पास वाले गाँवों से शुरू होती है। वहाँ गाँव वाले तेंदु पत्ते तोड़कर जंगलात विभाग या निजी ठेकेदार को बेच देते हैं जो कि इसे वापस जंगलात विभाग को बेच देता है। औसतन एक आदमी दिन भर में 100 बंडल (हरेक में 50 पत्ते होते हैं) इकट्ठे कर सकता है। सरकार बीड़ी कारखानों के मालिकों को ये पत्ते नीलाम कर देती है, जो वे ठेकेदारों को दे देते हैं। ठेकेदार इनमें तंबाकू भरने के लिए वापस घर पर काम करने वालों को दे देता है। ये अधिकांशतः महिलाएँ होती हैं, ये पहले पत्तों को गीला करके गोलाकार कर देती हैं, फिर उसे काटती हैं, फिर तंबाकू भरकर उसे बाँध देती हैं। ठेकेदार बीड़ियों को वहाँ से लेकर उसे उत्पादक को बेच देता है, जो इन्हें पकाता या सेकता है और अपने ब्रांड का लेबल लगा देता है। उत्पादक इन्हें बीड़ियों के वितरक को बेच देता है, जो उन्हें थोक विक्रेताओं को देता है, और फिर यह आप के पड़ोस वाली पान की दुकान पर बेच दी जाती है।

क्रियाकलाप 5.3

2020–21 के दौरान, कोविड-19 महामारी के कारण सैकड़ों और हजारों आई.टी. सेक्टर कर्मचारियों ने घर से काम किया। घर आधारित काम तथा घर से काम करने वालों के बीच अंतर और समानताओं का पता लगाएँ।

5.7 हड़तालें एवं मज़दूर संघ

कभी-कभी काम की बुरी दशाओं के कारण कामगार हड़ताल कर देते हैं। वे काम पर नहीं जाते, तालाबंदी की दशा में व्यवस्थापक मिल का दरवाज़ा बंद कर देते हैं और मज़दूरों को अंदर जाने से रोकते हैं। हड़ताल करना

मुश्किल फैसला होता है क्योंकि व्यवस्थापक अतिरिक्त मज़दूरों को बुलाने का प्रयास करते हैं। कामगारों के लिए भी बिना वेतन के रहना मुश्किल हो जाता है।

अब हम 1982 में बंबई टैक्सटाइल मिल की उस प्रसिद्ध हड़ताल के बारे में बात करते हैं, जो व्यापार संघ के नेता, डा. दत्ता सामंत की अगुवाई में हुई थी और जिसकी वजह से लगभग ढाई लाख कामगार और उनके परिवार के लोग प्रभावित हुए थे। कामगारों की माँग थी कि उन्हें बेहतर मज़दूरी और अपने खुद के संघ बनाने की इजाजत दी जाए। धीरे-धीरे दो सालों के बाद, लोगों ने काम पर जाना शुरू कर दिया क्योंकि वे परेशान हो चुके थे। लगभग एक लाख कामगार बेरोज़गार हो गए, और वापस अपने गाँव लौट गए, या दिहाड़ी पर काम करने लगे, शेष आसपास के दूसरे छोटे कस्बों जैसे भिवंडी, मालेगाँव और इच्छालकारंजी के बिजली करघा क्षेत्रों में काम करने चले गए। मिल मालिक आधुनिकीकरण और मशीनों पर निवेश नहीं करते हैं। आजकल, वो अपनी मिलों को स्थावर संपदा व्यापारियों (रीयल स्टेट डीलर्स) को सुख-सुविधा संपन्न बहुमंजिली इमारतें बनाने के लिए बेचने का प्रयास कर रहे हैं। इस पर एक झगड़ा शुरू हो गया है कि बंबई के भविष्य को कौन परिभाषित करेगा? – कामगार जो इसे बनाते हैं? या मिल मालिक और स्थावर संपदा व्यापारी?

प्रश्नावली

1. अपने आस-पास वाले किसी भी व्यवसाय को चुनिए और इसका वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में कीजिए— (क) कार्य शक्ति का सामाजिक संघटन– जाति, जेंडर, आयु, क्षेत्र; (ख) मज़दूर प्रक्रिया– काम किस तरह किया जाता है; (ग) वेतन एवं अन्य सुविधाएँ; (घ) कार्यावस्था– सुरक्षा, आराम का समय, कार्य के घंटे इत्यादि।

   अथवा

2. ईंट बनाने के, बीड़ी रोल करने के, सॉफ़्टवेयर इंजीनियर या खदान के काम जो बॉक्स में वर्णित किए गए हैं, के कामगारों के सामाजिक संघटन का वर्णन कीजिए। कार्यावस्थाएँ कैसी हैं और उपलब्ध सुविधाएँ कैसी हैं? मधु जैसी लड़कियाँ अपने काम के बारे में क्या सोचती हैं?
3. उदारीकरण ने रोज़गार के प्रतिमानों को किस प्रकार प्रभावित किया है?

संदर्भ ग्रंथ

अनंत, टी.सी.ए. 2005. 'लेबर मार्केट रिफोर्म्स इन इंडिया : ए रिव्यू', इन बिबेक डेबरॉय एंड पी.डी. कौशिक (संपा), रिफार्मिंग द लेबर मार्केट, पृ. 235–252, एकेडेमिक फाउंडेशन, नयी दिल्ली

भंडारी, लवीश 'इकॉनोमिक एफीशियेंसी ऑफ सब-कॉन्ट्रेक्टेड होम-बेस्डर वर्क', बिबेक डेबरॉय एंड पी डी कौशिक (संपा) रिफार्मिंग द लेबर मार्केट में, पृष्ठ 397–417, एकेडमिक फाउंडेशन, नयी दिल्ली

ब्रेमन, जान. 2004. द मेकिंग एंड अनमेकिंग ऑफ़ एन इंडस्ट्रियल वर्किंग क्लास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

ब्रेमन जान. 1999. 'द स्टडी ऑफ़ इंडस्ट्रियल लेबर इन पोस्ट-कॉलोनियल इंडिया-द फॉरमल सेक्टर : एन इंट्रोडक्ट्री रिव्यू', कंट्रीब्यूशन्स टू इंडियन सोशियोलॉजी, वॉल्यूम 33 (1 तथा 2), जनवरी–अगस्त 1999, पृष्ठ 1–42

ब्रेमन जान. 1999. ''द स्टडी ऑफ़ इंडस्ट्रियल लेबर इन पोस्ट-कोलोनियल इंडिया- द फॉरमल सेक्टर : एन इंट्रोडक्ट्री रिव्यू'', कंट्रीब्यूशन्स टू इंडियन सोशयोलॉजी, वॉल्यूम 33 (1 तथा 2), जनवरी–अगस्त 1999, पृष्ठ 407–431

ब्रेमन, जान और अरविंद एन. दास. 2000. डाउन एंड आउट, लेबरिंग अंडर ग्लोबल केपिटलिज़्म, ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

दतार, छाया. 1990. बीड़ी वर्कस इन निपानी, इलिना सेन, ए स्पेस विदिन द स्ट्रगल में, काली फॉर वूमेन, पृष्ठ 1601–81, नयी दिल्ली

गाँधी, एम.के. 1909. हिंद स्वराज एंड अदर राइटिंग्स, संपादन, एंथनी जे. परेल, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज

जॉर्ज, अजिथा सुसन. 2003. लॉज़ रिलेटिड टू माइनिंग इन झारखंड, रिपोर्ट फॉर यू.एन.डी.पी.

होलस्ट्रोम, मार्क. 1984. इंडस्ट्री एंड इनइक्वालिटी : द सोशल एंथ्रोपोलॉजी ऑफ़ इंडियन लेबर, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज

जोशी, चित्रा. 2003. लॉस्ट वर्ल्ड्स, इंडियन लेबर एंड इट्स फॉरगोटन हिस्ट्रीज़, दिल्ली, परमानेन्ट ब्लैक, नयी दिल्ली

केर, क्लार्क एट एल. 1973. इंडस्ट्रियलिज़्म एंड इंडस्ट्रियल मेन, पेंगुइन, हारमॉनड्सवर्थ

कुमार, के. 1973. प्रोफेसी एंड प्रोग्रेस, ऐलन लेन, लंदन

मेनन, मीना और नीरा आदरकर. 2004. वन हंड्रेड इयर्स, वन हंड्रेड वॉयसेज़ : द मिलवर्कर्स ऑफ़ गोरेगाँव : एन ओरल हिस्ट्री, सीगल प्रेस, कोलकाता

पी.यू.डी.आर. 2001. हार्ड ड्राइव : वर्किंग कंडीशस एंड वर्कर्स स्ट्रगल्स एट मारुति, पी.यू.डी.आर., दिल्ली

उपाध्या, केरोल 2005. संस्कृति का समावेश: भारतीय सॉफ्टवेयर आउटसोर्सिंग उद्योग में काम और श्रमिकों पर नियंत्रण। नए वैश्विक कार्यबलों और आभासी कार्यस्थलों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया: कनेक्शन, संस्कृति और नियंत्रण, राष्ट्रीय उन्नत अध्ययन संस्थान, बैंगलोर।

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished

6 भूमंडलीकरण और सामाजिक परिवर्तन

12110CH06

© NCERT not to be republished

आज इक्कीसवीं शताब्दी में सामाजिक परिवर्तन पर कोई चर्चा भूमंडलीकरण के संदर्भ पर कुछ विचार किए बिना हो ही नहीं सकती। यह स्वाभाविक है कि सामाजिक परिवर्तन और विकास विषयक इस पुस्तक में, 'भूमंडलीकरण' (ग्लोबलाइजेशन) और 'उदारीकरण' (लिबरलाइजेशन) शब्द इससे पहले के अध्यायों में आ चुके हैं। अध्याय 4 में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और ग्रामीण समाज विषयक अनुभाग को पुनःस्मरण करें। अपनी पुस्तक के पन्ने पीछे की ओर पलटें और अध्याय-5 में उदारीकरण के बारे में भारत सरकार की नीति और भारतीय उद्योगों पर उसका प्रभाव विषयक अनुभाग को पढ़ें। जब हमने अध्याय-3 में *विज़न मुंबई* एवं भूमंडलीय शहरों के भविष्य के बारे में चर्चा की थी, तब भी ये शब्द आए थे। अपनी पाठ्यपुस्तकों के अलावा भी आपने भूमंडलीकरण शब्द को समाचारपत्रों, टेलीविजन कार्यक्रमों यहाँ तक कि अपनी रोज़मर्रा की बातचीत में भी पढ़ा-सुना होगा।

Diabetic population highest in India: Atlas

China follows right behind with 39.8 million diabetics

Ramya Kannan

CHENNAI: If anything, the International Diabetes Federation's (IDF) Diabetes Atlas released early December in South Africa, only confirms what we already know: India has the largest number of people living with diabetes.

It is in the pre-diabetic phase, Impaired Glucose Tolerance, that China overtakes India, both in the prevalence and projections.

The Atla[...] series that be[...]n in 2000, beg[...]s with th[...] preamble: "With th[...] forces [...] globalisation and [...]dustrialisa[...] proce[...]g at an increasing rate, the prevalence of diabetes is predicted to increase dramatically o[...] the next few decades. The [...]sulting burden of compli[...]tions and prematu[...] mortality will continue [...] present itself as a major a[...] growing public health pr[...]lem for most countries."

The IDF has worked on t[...] Atlas, hoping to create an i[...]pact on the public health p[...]icy of various governme[...] across the world, advisi[...]

- India will top list even in 2025: projections
- China ahead of India in pre-diabetic stage

them to factor diabetes into their plans, according to A. Ramachandran, Director, Diabetes Research Centre and M.V. Hospital for Diabetes, Chennai.

Dr. Ramachandran, who also served on the Atlas Committee where his research has been extensively quoted, says, "we need to push the cause of fighting diabetes with governments. We believe that politicians are con-

some distance between itself and India. China will have 59.3 million diabetics in 2025, the Atlas says.

However, the Atlas throws up figures that put China ahead of India in the pre-diabetic stage defined as Impaired Glucose Tolerance (IGT), again associated with insulin resistance.

In fact, China is currently way ahead of the rest of the world, with 64.3 million people with IGT, and will continue to be in 2025, according to the Atlas, with 79.1 million IGTs. India follows with a current prevalence of 35.9 million persons and a projected total of 56.2 million people in 2025.

The Big Global Movement Against WTO

[...]xth Ministerial Conference (MC6) of World Trade Organisation (WTO) go the Seattle and [...]ay? The clarion call to 'Derail the Hong Kong Ministerial' scheduled from 13-18 December [...]een reverberating from all corners of the world.

Ghaziabad– global city of tomorrow

क्रियाकलाप 6.1

किसी भी समाचारपत्र को नियमित रूप से दो सप्ताह तक पढ़ें और यह नोट करें कि 'भूमंडलीकरण' शब्द का प्रयोग कैसे हुआ है। कक्षा में अपने अन्य साथियों की टिप्पणियों से अपनी टिप्पणी की तुलना करें।

विभिन्न प्रकार के टेलीविजन कार्यक्रमों में 'भूमंडलीकरण' एवं 'विश्वव्यापी' (ग्लोबल) शब्दों के संदर्भों को नोट करें। आप राजनीतिक या आर्थिक अथवा सांस्कृतिक मामलों से संबंधित समाचारों और चर्चाओं पर भी अपना ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

Reprint 2025-26

क्रियाकलाप-6.1 से आप को यह जानने में सहायता मिलेगी कि भूमंडलीकरण शब्द का प्रयोग विभिन्न प्रसंगों में अनेक रीतियों से किया जाता है। फिर भी हमें यह स्पष्ट रूप से जानने की आवश्यकता है कि वास्तव में इस शब्द का अर्थ क्या है? इस अध्याय में हम भूमंडलीकरण के अर्थ को उसके भिन्न-भिन्न आयामों में और उनके सामाजिक परिणामों को समझने का प्रयास करेंगे।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भूमंडलीकरण की एक ही परिभाषा हो सकती है और उसे समझने का तरीका भी एक ही है। दरअसल हम यह देखेंगे कि भिन्न-भिन्न विषय अथवा अकादमिक शास्त्र (डिसीप्लीन) भूमंडलीकरण के भिन्न-भिन्न पक्षों पर ध्यान दिलाते हैं। अर्थशास्त्र आर्थिक आयामों, जैसे पूँजी के प्रवाह आदि का अधिक विवेचन करता होगा। राजनीतिशास्त्र सरकारों की बदलती हुई भूमिका पर ध्यान दिलाता होगा। तथापि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ही इतनी व्यापक है कि भिन्न-भिन्न विषयों को भूमंडलीकरण के कारणों और परिणामों को समझने के लिए, एक-दूसरे से अधिकाधिक जानकारी लेनी पड़ती है। तो आइए देखें कि समाजशास्त्र भूमंडलीकरण को समझने के लिए क्या करता है।

समाजशास्त्र व्यक्ति और समाज, सूक्ष्म और स्थूल, व्यष्टि एवं समष्टि (माइक्रो एवं मैक्रो), स्थानीय एवं भूमंडलीय के बीच के संबंधों के भाव को समझने के लिए समाजशास्त्रीय कल्पना शक्ति का प्रयोग करता है। एक दूरदराज के गाँव में रहने वाला किसान भूमंडलीय परिवर्तनों से कैसे प्रभावित होता है? भूमंडलीकरण ने मध्यवर्ग के रोज़गार के अवसरों पर कैसा प्रभाव डाला है? उसने बड़े भारतीय निगमों के पारराष्ट्रीय (ट्रांसनेशनल) निगम बन जाने की संभावनाओं को कैसे प्रभावित किया है? यदि खुदरा व्यापार का क्षेत्र पार राष्ट्रीय बड़ी कंपनियों के लिए खोल दिया जाता है तो पड़ोस के पंसारी पर उसका क्या प्रभाव होगा? आज हमारे शहरों और कस्बों में इतने अधिक बड़े-बड़े बिक्री भंडार (शॉपिंग मॉल) क्यों हैं? आज युवाओं में अपना खाली समय बिताने का तरीका कैसे बदल गया है? हम भूमंडलीकरण द्वारा लाए जा रहे विभिन्न प्रकार के व्यापक परिवर्तनों के कुछ उदाहरण देते हैं। आप स्वयं भी ऐसे और कई उदाहरण बता सकेंगे जिनसे भूमंडलीय घटनाक्रम आम लोगों के जीवन को प्रभावित कर रहा है। और उसके माध्यम से उस तरीके को भी प्रभावित कर रहा है जिससे समाजशास्त्र को समाज का अध्ययन करना है।

बाज़ार को खुला कर देने, और अनेक उत्पादों के आयात पर लगे प्रतिबंधों को हटा देने से, हम देखते हैं कि हमारे पास-पड़ोस की दुकानों में दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों से उत्पादित वस्तुएँ आने लगी हैं। आयात पर लगे सभी प्रकार के परिमाणात्मक प्रतिबंधों को पहली अप्रैल, 2001 से खारिज कर दिया गया है। अब पड़ोस के फलों की दुकान में बिक्री के लिए पड़ी चीन की नाशपाती और आस्ट्रेलिया के सेब को देखकर आश्चर्य नहीं होता। पड़ोस की दुकान में आपको आस्ट्रेलियाई संतरे का रस और बर्फ में जमे हुए पैकेटों में तलने के लिए तैयार (आलू आदि की) चिप्स मिल जाएँगी। हम अपने घरों में अपने परिवार या मित्रों के साथ बैठकर जो खाते-पीते हैं, वह भी धीरे-धीरे बदल रहा है। नीति में किए गए एक जैसे परिवर्तन उपभोक्ताओं और उत्पादकों को अलग-अलग तरीके से प्रभावित करते हैं। यह बदलाव जहाँ एक संपन्न शहरी उपभोक्ता के लिए उपभोग के नए और व्यापक विकल्प लाता है, वहीं एक किसान के लिए आजीविका का संकट पैदा कर सकता है। ये परिवर्तन व्यक्तिगत होते हैं क्योंकि वे व्यक्ति के जीवन और जीवन शैली को प्रभावित करते हैं। लेकिन वे निश्चित रूप से सार्वजनिक नीतियों से भी जुड़े होते हैं जिन्हें सरकार अपनाती है और विश्व व्यापार संगठन (डब्लू.टी.ओ) के साथ समझौता करके तय करती है। इसी प्रकार, स्थूल नीतिगत परिवर्तनों का मतलब यह है कि एक टेलीविजन चैनल की बजाय, आज हमारे पास वास्तव में बीसों चैनल हैं। मीडिया में जो आकस्मिक नाटकीय परिवर्तन आए हैं, वे संभवतः भूमंडलीकरण के सबसे अधिक स्पष्ट प्रभाव हैं।

Reprint 2025-26

हम इनके बारे में अगले अध्याय में अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे। यहाँ वैसे ही कुछ बेतरतीब उदाहरण दे दिए गए हैं लेकिन आप इनकी सहायता से उस घनिष्ठ पारस्परिक संबंध को समझ सकेंगे जो लोगों के व्यक्तिगत जीवन और भूमंडलीकरण की दूरस्थ नीतियों के बीच विद्यमान हैं। जैसा कि पहले कहा गया है, समाजशास्त्रीय कल्पनाशक्ति सूक्ष्म एवं स्थूल के बीच, व्यष्टि एवं समष्टि के बीच और व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक के बीच संबंध स्थापित कर सकती है।

कोई भी समाजशास्त्री या सामाजिक मानवविज्ञानी एक समाज का अलग-थलग रूप में अध्ययन नहीं कर सकता। स्थान और समय की दूरियाँ सिकुड़ जाने से यह परिवर्तन हुआ है। समाजशास्त्रियों को इन भूमंडलीय अंतःसंबंधों को ध्यान में रखते हुए गाँवों, परिवारों, आंदोलनों, बच्चों के पालन-पोषण के तरीकों, काम और अवकाश के क्षणों, दफ़्तरशाही, अधिकारीतंत्रीय संगठनों अथवा जातियों का अध्ययन करना होगा। इन अध्ययनों में विश्व व्यापार संगठन के नियमों का कृषि पर तथा उसके फलस्वरूप किसान पर पड़ने वाले प्रभाव का भी ध्यान रखा जाएगा।

भूमंडलीकरण का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। यह हम सबको प्रभावित करता है। कुछ के लिए इसका अर्थ है नए-नए अवसरों का उपलब्ध होना तो दूसरों के लिए आजीविका की हानि हो सकता है। ज्यों ही चीनी और कोरियाई रेशम के धागे (यार्न) ने बाज़ार में प्रवेश किया, बिहार की रेशम कातने और धागा बनाने वाली औरतों का धंधा ही चौपट हो गया। बुनकर और उपभोक्ता इस नए यार्न (चीन एवं कोरिया के रेशम के धागे) को अधिक पसंद करते हैं क्योंकि यह कुछ सस्ता है और इसमें एक तरह की चमक भी होती है। भारतीय समुद्री जल में बड़े-बड़े मछली पकड़ने वाले जहाज़ों के प्रवेश के साथ ही कुछ ऐसी ही उठापटक हुई। ये बड़े-बड़े जहाज़ वे सब मछलियाँ बटोरकर ले गए जो पहले भारतीय नौकाओं द्वारा इकट्ठी की जाती थीं। इस प्रकार मछली छाँटने, सुखाने, बेचने और जाल बुनने वाली औरतों की रोजी-रोटी छिन गई। गुजरात में, गोंद इकट्ठा करने वाली औरतें जो पहले बावल के पेड़ों (जुलिफेरा) से गोंद इकट्ठा करती थीं, सूडान से सस्ते गोंद का आयात शुरू हो जाने से, अपना रोज़गार खो बैठीं। भारत के लगभग सभी शहरों में, रद्दी बीनने वाले लोग कुछ हद तक अपना रोज़गार खो बैठे क्योंकि विकसित देशों से रद्दी कागज का आयात होने लगा है। इसी अध्याय में आगे चलकर हम यह देखेंगे कि परंपरागत मनोरंजनकर्त्ताओं के व्यवसायों पर इस भूमंडलीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है।

यह स्पष्ट है कि भूमंडलीकरण का सामाजिक आशय बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन, जैसाकि आपने अभी देखा है, समाज के विभिन्न हिस्सों पर इसका प्रभाव बहुत ही भिन्न प्रकार का होता है। इसलिए भूमंडलीकरण के प्रभाव के बारे में लोगों के विचार एकसमान न होकर, बहुत-ही विभाजित हैं। कुछ का विश्वास है कि भूमंडलीकरण बेहतर विश्व के अग्रदूत के रूप में अत्यंत आवश्यक है। दूसरों को डर है कि विभिन्न भागों, समूहों के लोगों पर भूमंडलीकरण का असर बहुत ही अलग-अलग प्रकार का होता है। उनका कहना है कि अधिक सुविधासंपन्न वर्गों में बहुत-से लोगों को तो इससे लाभ होगा लेकिन पहले से ही सुविधा-वंचित आबादी के बहुत बड़े हिस्से की हालत बद से बदतर होती चली जाएगी। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह कहते हैं कि भूमंडलीकरण एकदम नयी प्रक्रिया नहीं है। अगले दो अनुभागों में हम इन मुद्दों पर चर्चा करेंगे। हम यह भी पता लगाएँगे कि प्राचीन काल में भूमंडलीय स्तर पर भारत के अंतःसंबंध कैसे थे। हम यह भी जाँच करेंगे कि क्या वास्तव में भूमंडलीकरण की कुछ खास विशेषताएँ हैं– और वे क्या-क्या हैं?

Reprint 2025-26

6.1 क्या भूमंडलीकरण के अंत:संबंध विश्व और भारत के लिए नए हैं?

यदि भूमंडलीकरण भूमंडलीय अंत:संबंधों के बारे में है तो हम यह पूछ सकते हैं कि क्या यह कोई नयी प्रघटना है? क्या भारत और विश्व के विभिन्न भाग प्रारंभिक कालों में आपस में अंत:क्रिया नहीं करते थे?

प्रारंभिक वर्ष

भारत आज से दो हज़ार वर्ष पहले भी विश्व से अलग-थलग नहीं था। हमने अपनी इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में प्रसिद्ध रेशम मार्ग (सिल्करूट) के बारे में पढ़ा है; यह मार्ग सदियों पहले भारत को उन महान सभ्यताओं से जोड़ता था जो चीन, फ्रांस, मिस्र और रोम में स्थित था। हम यह भी जानते हैं कि भारत के लंबे अतीत के दौरान, विश्व के भिन्न-भिन्न भागों से लोग यहाँ आए थे, कभी व्यापारियों के रूप में, कभी विजेताओं के रूप में और कभी नए स्थान की तलाश में प्रवासी के रूप में और फिर वे यहीं बस गए। दूरदराज के भारतीय गाँवों में लोग ऐसे समय को याद करते हैं जब उनके पूर्वज कहीं और रहा करते थे, जहाँ से वे उस स्थान पर आए जहाँ वे इस समय रह रहे हैं।

इस प्रकार, भूमंडलीय अंत:क्रियाएँ अथवा भूमंडलीय दृष्टिकोण कोई नयी चीज़ नहीं है जो आधुनिक युग अथवा आधुनिक भारत के लिए अनोखी हो।

बॉक्स 6.1

यह एक रोचक तथ्य है कि संस्कृत-भाषा का सबसे महान व्याकरणाचार्य, पाणिनी, जिसने ईसापूर्व चौथी शताब्दी के आसपास संस्कृत व्याकरण और स्वरविज्ञान को सुव्यवस्थित एवं रूपांतरित किया था, वे अफगान मूल के थे...। सातवीं शताब्दी के चीनी विद्वान यी जिंग ने चीन से भारत आते हुए, मार्ग में जावा (श्रीविजय शहर में) में रुककर संस्कृत सीखी थी। अंत:क्रियाओं का प्रभाव थाईलैंड से मलाया, इंडो-चाइना, इंडोनेशिया, फिलिपिंस, कोरिया और जापान... तक समस्त एशिया महाद्वीप की भाषाओं और शब्दावलियों में दृष्टिगोचर होता है।

हमें 'कूपमंडूक' (कुएँ में रहने वाले मेंढ़क) से संबंधित एक नीतिकथा में एकाकीकरणवाद (आइसोलेशनिज्म) के विरुद्ध एक चेतावनी मिलती है। यह नीतिकथा संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में बार-बार दोहराई गई है.....। 'कूपमंडूक' एक मेंढ़क है जो जीवनभर एक कुएँ में रहता है; वह और कुछ नहीं जानता और बाहर की हर चीज़ पर शक करता है। वह किसी से बात नहीं करता और किसी के साथ किसी भी विषय पर तर्क-वितर्क नहीं करता। वह तो बस बाहरी दुनिया के बारे में अपने दिल में गहरा संदेह पाले रखता है। विश्व का वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास वास्तव में बहुत ही सीमित होता यदि हम भी कूपमंडूक की तरह जीवन बिताते। (सेन 2005:84:86)

उपनिवेशवाद और भूमंडलीय संयोजन

हमने आधुनिक भारत में सामाजिक विकास की कहानी औपनिवेशिक काल से शुरू की थी। आपने अध्याय- 1 में पढ़ा होगा कि आधुनिक पूँजीवाद का उसके प्रारंभ से ही एक भूमंडलीय आयाम रहा है। उपनिवेशवाद उस व्यवस्था का एक भाग था जिसे पूँजी, कच्ची सामग्री, ऊर्जा और बाज़ार के नए स्रोतों और एक ऐसे संजाल (नेटवर्क) की आवश्यकता थी जो उसे सँभाले हुए था। आज भूमंडलीकरण की आम पहचान है लोगों का बड़े पैमाने पर प्रवसन जो उसका एक पारिभाषिक लक्षण है। आप यह तो जानते ही हैं कि संभवत: लोगों का सबसे बड़ा प्रवसन यूरोपीय लोगों का देशांतरण था जब वे अपना देश छोड़कर अमेरिका में और आस्ट्रेलिया में जा बसे थे। आपको याद होगा कि भारत से गिरमिटिया मज़दूरों को किस प्रकार जहाज़ों में

Reprint 2025-26

भरकर एशिया, अफ्रीका और उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका के दूरवर्ती भागों में काम करने के लिए ले जाया गया था और दास-व्यापार के अंतर्गत हज़ारों अफ्रीकियों को दूरस्थ तटों तक गाड़ियों में भरकर ले जाया गया था।

स्वतंत्र भारत और विश्व

स्वतंत्र भारत ने भी भूमंडलीय दृष्टिकोण को अपनाए रखा। यह कई अर्थों में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों से विरासत में मिला था। विश्वभर में चल रहे उदारता संघर्षों के लिए प्रतिबद्धता, विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के साथ एकता दर्शाना इसी दृष्टिकोण का अभिन्न अंग था। बहुत-से भारतवासियों ने शिक्षा एवं कार्य के लिए समुद्र पार की यात्राएँ कीं। एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया थी कच्चा माल, सामग्री और प्रौद्योगिकी का आयात और निर्यात स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय से ही देश के विकास का अंग बना रहा। विदेशी कंपनियाँ भारत में सक्रिय थीं इसलिए हमें अपने आप से यह पूछने की जरूरत है कि परिवर्तन की वर्तमान प्रक्रिया क्या आमूल रूप से उस प्रक्रिया से भिन्न है जिसे हमने अतीत में देखा था।

6.2 भूमंडलीकरण की समझ

हमने देखा है कि अत्यंत प्रारंभिक काल से ही भूमंडलीय विश्व के साथ भारत के संबंध बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं। हम यह भी जानते हैं कि पाश्चात्य पूँजीवाद, जैसाकि वह यूरोप में उभरा था, उपनिवेशवाद के रूप में, अन्य देशों के संसाधनों पर भूमंडलीय नियंत्रण के रूप में उभरा और आगे भी रहेगा। किंतु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या भूमंडलीकरण केवल भूमंडलीय अंतःसंबद्धता के बारे में ही है या फिर इसका संबंध उन महत्वपूर्ण परिवर्तनों से है जो उत्पादन और संचार, श्रम तथा पूँजी के संगठन, प्रौद्योगिकीय नवाचार और सांस्कृतिक अनुभवों, शासन की प्रणालियों और सामाजिक आंदोलन में हुए हैं? ये परिवर्तन तब भी सार्थक प्रतीत होते थे भले ही कुछ प्रतिमान पूँजीवाद की प्रारंभिक अवस्थाओं में स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो चुके हों। कुछ ऐसे परिवर्तनों ने जोकि संचार-क्रौंति से प्रवाहित हुए थे, हमारे काम करने और रहने के तौर-तरीकों को बहुआयामी रूपों में बदल दिया गया है।

अब हम भूमंडलीकरण की विशिष्ट विशेषताओं के बारे में बतलाने का प्रयास करेंगे। जब आप उन विशेषताओं का अध्ययन करेंगे तो आपको यह महसूस होगा कि भूमंडलीय अंतःसंबद्धता की एक सरल परिभाषा भूमंडलीकरण की गहनता एवं जटिलता को क्यों नहीं पकड़ पाती?

भूमंडलीकरण का अर्थ समूचे विश्व में सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों के विस्तार के कारण विश्व में विभिन्न लोगों, क्षेत्रों एवं देशों के मध्य अंतःनिर्भरता की वृद्धि से है। यद्यपि आर्थिक शक्तियाँ भूमंडलीकरण का एक अभिन्न अंग हैं, लेकिन यह कहना गलत होगा कि अकेली वे शक्तियाँ ही भूमंडलीकरण को उत्पन्न करती हैं। भूमंडलीकरण सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों के विकास के द्वारा ही सबसे आगे बढ़ा है। इन प्रौद्योगिकियों ने विश्वभर में लोगों के बीच अंतःक्रिया की गति एवं क्षेत्र को बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया है। इसके अलावा, हम यह भी देखेंगे कि राजनीतिक संदर्भ में भी इसका विस्तार हुआ। आइए, भूमंडलीकरण के विभिन्न आयामों पर दृष्टिपात करें। अपनी चर्चा को सहज बनाने के लिए हम आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर पृथक रूप से विचार करेंगे। तथापि आप शीघ्र ही समझ जाएँगे कि वे पहलू कितनी गहराई से परस्पर जुड़े हुए हैं।

Reprint 2025-26

भूमंडलीकरण के विभिन्न आयाम

आर्थिक आयाम

भारत में हम उदारीकरण और भूमंडलीकरण दोनों शब्दों का प्रयोग अक्सर करते रहते हैं। वे वास्तव में एक-दूसरे से जुड़े हुए अवश्य हैं पर एक जैसे नहीं हैं। भारत में, हमने देखा है कि राज्य (सरकार) ने 1991 में अपनी आर्थिक नीति में कुछ परिवर्तन लाने का निर्णय लिया था। इन परिवर्तनों को उदारीकरण की नीतियाँ कहा जाता है।

अ. उदारीकरण की आर्थिक नीति

भूमंडलीकरण में सामाजिक और आर्थिक संबंधों का विश्वभर में विस्तार सम्मिलित है। यह विस्तार कुछ आर्थिक नीतियों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। मोटे तौर पर इस प्रक्रिया को भारत में उदारीकरण कहा जाता है। 'उदारीकरण' शब्द का तात्पर्य ऐसे अनेक नीतिगत निर्णयों से है जो भारत राज्य द्वारा 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व-बाज़ार के लिए खोल देने के उद्देश्य से लिए गए थे। इसके साथ ही, अर्थव्यवस्था पर अधिक नियंत्रण रखने के लिए सरकार द्वारा इससे पहले अपनाई जा रही नीति पर विराम लग गया। सरकार ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद अनेक ऐसे कानून बनाए थे जिनसे यह सुनिश्चित किया गया था कि भारतीय बाज़ार और भारतीय स्वदेशी व्यवसाय व्यापक विश्व की प्रतियोगिता से सुरक्षित रहें। इस नीति के पीछे यह अवधारणा थी कि उपनिवेशवाद से मुक्त हुआ देश स्वतंत्र बाज़ार की स्थिति में नुकसान में ही रहेगा।

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का अर्थ था भारतीय व्यापार को नियमित करने वाले नियमों और वित्तीय नियमनों को हटा देना। इन उपायों को 'आर्थिक सुधार' भी कहा जाता है। ये सुधार क्या हैं? जुलाई 1991 से, भारतीय अर्थव्यवस्था ने अपने सभी प्रमुख क्षेत्रों (कृषि, उद्योग, व्यापार, विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी, सार्वजनिक क्षेत्र, वित्तीय संस्थाएँ आदि) में सुधारों की एक लंबी शृंखला देखी है। इसके पीछे मूल अवधारणा यह थी कि भूमंडलीय बाज़ार में पहले से अधिक समावेश करना भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।

उदारीकरण की प्रक्रिया के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (आई.एम.एफ.) जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेना भी ज़रूरी हो गया। ये ऋण कुछ निश्चित शर्तों पर दिए जाते हैं। सरकार को कुछ विशेष प्रकार के आर्थिक उपाय करने के लिए वचनबद्ध होना पड़ता है; और इन आर्थिक उपायों के अंतर्गत संरचनात्मक समायोजन की नीति अपनानी होती है। इन समायोजनों का अर्थ सामान्यतः सामाजिक क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा में राज्य के व्यय में कटौती है। अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के संदर्भ में भी यह बात कही जा सकती है।

ब. पारराष्ट्रीय निगम

भूमंडलीकरण को प्रेरित एवं संचालित करने वाले अनेक आर्थिक कारकों में से, पारराष्ट्रीय निगमों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है। टी.एन.सी., एम.एन.सी. या मल्टीनेशनल पारराष्ट्रीय निगम ऐसी कंपनियाँ होती हैं जो एक से अधिक देशों में अपने माल का उत्पादन करती हैं अथवा बाज़ार सेवाएँ प्रदान करती हैं। ये अपेक्षाकृत छोटी फर्में भी हो सकती हैं। इनके एक या दो कारखाने उस देश से बाहर होते हैं जहाँ वे मूलरूप से स्थित हैं। साथ ही, वे बड़े विशाल अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठान भी हो सकते हैं जिसका कारोबार संपूर्ण भूमंडल में फैला हुआ हो। कुछ बहुत बड़े पारराष्ट्रीय निगमों एम.एन.सी. के नाम जो जगप्रसिद्ध हैं,

Reprint 2025-26

क्रियाकलाप 6.2

पारराष्ट्रीय निगमों द्वारा उत्पादित ऐसी वस्तुओं की सूची बनाएँ जिनका प्रयोग आप करते हैं अथवा आपने बाज़ार में देखा है अथवा जिनके विज्ञापनों को आपने सुना या देखा है। इस तरह के उत्पादों की सूची बनाएँ—

- *जूते*
- *कैमरे*
- *कंप्यूटर*
- *टेलीविजन*
- *कारें*
- *संगीत उपकरण*
- *प्रसाधन के साधन जैसे साबुन या शैंपू*
- *कपड़े*
- *प्रसंस्करित खाद्य*
- *चाय*
- *कॉफी*
- *दूध पाउडर*

ये हैं— कोकाकोला, जनरल मोटर्स, कॉलगेट-पामोलिव, कोडैक, मित्सुबिशी आदि। भले ही इन निगमों का अपना एक स्पष्ट राष्ट्रीय आधार हो, फिर भी वे भूमंडलीय बाज़ारों और भूमंडलीय मुनाफ़ों की ओर अभिमुखित हैं। कुछ भारतीय निगम भी पारराष्ट्रीय बन रहे हैं किंतु हम समय के इस बिंदु पर निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि इस रुख को, कुल मिलाकर, भारत के लोग इसे किस अर्थ में लेंगे।

स. इलेक्ट्रॉनिक अर्थव्यवस्था

इलेक्ट्रॉनिक अर्थव्यवस्था एक अन्य कारक है जो आर्थिक भूमंडलीकरण को सहारा देता है। कंप्यूटर के माउस को दबाने मात्र से बैंक, निगम, निधि प्रबंधक और निवेशकर्ता अपनी निधि को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इधर से उधर भेज सकते हैं। हालाँकि इस प्रकार क्षणभर में 'इलेक्ट्रॉनिक' 'मुद्रा' भेजने का यह तरीका बहुत खतरनाक भी है। भारत में अक्सर इसकी चर्चा स्टॉक एक्सचेंज में होने वाले उतार-चढ़ाव के संदर्भ में की जाती है। यह उतार-चढ़ाव विदेशी निवेशकों द्वारा मुनाफे के लिए अचानक बड़ी मात्रा में स्टॉक खरीदने या बेचने के कारण आता है। ऐसे सौदे संचार क्रांति की बदौलत ही संभव हुए हैं जिसके बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

द. भाररहित अर्थव्यवस्था या ज्ञानात्मक अर्थव्यवस्था

भूमंडलीय अर्थव्यवस्था पिछले युगों के विपरीत अब प्राथमिक रूप से कृषि या उद्योग पर आधारित नहीं है। भाररहित अर्थव्यवस्था वह होती है जिसके उत्पाद सूचना पर आधारित होते हैं जैसे, कंप्यूटर सॉफ़्टवेयर, मीडिया और मनोरंजक उत्पाद तथा इंटरनेट आधारित सेवाएँ। ज्ञानात्मक अर्थव्यवस्था वह होती है जिसमें अधिकांश कार्य-बल वस्तुओं के वास्तविक भौतिक उत्पादन अथवा वितरण में संलग्न नहीं होता, बल्कि उनके प्रारूप (डिज़ाइन), विकास, प्रौद्योगिकी, विपणन, बिक्री और सर्विस आदि में लगा रहता है। इस अर्थव्यवस्था में आपके पड़ोस में स्थित खान-पान प्रबंध सेवा से लेकर बड़े-बड़े ऐसे संगठन भी शामिल होते हैं जो सम्मेलनों जैसे व्यावसायिक समारोहों से लेकर शादी-विवाह जैसे पारिवारिक आयोजनों के लिए मेजबान को अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं। ऐसे भी बहुत-से नए-नए व्यवसाय हैं जिनके बारे में कुछ दशकों पहले सुना ही नहीं गया था, उदाहरण के लिए कार्यक्रम प्रबंधक। क्या आपने उनके बारे में सुना है? वे क्या करते हैं? ऐसी ही कुछ नयी सेवाओं का पता लगाएँ।

य. वित्त का भूमंडलीकरण

यह भी ध्यान रहे कि मुख्य रूप से सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति के कारण, पहली बार, वित्त का भूमंडलीकरण हुआ है। भूमंडलीय आधार पर एकीकृत वित्तीय बाज़ार इलेक्ट्रॉनिक परिपथों में, कुछ ही क्षणों में अरबों-खरबों डॉलर के लेन-देन कर डालते हैं। पूँजी और प्रतिभूति बाज़ारों में चौबीसों घंटे व्यापार चलता रहता है। न्यूयार्क, टोकियो और लंदन जैसे नगर वित्तीय व्यापार के प्रमुख केंद्र हैं। भारत में, मुंबई को देश की वित्तीय राजधानी कहा जाता है।

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 6.3

- *टेलीविजन पर उन चैनलों की संख्या गिनें जो व्यवसाय के चैनल हैं और स्टॉक बाज़ार, विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेशों के प्रवाह, विभिन्न कंपनियों की वित्तीय रिपोर्टों आदि के विषय में अद्यतन जानकारी देते हैं। आप अपनी इच्छानुसार किसी भारतीय भाषा के चैनल अथवा अंग्रेज़ी चैनलों पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।*
- *कुछ वित्तीय समाचारपत्रों के नामों का पता लगाएँ।*
- *क्या आप उनमें किन्हीं भूमंडलीय प्रवृत्तियों पर ध्यान केंद्रित किया हुआ पाते हैं? चर्चा करें।*
- *आपके विचार से इन प्रवृत्तियों ने हमारे जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया है?*

भूमंडलीय संचार

विश्व में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र और दूरसंचार के आधारभूत ढाँचे में हुई महत्वपूर्ण उन्नति के फलस्वरूप भूमंडलीय संचार व्यवस्था में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब कुछ घरों और बहुत-से कार्यालयों में बाहरी दुनिया के साथ संबंध बनाए रखने के अनेक साधन मौजूद हैं; जैसे— टेलीफ़ोन (लैंडलाइन और मोबाइल दोनों किस्मों के), फ़ैक्स मशीनें, डिजिटल और केबल टेलीविजन, इलेक्ट्रॉनिक मेल और इंटरनेट आदि।

आप में से कुछ को ऐसी बहुत-सी जगहों के बारे में पता होगा और कुछ को नहीं भी होगा। हमारे देश में इसे अक्सर 'डिजिटल विभाजन' का सूचक माना जाता है। इस डिजिटल विभाजन के बावजूद, प्रौद्योगिकी के ये विविध रूप समय और दूरी को तो संकुचित या कम करते ही हैं। इस ग्रह पर दो सुदूर विपरीत दिशाओं– बंगलूरु और न्यूयार्क में– बैठे दो व्यक्ति न केवल बातचीत कर सकते हैं, बल्कि दस्तावेज़ और चित्र आदि भी एक-दूसरे को उपग्रह प्रौद्योगिकी की सहायता से भेज सकते हैं। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने विश्व में नेटवर्क सोसायटी एवं मीडिया सोसायटी को उत्पन्न किया है। विश्व के विभिन्न देशों के बीच अन्तःसंबंध उत्पन्न हुए हैं लेकिन उसमें अभी कुशलता एवं गुणात्मक सुधार की ज़रूरत है। इस विषय पर भारत सरकार ने एक ओर अनेक संभावनाओं वाली योजना 'डिजिटल इंडिया' को प्रारम्भ किया है, जो सभी प्रकार के विनिमय में डिजिटलाईजेशन को सहायक इकाई के रूप में स्थापित करेगी। यह कार्यक्रम भारतवर्ष में एक ऐसे रूपान्तरण को जन्म देगा, जो डिजिटली दृष्टि से सशर्त भारतीय समाज एवं ज्ञान अर्थव्यवस्था को विस्तार देगा। आप अपने पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं कि बाह्य स्रोतों से काम कैसे लिया जाता है।

क्रियाकलाप 6.4

- *क्या आपके पड़ोस में कोई इंटरनेट कैफे है?*
- *इसके उपयोगकर्ता कौन हैं? वे इंटरनेट का किस प्रकार का उपयोग करते हैं?*
- *क्या यह काम के लिए है अथवा यह मनोरंजन का नया साधन है?*

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

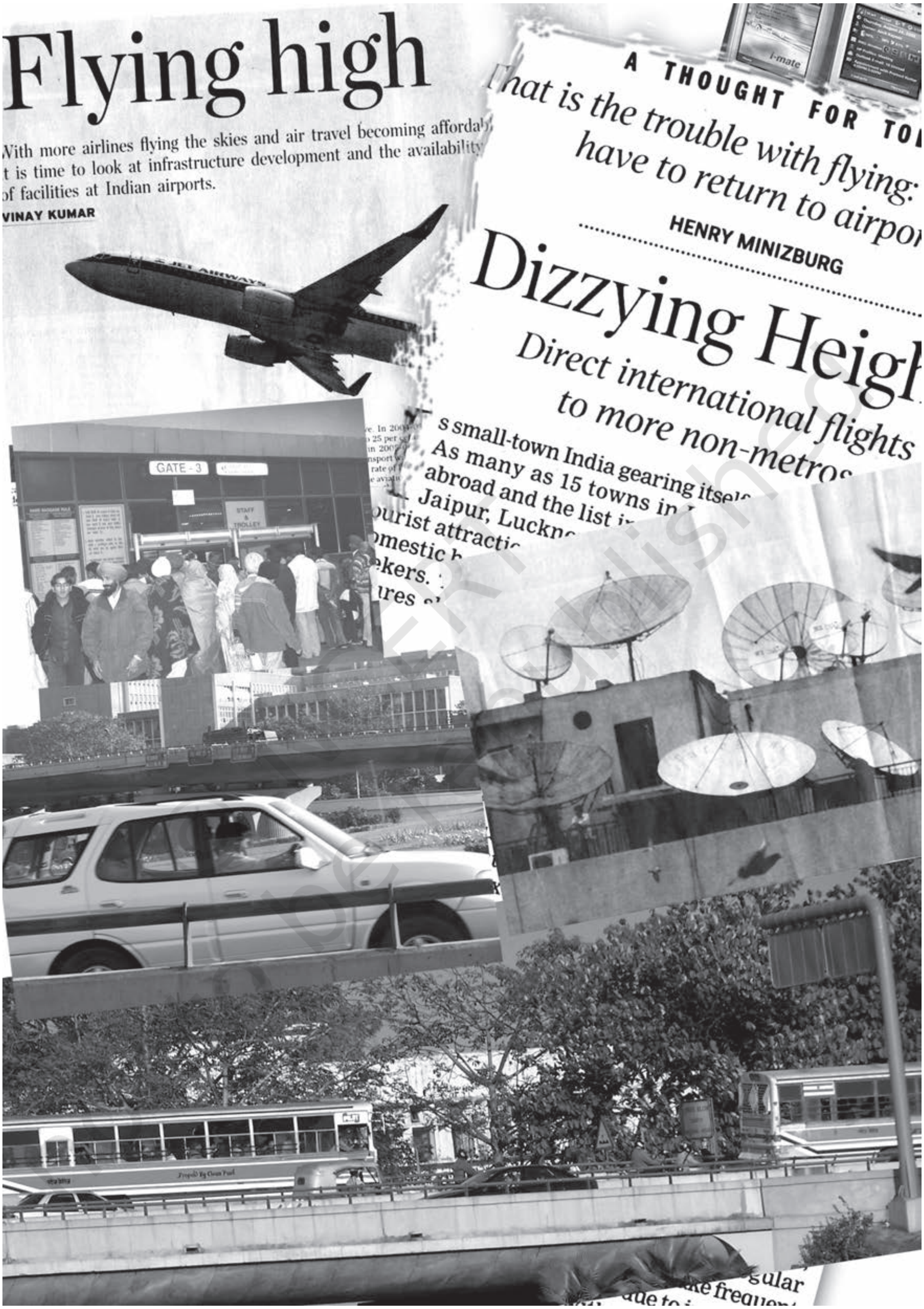
Flying high
With more airlines flying the skies and air travel becoming afforda
t is time to look at infrastructure development and the availabilit
of facilities at Indian airports.
VINAY KUMAR
A THOUGHT FOR TO
hat is the trouble with flying:
have to return to airpo
HENRY MINIZBURG
Dizzying Heig
Direct international flights
to more non-metros
s small-town India gearing itsel
As many as 15 towns in
abroad and the list i
Jaipur, Luckn
ourist attracti
omestic
ekers.
GATE - 3
STAFF & TROLLEY
gular
ke frequen

बॉक्स 6.2

भूमंडलीय स्तर पर इंटरनेट का प्रयोग 1990 के दशक में बहुत अधिक बढ़ गया। 1998 में विश्व भर में 7 करोड़ लोग इंटरनेट का प्रयोग करते थे। इनमें से 62 प्रतिशत प्रयोगकर्ता संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में थे जबकि 12 प्रतिशत एशिया में थे। 2000 तक इंटरनेट के प्रयोगकर्ताओं की संख्या बढ़कर 32.5 करोड़ हो गई। भारत में सन् 2000 तक इंटरनेट के ग्राहकों की संख्या 30 लाख हो गई और 1.5 करोड़ लोग उसका प्रयोग करते थे और यह अब बढ़कर 70 करोड़ हो गया है। 2017–18 के एक अध्ययन के अनुसार, 10 घरों में से एक घर में कंप्यूटर है। लगभग सभी घरों के एक-चौथाई घरों में मोबाइल फ़ोन या अन्य उपकरणों के माध्यम से इंटरनेट कनेक्टिविटी है। ये आँकड़े स्वयं यह सूचित करते हैं कि देश में कंप्यूटरों का तेज़ी से फैलाव होने के बावजूद, 'डिजिटल विभाजन' यहाँ अब भी है। इंटरनेट से जुड़ने की सुविधा अधिकतर नगरीय क्षेत्रों में ही पाई जाती है, जो साइबर कैफे के माध्यम से व्यापक रूप से उपलब्ध है। किंतु ग्रामीण इलाके अब भी अनिश्चित विद्युत आपूर्ति, व्यापक रूप से फैली हुई निरक्षरता और टेलीफ़ोन कनेक्शन जैसी अधिसंरचनाओं के अभाव के कारण अधिकतर इस सुविधा से वंचित हैं।

बॉक्स 6.3

भारत में दूरसंचार विस्तार

जब भारत ने 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त की थी, उस समय इस नए राष्ट्र में 35 करोड़ की जनसंख्या के लिए 84,000 टेलीफोन लाइनें थीं। तैंतीस साल बाद, 1980 तक भी भारत की टेलीफ़ोन सेवा की हालत ठीक नहीं थी; तब 70 करोड़ की जनसंख्या के लिए केवल 25 लाख टेलीफ़ोन तथा 12,000 सार्वजनिक फ़ोन थे और भारत के 6,00,000 गाँवों में से केवल 3 प्रतिशत गाँवों में ही टेलीफ़ोन लगे हुए थे। किंतु 1990 के दशक के आखिरी वर्षों में दूरसंचार परिदृश्य में व्यापक बदलाव आ गया। 1999 तक भारत में 2.5 करोड़ टेलीफ़ोन लाइनें लग चुकी थीं; जो देश के 300 नगरों, 4,869 कस्बों और 310,897 गाँवों में फैली हुई थी जिनकी बदौलत भारत का दूरंसचार संजाल (नेटवर्क) विश्व, में नौवाँ सबसे बड़ा संजाल (नेटवर्क) बन गया था।

...1988 से 1998 के बीच, किसी-न-किसी प्रकार की टेलीफ़ोन सुविधा वाले गाँवों की संख्या 27,316 से बढ़कर 300,000 (यानी भारत में गाँवों की कुल संख्या से आधी) हो गई। 2000 तक कोई 6,50,000 पब्लिक कॉल ऑफिस (पी.सी.ओ.) भारत में दूर-दूर तक ग्रामीण पहाड़ी और जनजातीय इलाकों में विश्वसनीय टेलीफ़ोन सेवा प्रदान करने लगे थे जहाँ टेलीफ़ोन करने के इच्छुक व्यक्ति आराम से (पैदल चल कर) जाएँ, टेलीफ़ोन करें और मीटर में आए पैसे चुका दें।

इस प्रकार पी.सी.ओ. की सुविधा उपलब्ध हो जाने से पारिवारिक सदस्यों के साथ संपर्क बनाए रखने की भारतीय लोगों की एक प्रबल सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकता पूरी होती है। जैसे कि भारत में शादी-विवाह आदि के उत्सवों में शामिल होने के लिए, सगे-संबंधियों के पास जाने के लिए और अंत्येष्टि आदि में सम्मिलित होने के लिए रेलगाड़ी यात्रा करने का सबसे सुलभ साधन बन गई हैं; वैसे ही टेलीफ़ोन भी पारिवारिक घनिष्ठ संबंध बनाए रखने का सबसे आसान तरीका माना जाता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि दूरभाष सेवाओं से संबंधित अधिकतर विज्ञापनों में, माँ को बेटे-बेटियों से, और दादा-दादियों/नाना-नानियों को पोते-पोतियों/नाती-नातियों से बात करते हुए दिखाया जाता है। भारत में दूरभाष व्यवस्था का विस्तार वाणिज्यिक कार्य-व्यवहार के अलावा अपने प्रयोगकर्त्ता के लिए एक प्रबल सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार का कार्य भी करता है। (स्रोतः सिंघल एवं रोजर्सः 2001ः 188–89)।

सेल्यूलर टेलीफ़ोनों में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है और अधिकाँश नगर में रहने वाले मध्यवर्गीय युवाओं के लिए सेलफ़ोन उनके अस्तित्व का हिस्सा बन गए हैं। इस प्रकार सेलफ़ोनों के इस्तेमाल में भारी वृद्धि हुई है और इनके इस्तेमाल के तरीकों में भी काफ़ी बदलाव दिखाई देता है।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 6.5

प्रारंभ में, 1980 के दशक के आखिरी वर्षों में, सेलफ़ोनों को अविश्वास की दृष्टि से (आपराधिक तत्त्वों द्वारा उनका गलत प्रयोग किए जाने के कारण) देखा जाता रहा है। उसके बाद 1998 तक भी उन्हें विलास की वस्तुएँ ही माना जाता रहा है। (अर्थात् केवल धनवान लोग ही इसे रख सकते हैं और इसलिए इसके मालिकों पर कर लगाया जाना चाहिए)। 2006 तक आते-आते हम सेलफ़ोन के प्रयोग में दुनिया के चौथे सबसे बड़े देश बन गए हैं। अब सेलफ़ोन हमारे जीवन के इतने अभिन्न अंग बन गए हैं कि जब छात्रों को कालेज में सेलफ़ोन प्रयोग न करने के लिए कहा गया तो वे हड़ताल पर जाने और देश के राष्ट्रपति से अपील करने के लिए तैयार हो गए।

भारत में सेलफ़ोनों के प्रयोग में हुई आश्चर्यजनक संवृद्धि के कारणों पर कक्षा में परिचर्चा आयोजित करने का प्रयास करें।

- *क्या यह संवृद्धि चतुराईपूर्ण विपणन और मीडिया अभियान के कारण हुई? क्या सेलफ़ोन आज भी प्रतिष्ठा का प्रतीक हैं।*
- *अथवा क्या मित्रों तथा सगे-संबंधियों से संपर्क बनाए रखने, उनसे 'जुड़े रहने' के लिए सेलफ़ोन की अत्यंत आवश्यकता है?*
- *क्या माता-पिता अपने बच्चों के पते-ठिकाने के बारे में अपनी चिंताओं को कम करने के लिए इसके प्रयोग को प्रोत्साहित कर रहे हैं?*
- *युवा लोग सेलफ़ोनों की आवश्यकता को इतना अधिक क्यों महसूस कर रहे हैं? विभिन्न कारणों का पता लगाने का प्रयास करें।*
- *2020–21 में कोविड-19 महामारी के कारण लाखों बच्चों ने सेल फ़ोन का उपयोग करना शुरू किया और ऑनलाइन कक्षाओं में भाग लिया। आप इस परिवर्तन को सामाजिक रूप से कैसे देखते हैं?*

भूमंडलीकरण और श्रम

भूमंडलीकरण और एक नया अंतर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन

एक नया अंतर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन उभर आया है जिसमें तीसरी दुनिया के शहरों में अधिकाधिक नियमित निर्माण उत्पादन और रोज़गार किया जाता है। आप अध्याय-4 में बाह्य स्रोतों के उपयोग के बारे में और अध्याय-5 में संविदा के बारे में पढ़ चुके हैं। यहाँ हम इस संबंध में स्थिति स्पष्ट करने के लिए 'नाइके' कंपनी का उदारहण प्रस्तुत कर रहे हैं।

नाइके कंपनी 1960 के दशक में अपनी स्थापना के समय से ही बहुत तेज़ी से विकसित हुई। नाइके जूतों का आयात करने वाली कंपनी के रूप में विकसित हुई। इसके संस्थापक फिल नाइट जापान से जूते आयात करते थे और उन्हें खेल संबंधी आयोजनों में बेचते थे। कंपनी एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के रूप में विकसित होकर पारराष्ट्रीय निगम बन गई। इसका मुख्यालय बेवरटन में, पोर्टलैंड, ओरेगॉन के बाहर स्थित है। केवल दो अमेरिकी कारखाने ही नाइके के लिए जूते बनाया करते थे। फिर 1960 के दशक में नाइके के जूते जापान

में बनाए जाने लगे। जब वहाँ लागत बढ़ी तो उत्पादन कार्य 1970 के दशक के मध्य भाग में दक्षिण कोरिया को स्थानांतरित कर दिया गया। फिर जब दक्षिण कोरिया में मज़दूरी की लागत बढ़ी तो 1980 के दशक में उत्पादन को थाइलैंड और इंडोनेशिया तक फैला दिया गया। तदुपरांत 1990 के दशक से हम भारत में नाइके के जूतों का उत्पादन कर रहे हैं। किंतु यदि और कहीं मज़दूरी अधिक सस्ती होगी तो उत्पादन केंद्र वहाँ खोल दिए जाएँगे। इस संपूर्ण प्रक्रिया से श्रमिक जन अत्यंत कमज़ोर और असुरक्षित हो जाते हैं। श्रम का यह लचीलापन अक्सर उत्पादकों के पक्ष में ही काम करता है। एक केंद्रीकृत स्थान पर विशाल पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन फोर्डवाद (फोर्डिज्म) की बजाय हम अलग-अलग स्थानों पर उत्पादन की लचीली प्रणाली फोर्डवादोत्तर (पोस्ट-फोर्डिज्म) की ओर बढ़ चुके हैं।

बॉक्स 6.4

प्रत्यक्ष रूप में तो जनरल मोटर्स नामक कंपनी पोंटियाक ली मैन्स जैसी अमेरिकी कार बनाती है। इसकी शोरूम कीमत 20,000 डॉलर है जिसमें से सिर्फ 7,600 डॉलर ही अमेरिकनों (यानी डेट्राय के कार्मिकों और प्रबंधकों, न्यूयार्क के वकीलों और बैंकरों, वाशिंगटन में रहने वाले समर्थकों एवं प्रचारकों और देशभर में जनरल मोटर्स के शेयरधारियों) के पास जाते हैं।

शेष में से:

- *48 प्रतिशत हिस्सा दक्षिण कोरिया को मज़दूरी और कार के हिस्सों को जोड़ने के लिए,*
- *28 प्रतिशत हिस्सा जापान को इलेक्ट्रॉनिक्स और एंजिन जैसे हिस्सों के लिए,*
- *12 प्रतिशत जर्मनी को शैली और डिज़ाइन इंजीनियरी के लिए*
- *7 प्रतिशत ताईवान और सिंगापुर को छोटे कल-पुर्जों के लिए*
- *4 प्रतिशत यूनाइटेड किंगडम को विपणन के लिए, और लगभग*
- *1 प्रतिशत बारबोडॉस या आयरलैंड को आँकड़े तैयार करने के लिए*

(रीच 1991)

भूमंडलीकरण और रोज़गार

भूमंडलीकरण और श्रम के बारे में एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा है रोज़गार और भूमंडलीकरण के बीच के संबंधों का। यहाँ भी हमने भूमंडलीकरण का असमान प्रभाव देखा है। नगरीय केंद्रों के मध्यवर्गीय युवाओं के लिए, भूमंडलीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति ने रोज़गार के नए-नए अवसर खोल दिए हैं। कॉलेजों से नाम के लिए बी.एससी./बी.ए./बी. कॉम की डिग्री लेने की बजाय, कई युवा कंप्यूटर के संस्थानों से कंप्यूटर की भाषाएँ सीख रहे हैं अथवा कॉल सेंटरों में या व्यापार प्रक्रिया बाह्योपयोजन (बी.पी.ओ.) कंपनियों की नौकरियाँ ले रहे हैं, विशाल बिक्री भंडारों (शॉपिंग मॉल्स) में काम करते हैं या हाल में खोले गए विभिन्न जलपानगृहों में नौकरी करते हैं फिर भी, जैसाकि बॉक्स 6.5 में दिखाया गया है, रोज़गार की प्रवृत्तियाँ मोटे तौर पर निराशाजनक ही हैं।

© NCERT not to be republished

बॉक्स 6.5

"सबसे अधिक गरीब लोग दक्षिणी एशिया में रहते हैं। गरीबी की दर खासतौर पर भारत, नेपाल और बांग्लादेश में ऊँची है", जैसाकि "एशिया और प्रशांत क्षेत्र में श्रम एवं सामाजिक प्रवृत्तियाँ 2005" नामक अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आइ.एल.ओ.); की रिपोर्ट में कहा गया है।... इस रिपोर्ट में एशिया क्षेत्र में बढ़ते हुए 'रोज़गार अंतर' (एम्प्लॉएमैंट गैप) का स्पष्ट विश्लेषण किया गया है। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इस क्षेत्र में प्रभावशाली आर्थिक वृद्धि हुई है मगर उसके अनुसार कार्य के नए अवसर उत्पन्न नहीं हो सके हैं। वर्ष 2003 और 2004 के बीच एशिया और प्रशांत क्षेत्र में 1.6 प्रतिशत यानी 2.5 करोड़ रोजगार के अवसरों की वृद्धि हुई जबकि उनकी कुल संख्या 1.588 अरब थी जोकि 7 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर को देखते हुए थी।

जॉब ग्रोथ रिमेंस डिसएप्वांइटिंग – आइ.एल.ओ. लेबर फाइल सितंबर–अक्तूबर 2005, पृ–54.

भारत सहित एशियाई देशों में आज रोज़गार की स्थिति के बारे में मीडिया द्वारा पता करें।

भूमंडलीकरण और राजनीतिक परिवर्तन

'भूतपूर्व समाजवादी विश्व का विघटन' अनेक दृष्टियों से एक बड़ा राजनीतिक परिवर्तन था, जिसने भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को और तेज़ कर दिया; फलस्वरूप भूमंडलीकरण को सहारा देने वाली आर्थिक नीतियों के प्रति एक विशिष्ट आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो गया। इन परिवर्तनों को अक्सर नव-उदारवादी आर्थिक उपाय कहा जाता है। हम पहले यह देख चुके हैं कि भारत में उदारीकरण की नीति के अंतर्गत क्या-क्या ठोस कदम उठाए गए। मोटे तौर पर, इन नीतियों में मुक्त उद्यम संबंधी राजनीतिक दूरदर्शिता प्रतिबिंबित होती है जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि बाज़ार की शक्तियों का निर्बाध शासन कुशल एवं न्यायसंगत होगा। इसीलिए यह दूरदर्शितापूर्ण नीति के अंतर्गत राज्य की ओर से विनियमन और आर्थिक सहायता (सब्सिडी) दोनों की ही आलोचना करती है। इस अर्थ में भूमंडलीकरण की मौजूदा प्रक्रिया में राजनीतिक दूरदर्शिता उतनी ही है, जितनी कि आर्थिक दूरदर्शिता। तथापि, वर्तमान भूमंडलीकरण से भिन्न भूमंडलीकरण की भी संभावनाएँ हैं। इस प्रकार हम एक समावेशात्मक भूमंडलीकरण (इनक्लूसिव ग्लोबलाइज़ेशन) की भी संकल्पना कर सकते हैं जिसमें समाज के सभी अनुभागों का समावेश होता है।

भूमंडलीकरण के साथ एक अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाक्रम भी घटित हो रहा है, और वह है राजनीतिक सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय रचनातंत्र। इस संबंध में यूरोपीय संघ (ई.यू.), दक्षिण एशियाई राष्ट्र संघ (एशियान) और दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग सम्मेलन (सार्क)— ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो क्षेत्रीय संघों की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सरकारी संगठनों और अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों का उदय भी एक अन्य राजनीतिक आयाम प्रस्तुत करता है। अंतःसरकारी संगठन एक ऐसा निकाय होता है जो सहभागी सरकारों द्वारा स्थापित किया जाता है और जिसे एक विशिष्ट पारराष्ट्रीय कार्यक्षेत्र पर, नज़र रखने या उसे विनियमित करने की ज़िम्मेदारी सौंपी जाती है। उदाहरणार्थ, विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) को व्यापार प्रथाओं पर लागू होने वाले नियमों के संबंध में अधिकाधिक भूमिका सौंपी जा रही है।

जैसाकि इनके नाम से ही स्पष्ट है, अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन अंतःसरकारी संगठनों से इस रूप में भिन्न हैं कि वे सरकारी संस्थाओं से संबद्ध नहीं होते बल्कि स्वयं स्वतंत्र संगठन होते हैं जो नीतिगत निर्णय लेते हैं और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर विचार करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों में से कुछ सबसे प्रसिद्ध

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

संगठन हैं— ग्रीनपीस (अध्याय 8 देखें), दि रेडक्रॉस, ऐम्नेस्टी इंटरनेशनल तथा मेडीसिंस सैन्स फ्रंटियरिस डाक्टर्स विदाउट बोर्डस)। इनके बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करें।

भूमंडलीकरण और संस्कृति

भूमंडलीकरण संस्कृति को कई प्रकार से प्रभावित करता है। हम पहले देख चुके हैं कि युगों से भारत सांस्कृतिक प्रभावों के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाए हुए है और इसी के फलस्वरूप वह सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध होता रहा है। पिछले दशक में कई बड़े-बड़े सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं जिनसे यह डर पैदा हो गया है कि कहीं हमारी स्थानीय संस्कृतियाँ पीछे न रह जाएँ। हमने पहले देखा था कि हमारी सांस्कृतिक परंपरा 'कूपमंडूक' यानी जीवनभर कुएँ के भीतर रहने वाले उस मेंढ़क की स्थिति से सावधान रहने की शिक्षा देती रही है जो कुएँ से बाहर की दुनिया के बारे में कुछ नहीं जानता और हर बाहरी वस्तु के प्रति शंकालु बना रहता है। वह किसी से बात नहीं करता और किसी से भी किसी विषय पर तर्क-वितर्क नहीं करता। वह तो बस बाहरी दुनिया पर केवल संदेह करना ही जानता है। सौभाग्य से हम आज भी अपनी परंपरागत खुली अभिवृत्ति अपनाए हुए हैं। इसीलिए, हमारे समाज में राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर ही नहीं बल्कि कपड़ों, शैलियों, संगीत, फ़िल्म, भाषा, हाव-भाव आदि के बारे में भी गरमागरम बहस होती है। जैसाकि हम आपको अध्याय-1 व 2 में बता चुके हैं, 19वीं सदी के सुधारक और प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेता भी संस्कृति तथा परंपरा पर विचार-विमर्श किया करते थे। मुद्दे आज भी कुछ दृष्टियों में वैसे ही हैं और कुछ अन्य दृष्टियों में भिन्न भी हैं। शायद अंतर यही है कि अब परिवर्तन की व्यापकता और गहनता भिन्न है।

सजातीयकरण बनाम संस्कृति का भूस्थानीकरण (ग्लोकलाइजेशन)

मुख्य रूप से यह दावा किया जाता है कि सभी संस्कृतियाँ एक समान यानी सजातीय (होमोजिनस) हो जाएँगी। कुछ अन्य का यह मत है कि संस्कृति के भूस्थानीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। भूस्थानीकरण का अर्थ है, भूमंडलीय के साथ स्थानीय का मिश्रण। यह पूर्णतः स्वतः प्रवर्तित नहीं होता और न ही भूमंडलीकरण के वाणिज्यिक हितों से इसका पूरी तरह संबंध-विच्छेद किया जा सकता है।

यह एक ऐसी रणनीति है जो अक्सर विदेशी फर्मों द्वारा अपना बाज़ार बढ़ाने के लिए स्थानीय परंपराओं के साथ व्यवहार में लाई जाती है। भारत में, हम यह देखते हैं कि स्टार, एम.टी.वी., चैनल वी और कार्टून नेटवर्क जैसे सभी विदेशी टेलीविजन चैनल भारतीय भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि मैक्डॉनाल्डस भी भारत में अपने निरामिष और चिकन उत्पाद ही बेचता है, गोमांस के उत्पाद नहीं, जो विदेशों में बहुत लोकप्रिय हैं। नवरात्रि पर्व पर तो मैक्डॉनाल्डस विशुद्ध निरामिष हो जाता है। संगीत के क्षेत्र में, 'भाँगड़ा पॉप', 'इंडिपॉप', 'फ़्यूजन म्यूजिक', यहाँ तक कि रीमिक्स गीतों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखा जा सकता है।

क्रियाकलाप 6.6

- *भूस्थानीकरण के कुछ अन्य उदाहरण दें और चर्चा करें।*
- *क्या आपने बॉलीवुड द्वारा तैयार की गई फ़िल्मों में कोई परिवर्तन देखा है? एक समय था जब कहानियाँ तो स्थानीय रहती थीं पर उनमें विदेशों में खींचे दृश्य होते थे। फिर कुछ ऐसी फ़िल्में भी आईं जिनकी कहानी की पृष्ठभूमि विदेशी होती थी और जिनमें अभिनेता या पात्र भारत लौट कर आते थे। अब ऐसी भी कहानियाँ होती हैं, जो पूर्णरूप से भारत से बाहर की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं, चर्चा करें।*

हम पहले ही देख चुके हैं कि भारतीय संस्कृति की शक्ति उसके खुले उपागम में निहित है। हमने यह भी देखा है कि आधुनिक युग में हमारे समाज सुधारक और राष्ट्रवादी नेता अपनी परंपरा तथा संस्कृति पर सक्रिय रूप से वाद-विवाद करते रहे हैं। संस्कृति को किसी ऐसे

Reprint 2025-26

अपरिवर्तनशील एवं स्थिर सत्व के रूप में नहीं देखा जा सकता जो किसी सामाजिक परिवर्तन के कारण या तो ढह जाएगी अथवा ज्यों-की-त्यों यानी अपरिवर्तित बनी रहेगी। आज भी इस बात की अधिक संभावना है कि भूमंडलीकरण के फलस्वरूप कुछ नयी स्थानीय परंपराएँ ही नहीं बल्कि भूमंडलीय परंपराएँ भी निर्मित होंगी।

जेंडर और संस्कृति

सांस्कृतिक पहचान के एक निश्चित परंपरागत स्वरूप का समर्थन करने वाले लोग अक्सर महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहारों और अलोकतांत्रिक प्रथाओं को सांस्कृतिक पहचान का नाम देकर बचाव करते हैं। इस प्रकार की अनेक प्रथाएँ प्रचलित रही हैं; जैसे सती प्रथा से लेकर महिलाओं की शिक्षा तथा उन्हें सार्वजनिक कार्यकलापों से दूर रखना महिलाओं के प्रति अन्यायपूर्ण प्रथाओं का समर्थन करने के लिए भूमंडलीकरण का हौवा भी खड़ा किया जा सकता है। सौभाग्य से भारत में हम एक लोकतांत्रिक परंपरा और संस्कृति को अक्षुण्ण रखने एवं विकसित करने में सफल रहे हैं जिससे कि हम संस्कृति को अधिक समावेशात्मक एवं लोकतांत्रिक रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

उपभोग की संस्कृति

अक्सर जब हम संस्कृति की बात करते हैं तो हम पहनावे, संगीत, नृत्य, खाद्य आदि की चर्चा करते हैं। किंतु, जैसाकि हम जानते हैं, संस्कृति इन बातों तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसका संबंध संपूर्ण जीवन-शैली से है। संस्कृति के दो रूप हैं जिनका उल्लेख भूमंडलीकरण विषयक किसी भी अध्याय में होना चाहिए। वे हैं— उपभोग की संस्कृति और निगमित संस्कृति। सांस्कृतिक उपभोग की उस निर्णायक भूमिका पर विचार कीजिए जो भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में, विशेष रूप से नगरों को एक रूप प्रदान करने की प्रक्रिया में, अदा की जा रही है। 1970 के दशक तक उत्पादन उद्योग नगरों की वृद्धि में प्रमुख भूमिका निभाते रहे हैं। लेकिन अब, सांस्कृतिक उपभोग (कला, खाद्य, फैशन, संगीत, पर्यटन) अधिकतर नगरों की वृद्धि को एक आकार प्रदान करता है। यह तथ्य भारत के सभी बड़े शहरों में विशाल बिक्री भंडारों (शॉपिंग मॉल्स), बहुविध सिनेमाघरों, मनोरंजन उद्यानों और जलक्रीड़ा स्थलों के विकास में आई तेज़ी से स्पष्ट होता है। अधिक उल्लेखनीय तथ्य तो यह है कि विज्ञापन और सामान्य रूप से जनसंपर्क के सभी माध्यम एक ऐसी संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं जिसमें पैसा खर्च करना ही महत्वपूर्ण माना जाता है। पैसे को सँभालकर रखना अब कोई गुण नहीं रहा। खरीददारी को समय बिताने की गतिविधि के रूप में सक्रियता से प्रोत्साहित किया जाता है।

क्रियाकलाप 6.7

- *परंपरागत दुकान और नए स्थापित हुए बहुविभागीय भंडारों की परस्पर तुलना करें।*
- *मॉल और परंपरागत बाज़ार की परस्पर तुलना करें। अब बेची जाने वाली वस्तुएँ ही नहीं बदल गईं बल्कि खरीददारी का अर्थ भी बदल गया है, कैसे? चर्चा करें।*
- *खाद्य-स्थलों में किस प्रकार के नए व्यंजन (खाद्य पदार्थ) परोसे जाते हैं, चर्चा करें।*
- *नए फास्टफूड रेस्टोरेंटों के बारे में पता लगाएँ जो अपनी मेन्यू और कार्यशैली में भूमंडलीय हैं।*

'ब्रह्मांड सुंदरी' (मिस यूनिवर्स) और 'विश्वसुंदरी' (मिस वर्ल्ड) जैसी फैशन प्रतियोगिताओं के समारोहों की उत्तरोत्तर सफलताओं के कारण फैशन, सौंदर्य प्रसाधन एवं स्वास्थ्य उत्पादों से संबंधित उद्योगों की अत्यधिक वृद्धि हुई है। नौजवान लड़कियाँ ऐश्वर्या राय और सुष्मिता सेन बनने का सपना देख रही हैं। 'कौन बनेगा करोड़पति' जैसे लोकप्रिय प्रतिस्पर्धात्मक कार्यक्रमों से वास्तव में ऐसा प्रतीत होने लगा है कि कुछ ही खेलों में हमारा भाग्य बदल सकता है।

Reprint 2025-26

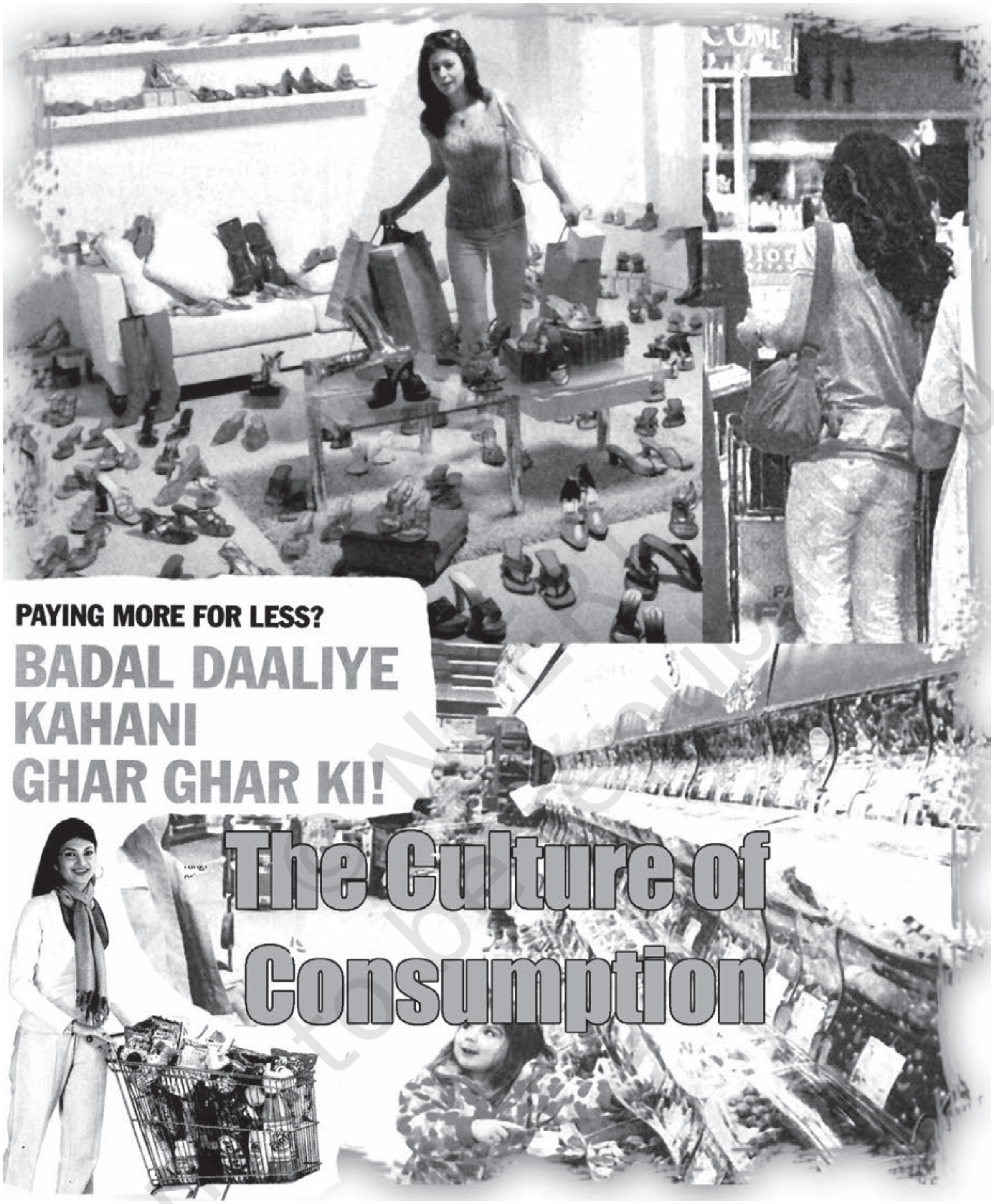

निगम संस्कृति

निगम संस्कृति प्रबंधन सिद्धांत की एक ऐसी शाखा है जो किसी फर्म के सभी सदस्यों को साथ लेकर एक अद्भुत संगठनात्मक संस्कृति के निर्माण के माध्यम से उत्पादकता और प्रतियोगितात्मकता को बढ़ावा देने

का प्रयत्न करती है। ऐसा सोचा जाता है कि एक गतिशील निगम संस्कृति – जिसमें कंपनी के कार्यक्रम, रीतियाँ एवं परंपराएँ शामिल होती हैं, कर्मचारियों में वफ़ादारी की भावना को बढ़ाती है और समूह एकता को प्रोत्साहन देती है। वह यह भी बताती है कि काम करने का तरीका क्या है और उत्पादों को कैसे बढ़ावा दिया जाए और उनको कैसे पैक किया जाए।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रसार और सूचना प्रौद्योगिकी में आई क्रांति के फलस्वरूप अवसरों की उपलब्धता में वृद्धि हो जाने से भारत के महानगरों में ऐसे उर्ध्वगामी व्यावसायिकों (प्रोफेशनलों) का एक वर्ग बन गया है जो सॉफ़्टवेयर कंपनियों, बहुराष्ट्रीय बैंकों, चार्टर लेखाकार फर्मों, स्टॉक बाज़ारों, यात्रा, फैशन डिज़ाइन, मनोरंजन, मीडिया और अन्य सहबद्ध क्षेत्रों में कार्यरत हैं। इन महत्त्वाकांक्षी व्यावसायिकों की कार्य अनुसूची अत्यंत तनावपूर्ण होती है, उनके वेतन-भत्ते बहुत ज़्यादा होते हैं और बाज़ार में तेज़ी से बढ़ते उपभोक्ता उद्योगों के उत्पादों के वे ही प्रमुख ग्राहक होते हैं।

अनेक स्वदेशी शिल्प, साहित्यिक परंपराओं और ज्ञान व्यवस्थाओं को खतरा

सांस्कृतिक रूपों एवं भूमंडलीकरण के बीच एक अन्य संबंध अनेक स्वदेशी शिल्पों एवं साहित्यिक परंपराओं और ज्ञान व्यवस्थाओं की दशा से दृष्टिगोचर होता है। तथापि यह याद रखना भी महत्वपूर्ण है कि आधुनिक विकास ने भूमंडलीकरण की अवस्था से पहले भी परंपरागत सांस्कृतिक रूपों और उन पर आधारित व्यवसायों में अपनी घुसपैठ बना ली थी। लेकिन अब परिवर्तन का अनुपात और उसकी गहनता अत्यधिक तीव्र है। उदाहरण के लिए, लगभग 30 थिएटर समूह, जो मुंबई महानगर के परेल और गिरगाँव की कपड़ा मिलों के इलाके के आसपास सक्रिय थे, अब निष्क्रिय एवं समाप्त हो चुके हैं क्योंकि इन इलाकों के मिल मज़दूरों में से अधिकांश लोगों की नौकरी खत्म हो चुकी है। कुछ वर्ष पहले, आंध्र प्रदेश के करीमनगर ज़िले के सरसिला गाँव और उसी राज्य के मेढ़क ज़िले के डुबक्का गाँव के पारंपरिक बुनकरों द्वारा बहुत बड़ी संख्या में आत्महत्या किए जाने की खबरें मिली थीं। इसका कारण यह था कि इन बुनकरों के पास बदलती हुई उपभोक्ता रुचियों के अनुरूप अपने आप को ढालने और विद्युतकर्घों से मुकाबला करने के लिए प्रौद्योगिकी में निवेश करने के कोई साधन नहीं थे।

इसी प्रकार, परंपरागत ज्ञान व्यवस्थाओं के विभिन्न रूप जो विशेष रूप से आयुर्विज्ञान और कृषि के क्षेत्रों से संबंधित थे, सुरक्षित रखे गए हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपे जाते रहे हैं। तुलसी, रूद्राक्ष, हल्दी और बासमती चावल के प्रयोग को पेटेंट कराने के लिए हाल में कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा जो प्रयत्न किए गए, उनसे स्वदेशी ज्ञान व्यवस्थाओं के आधार को बचाने की आवश्यकता प्रकाश में आई है।

बॉक्स 6.6

हमारे डोमबारी समुदाय की हालत बहुत खराब है। टेलीविजन और रेडियो ने हमारी रोजी-रोटी छीन ली है। हम कलाबाजी तो दिखाते हैं, मगर सर्कस और टेलीविजन के कारण, जो अब दूरदराज के गाँवों और बस्तियों तक पहुँच गए हैं, हमारे करतब को कोई देखना पसंद नहीं करता। हम चाहें कितनी भी मेहनत कर लें, हमें अल्पवृत्ति भी नहीं मिलती। लोग हमारा खेल-तमाशा देखते तो हैं पर केवल मनोरंजन के लिए, वे हमें उसके बदले में कोई पैसा नहीं देते। वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि हम भूखे हैं। इसलिए हमारा धंधा चौपट हो रहा है।

not to be republished © NCERT

भूमंडलीकरण ने जिन विभिन्न और जटिल रूपों में हमारे जीवन को प्रभावित किया है उसे संक्षेप में प्रस्तुत करना आसान नहीं है। कोई ऐसा प्रयास भी नहीं करेगा। इसलिए यह काम आप पर ही छोड़ा जाता है। हमने यहाँ इस अध्याय में उद्योग और कृषि पर भूमंडलीकरण के प्रभाव के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं की है। आपको भारत में भूमंडलीकरण और सामाजिक परिवर्तन की कहानी जानने के लिए अध्याय 4 और 5 पर निर्भर होना होगा। इस कहानी को दोहराते समय आप अपनी समाजशास्त्रीय कल्पनाशक्ति का भी प्रयोग करें।

प्रश्नावली

1. अपनी रुचि का कोई भी विषय चुनें और यह चर्चा करें कि भूमंडलीकरण ने उसे किस प्रकार प्रभावित किया है। आप सिनेमा, कार्य, विवाह अथवा कोई भी अन्य विषय चुन सकते हैं।
2. एक भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था के विशिष्ट लक्षण क्या हैं? चर्चा करें।
3. संस्कृति पर भूमंडलीकरण के प्रभाव की संक्षेप में चर्चा करें।
4. भूस्थानीकरण क्या है? क्या यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अपनाई गई बाज़ार संबंधी रणनीति है अथवा वास्तव में कोई सांस्कृतिक संश्लेषण हो रहा है, चर्चा करें।

संदर्भ ग्रंथ

लीडबीटर, चार्ल्स. 1999. लिविंग ऑन थिन एयरः द न्यू इकोनॉमी, वाइकिंग, लंदन

मोरे, विमल दादासाहेब. 1970. टीन दागदागची चुल इन शर्मिला रेगे राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेंडर : नेरे ग दलित वीमन्ज टेस्टिमोनिज़, ज़ुबान/काली, 2006, दिल्ली

रीच, आर. 1991. 'ब्रेनपावर; द ब्रिजेज़, एंड द नॉमैडिक कॉरपोरेशन', न्यू परस्पेक्टिव क्वार्टरली, 8:67–71

अमर्त्य सेन. 2004. द आरग्यूमेन्टेटिव इंडियन : राइटिंग्स ऑन इंडियन हिस्ट्री, कल्चर एंड आइडेनटिटि, ऐलन लेन, पेंगुइन ग्रुप, लंदन

ससेन ससकिया. 1991. द ग्लोबल सिटि : न्यूयॉर्क, लंदन, टोकियो, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन

सिंघल, अरविंद एंड ई.एम. रोजर्स. 2001. इंडियाज़ कम्युनिकेशन रिवोल्यूशन, सेज, नयी दिल्ली

Reprint 2025-26

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished

7 जनसंपर्क साधन और जनसंचार

12110CH07

'मास मीडिया' यानी जनसंपर्क के साधन अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे– टेलीविज़न, समाचारपत्र, फ़िल्में, पत्रिकाएँ, रेडियो, विज्ञापन, विडियो खेल और सीडी आदि। उन्हें मास मीडिया इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे एक साथ बहुत बड़ी संख्या में दर्शकों, श्रोताओं एवं पाठकों तक पहुँचते हैं। उन्हें कभी-कभी जनसंचार (मास कम्युनिकेशन) के साधन भी कहा जाता है। आपकी पीढ़ी के बहुत से लोगों के लिए जनसंपर्क के किसी माध्यम से विहीन दुनिया की कल्पना करना भी संभवतः कठिन होगा।

क्रियाकलाप 7.1

- *एक ऐसी दुनिया की कल्पना करें जहाँ कोई टेलीविज़न, सिनेमा, समाचारपत्र, पत्रिका, इंटरनेट, टेलीफ़ोन या मोबाइल फ़ोन कुछ भी न हों।*
- *आप अपने किसी एक दिन के दैनिक क्रियाकलापों को लिखें। उन अवसरों का पता लगाएँ जब आपने जनसंपर्क या जनसंचार के किसी-न-किसी साधन का प्रयोग किया हो।*
- *अपनी से पुरानी पीढ़ी के व्यक्तियों से पता लगाएँ कि संचार के इन साधनों के अभाव में जीवन कैसा था। आप उस जीवन की तुलना अपने जीवन से करें।*
- *संचार प्रौद्योगिकियों का विकास होने से कार्य करने और खाली समय को बिताने के तरीकों में किस प्रकार का बदलाव आया है? चर्चा करें।*

मास मीडिया हमारे दैनिक जीवन का एक अंग है। देश भर के अनेक मध्यवर्गीय परिवारों में लोग प्रातः बिस्तर से उठते ही सबसे पहले रेडियो या टेलीविज़न चालू करते हैं अथवा प्रातःकालीन समाचारपत्र देखते हैं। उन्हीं परिवारों के बच्चे सर्वप्रथम अपने मोबाइल फ़ोन पर यह देखने के लिए नज़र डालते हैं कि कोई 'मिस्ड कॉल' तो नहीं आई है। अनेक नगरीय क्षेत्रों में नलसाज, बिजली मिस्त्री, बढ़ई, रंगसाज़ और अन्य विभिन्न प्रकार की सेवाएँ देने वाले लोग अपना एक मोबाइल फ़ोन रखते हैं जिस पर उनसे आसानी से संपर्क किया जा सकता है। अब तो नगरों में अधिकतर दुकानें एक छोटा टेलीविज़न सेट भी रखने लगी हैं। आने वाले ग्राहक दुकानदार से टेलीविज़न पर दिखाई जा रही फ़िल्म या क्रिकेट मैच के बारे में छिटपुट बातचीत भी कर लेते हैं। विदेशों में रहने वाले भारतीय लोग टेलीफ़ोन और इंटरनेट की सहायता से देश में रहने वाले अपने मित्रों एवं परिवारों के साथ बराबर संपर्क बनाए रखते हैं। नगरों में रहने वाले प्रवासी कामगार वर्ग के लोग भी गाँवों में रहने वाले अपने

परिवारों से दूरभाष द्वारा नियमित रूप से संपर्क बनाए रखते हैं। क्या आपने मोबाइल फ़ोनों के बारे में विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों को देखा है? क्या आपने यह जानने की कोशिश की है कि ये मोबाइल फ़ोन विविध प्रकार के सामाजिक समूहों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं? क्या आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि सी.बी.एस.ई. बोर्ड (केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड) के परीक्षा परिणाम इंटरनेट और मोबाइल फ़ोन दोनों पर उपलब्ध होते हैं। सच तो यह है कि इनकी पुस्तकें भी इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।

The fastest-growing cell phone market

Anand Parthasarathy

BANGALORE: Two global surveys reveal lifestyle of world's most 'mobile' population. Indians love SMS, but ignore pricey services like phone Internet. They spend an average of Rs 5000 on a mobile phone handset -- but forgot over 30,000 phones in the last six months, in Mumbai taxis alone We buy six million mobile phones every month -- making us one of the world's fastest- growing cell phone markets -- 176 million-strong as of last month.

The average amount spent on a handset, which is around Rs. 5,000, represents nearly half a month's salary for most of us in India, while for Britishers, it amounts to just 5%.

Our favourite brands are Nokia and Samsung in that order and this is same as the global preference. But Panasonic is number three here, with Sony Ericsson and Motorola, the next two in the desi popularity stakes, while internationally Motorola is number three followed by Sony Ericsson and LG.

We love short messaging services, indeed 100 per cent

INDIANS LOVE IT: *Mobile phones are popular but costlier services like Net phone are shunned. Women are champion text messagers.* – PHOTO: HANDOUT

with these feature on our among the least concerned

teresting findings in the India section of a recent global survey of mobile phone trends, commissioned by Stockholm, Sweden- based SmartTrust, a leading provider of mobile device management solutions. The survey conducted by Taylor Nelson Sofres , covered 6,700 mobile consumers in 15 countries, 404 of them in India.

The full report is available for corporate users who register at the www.smarttrust-.com for a free download.

In another survey , mobile security player Pointsec found that Mumbaites are second only to Londoners in forgetfullness – when it comes to their mobile phones. In the last six months they forgot 32,970 phones in Mumbai taxis – this is just the numbers reported as lost. Amnesiac London-based phone owners topped this number - with 54872 phones lost. Sydney, Stockholm, San Francisco, Washington, Munich, Helsinki, Berlin and Oslo all fared better.

But when it came to lost pocket PCs and laptops, India is nowhere in the Top Ten.

London is the mother city

तेज़ी से बढ़ता हुआ सैल फ़ोन बाज़ार

यह तो स्पष्ट है कि हाल के वर्षों में सभी प्रकार के जनसंचार के साधनों का चमत्कारिक रूप से विस्तार हुआ है। समाजशास्त्र के छात्र होने के नाते, हमें इस वृद्धि के अनेक पहलुओं के बारे में जानने में रुचि है। सर्वप्रथम, जबकि हम वर्तमान संचार क्रांति की विशिष्टता को पहचानते हैं तो हमें कुछ पीछे जाकर विश्व में और भारत में आधुनिक जनसंपर्क के साधनों में हुई वृद्धि की रूपरेखा को प्रस्तुत करना भी आवश्यक है। इससे हमें यह समझने में सहायता मिलेगी कि किसी अन्य सामाजिक संस्था की तरह ही, मास मीडिया की संरचना और विषय-वस्तु का स्वरूप भी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में आए परिवर्तनों से निर्धारित हुआ है। उदाहरण के लिए, हम यह देखते हैं कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, प्रारंभिक दशकों में प्रमुख रूप से राज्य (सरकार) और विकास के बारे में उसकी सोच ने मीडिया को कितना अधिक प्रभावित किया है और 1990 के बाद के भूमंडलीकरण के दौर में बाज़ार को कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। दूसरा, हमें यह समझने में अधिक सहायता मिलती है कि समाज के साथ जनसंपर्क और संचार के साधनों के संबंध कितने द्वंद्वात्मक हैं। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मास मीडिया की प्रकृति और भूमि उस समाज द्वारा प्रभावित होती है जिसमें यह स्थित होता है। साथ ही, समाज पर मास मीडिया के दूरगामी प्रभाव पर जितना बल दिया जाए थोड़ा होगा। हम इस द्वंद्वात्मक संबंध को उस समय देखेंगे और समझेंगे जब हम इस अध्याय में (क) औपनिवेशिक भारत में मीडिया की भूमिका, (ख) स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद प्रारंभिक दशकों में, और (ग) अंततः भूमंडलीकरण के संदर्भ में। तीसरा, जनसंचार, संचार के अन्य साधनों से भिन्न होता है क्योंकि इसे विशाल पूँजी उत्पादन और औपचारिक संरचनात्मक संगठन और प्रबंधन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, आप देखेंगे कि मास मीडिया की संरचना और प्रकार्य के लिए राज्य और/अथवा बाज़ार की प्रमुख भूमिका होती है। मास मीडिया ऐसे बहुत बड़े संगठनों के माध्यम से कार्य करता है जिनमें भारी पूँजी लगी होती है और काफ़ी बड़ी संख्या में

कर्मचारी काम करते हैं। चौथा, इसका महत्वपूर्ण अंतर यह है कि लोगों के विभिन्न वर्ग के लोग मास मीडिया का आसानी से प्रयोग कर सकते हैं। आपको याद होगा कि इसी तथ्य को पिछले अध्याय में डिजिटल अंतर (डिज़िटल डिवाइड) की संकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

7.1 आधुनिक मास मीडिया का प्रारंभ

पहली आधुनिक मास मीडिया की संस्था का प्रारंभ प्रिंटिंग प्रेस यानी मुद्रणालय (छापाखाना) के विकास के साथ हुआ था। हालाँकि बहुत से समाजों में मुद्रणकला का इतिहास कई सदियों पहले शुरू हो गया था, लेकिन आधुनिक प्रौद्योगिकियों का प्रयोग करते हुए पुस्तकें छापने का काम सर्वप्रथम यूरोप में शुरू किया गया। यह तकनीक सर्वप्रथम जोहान गुटनबर्ग द्वारा 1440 में विकसित की गई थी। प्रारंभ में छपाई का काम धार्मिक पुस्तकों तक ही सीमित था।

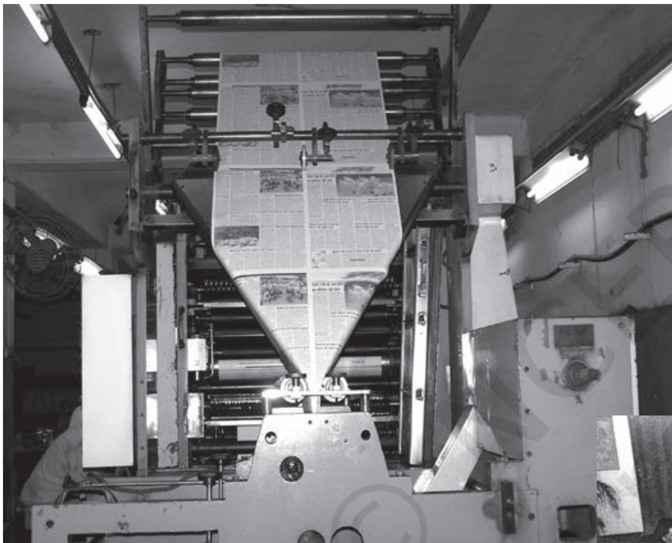

प्रिंटिंग प्रेस का एक दृश्य

औद्योगिक क्रांति के साथ ही, मुद्रण उद्योग का भी विकास हुआ। कुलीन मुद्रणालय के प्रथम उत्पाद साक्षर अभिजात लोगों तक ही सीमित थे। तत्पश्चात् 19वीं सदी के मध्य भाग में आकर जब प्रौद्योगिकियों, परिवहन और साक्षरता में और आगे विकास हुआ, तभी समाचारपत्र जन-जन तक पहुँचने लगे। देश के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को एक जैसे समाचार पढ़ने या सुनने को मिलने लगे। ऐसा कहा जाता है कि इसी के फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग परस्पर जुड़े हुए महसूस करने लगे और उनमें 'हम की भावना' विकसित हो गई। इस संबंध में, सुविख्यात विद्वान बेनेडिक्ट ऐंडरसन ने कहा कि इससे राष्ट्रवाद का विकास हुआ और जो लोग एक-दूसरे के अस्तित्व के बारे में नहीं जानते थे, वे भी एक परिवार के सदस्य-जैसा महसूस करने लगे। इससे अपरिचित लोगों के बीच भी मैत्री भाव उत्पन्न हो गया। इस प्रकार, ऐंडरसन के कथनानुसार हम राष्ट्र को एक 'काल्पनिक समुदाय' की तरह मान सकते हैं।

21वीं सदी का दूरदर्शन समाचार कक्ष, भारत

आप याद कीजिए कि कैसे 19वीं सदी के समाज सुधारक अक्सर समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं में अनेक सामाजिक मुद्दों पर लिखते थे और वाद-विवाद किया करते थे। भारतीय राष्ट्रवाद का विकास भी

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

उपनिवेशवाद के विरुद्ध उसके संघर्ष के साथ गहराई से जुड़ा है। इसका उद्भव भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा लाए गए संस्थागत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हुआ। औपनिवेशिक सरकार के उत्पीड़क उपायों का खुलकर विरोध करने वाली राष्ट्रवादी प्रेस ने उपनिवेश-विरोधी जनमत जागृत किया और फिर उसे सही दिशा दी। परिणामस्वरूप औपनिवेशिक सरकार ने राष्ट्रवादी प्रेस पर शिकंजा कसना शुरू कर दिया और उस पर सेंसर व्यवस्था लागू कर दी। इसका एक उदाहरण इलबर्ट बिल 1883 के विरुद्ध आंदोलन है। राष्ट्रवादी आंदोलन को समर्थन देने के कारण 'केसरी' (मराठी), 'मातृभूमि' (मलयालम), 'अमृतबाज़ार पत्रिका' (अंग्रेज़ी) जैसे कई राष्ट्रवादी समाचारपत्रों को औपनिवेशिक सरकार की अप्रसन्नता सहनी पड़ी। लेकिन इसका उन पर कोई असर नहीं हुआ, उन समाचारपत्रों ने राष्ट्रवादी आंदोलन का समर्थन जारी रखा और वे औपनिवेशिक शासन को समाप्त करने की माँग करते रहे।

बॉक्स 7.1

- *हालाँकि राजा राममोहन राय से पहले भी लोगों ने कुछ समाचारपत्र प्रकाशित करने प्रारंभ कर दिए थे, परंतु राजा राममोहन राय द्वारा बंगला भाषा में 1821 में प्रकाशित 'संवाद-कौमुदी' सर्वप्रथम और फ़ारसी में 1822 में प्रकाशित 'मिरात-उल-अखबार' भारत के पहले ऐसे प्रकाशन थे जिनमें राष्ट्रवादी एवं लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता था।*
- *फरदूनजी मुर्जबान मुंबई में गुजराती प्रेस के अग्रदूत थे। उन्होंने 1822 में ही 'बॉम्बे समाचार' नामक एक दैनिक पत्र शुरू कर दिया था।*
- *ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 1858 में बंगला भाषा में 'शोम प्रकाश' नामक पत्र शुरू किया।*
- *'दि टाइम्स ऑफ़ इंडिया' का प्रकाशन मुंबई में 1861 में शुरू हुआ।*
- *'दि पायनियर' इलाहाबाद में, 1865 में।*
- *'दि मद्रास मेल' 1868 में।*
- *'दि स्टेट्समैन' कोलकाता में 1875 में।*
- *'दि सिविल एंड मिलिटरी गज़ट' लाहौर में 1876 में शुरू हुआ।*

(देसाई 1948)

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत मास मीडिया का फैलाव समाचारपत्रों और पत्रिकाओं तथा फ़िल्मों और रेडियो तक ही सीमित था। रेडियो पूर्ण रूप से राज्य यानी सरकार के स्वामित्व में था। इसलिए उस पर राष्ट्रीय विचार अभिव्यक्त नहीं किए जा सकते थे। यद्यपि समाचारपत्र एवं फ़िल्में दोनों में स्वायत्तता थी, लेकिन ब्रिटिश राज उन पर कड़ी नज़र रखता था। अंग्रेज़ी या देशी भाषाओं में समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का प्रसार बहुत व्यापक रूप से नहीं होता था क्योंकि बहुत कम लोग साक्षर थे। फिर भी उनका प्रभाव उनकी वितरण संख्या की तुलना में बहुत अधिक था क्योंकि खबरें और सूचनाएँ वाणिज्यिक तथा प्रशासनिक केंद्रों जैसे बाज़ारों तथा व्यापारिक केंद्रों और न्यायालयों तथा कस्बों में पढ़ी जाती थीं। पत्र-पत्रिकाओं (प्रिंट मीडिया) में जनमत के विभिन्न आयाम होते थे जिसमें 'स्वतंत्र भारत' के स्वरूप के बारे में विचार व्यक्त किए जाते थे। ये विभिन्न विचार भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद भी जारी रहे।

© NCERT not to be republished

7.2 स्वतंत्र भारत में मास मीडिया

दृष्टिकोण

स्वतंत्र भारत में, देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने मीडिया से 'लोकतंत्र के पहरेदार' की भूमिका निभाने के लिए कहा। मीडिया से यह आशा की गई कि वह लोगों के हृदय में आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय विकास की भावना भरे। आपने पिछले अध्यायों में पढ़ा था कि भारत में स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में देश के विकास पर कितना अधिक बल दिया गया था। विभिन्न विकास कार्यों के बारे में आम लोगों को सूचित करने का साधन मीडिया ही था। तब मीडिया को अस्पृश्यता, बाल विवाह, विधवा बहिष्कार जैसी सामाजिक कुरीतियों तथा जादू-टोना और विश्वास-चिकित्सा (फेथ हीलिंग) जैसे अंधविश्वासों के विरुद्ध लड़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता था। एक आधुनिक औद्योगिक समाज का निर्माण करने के लिए एक तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक स्वभाव को बढ़ावा देने की आवश्यकता थी। सरकार का फ़िल्म प्रभाग समाचार, फ़िल्में और वृत्तचित्र प्रस्तुत करता था। इन्हें प्रत्येक सिनेमाघर में फ़िल्म प्रारंभ करने से पहले दिखाया जाता था ताकि दर्शकों को सरकार द्वारा चलाई जा रही विकास प्रक्रिया के बारे में जानकारी मिल सके।

क्रियाकलाप 7.2

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के पहले दो दशकों में जो लोग बड़े हुए हैं, उनकी पीढ़ी में से अपने किसी परिचित व्यक्ति से उन वृत्तचित्रों के बारे में पूछें जो उन दिनों सिनेमाघर में फ़िल्म दिखाने से पहले नियमित रूप से दिखाए जाते थे। उनकी यादों को लिखें।

रेडियो

रेडियो प्रसारण जो 1920 के दशक में कोलकाता और चेन्नई में अपरिपक्व 'हैम' ब्रॉडकास्टिंग क्लबों के जरिए भारत में शुरू हुआ था, 1940 के दशक में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान एक सार्वजनिक प्रसारण प्रणाली के रूप में उस समय परिपक्व हो गया जब वह दक्षिण-पूर्व एशिया में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के लिए प्रचार का एक बड़ा साधन बना। स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय, भारत में केवल 6 रेडियो स्टेशन थे जो बड़े-बड़े शहरों में स्थित थे और प्राथमिक रूप से शहरी श्रोताओं की आवश्यकताओं को ही पूरा करते थे। 1950 तक समस्त भारत में कुल मिलाकर 5,46,200 रेडियो लाइसेंस थे।

चूँकि मीडिया नव-स्वतंत्र राष्ट्र के विकास में एक सक्रिय भागीदार माना जाता था; इसलिए आकाशवाणी (एआईआर) के कार्यक्रमों में मुख्य रूप से समाचार, सामयिक विषय और विकास पर चर्चाएँ होती थीं। नीचे दिए गए बॉक्स से तत्कालीन युग चेतना का पता चलता है।

अमिता राय (बाद में मलिक) ऑल इंडिया रेडियो, लखनऊ में डिस्क जॉकी के रूप में

1944 से कार्यरत। प्रसिद्ध संपर्क एवं चलचित्र समालोचक अमिता ने 1944 में ऑल इंडिया रेडियो में कार्यारंभ किया, उस समय इस क्षेत्र में बहुत कम महिलाएँ थीं। तत्पश्चात ये बी.बी.सी., सी.बी.सी. एवं प्रसारण की अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में चली गईं। ये महिला पत्रकारों में वरिष्ठ हैं, चलचित्र, रेडियो और दूरदर्शन समालोचनों और मुख्य समाचारपत्रों के स्तंभ लिखने के लिए जानी जाती हैं।

आकाशवाणी के समाचार प्रसारणों के अतिरिक्त, एक मनोरंजन का चैनल 'विविध भारती' भी था, जो श्रोताओं के अनुरोध पर, मुख्यतः हिंदी फ़िल्मों के गाने प्रस्तुत करता था। 1957 में आकाशवाणी ने अत्यंत लोकप्रिय चैनल 'विविध भारती' को अपने में शामिल कर लिया जो जल्दी ही प्रायोजित कार्यक्रम और विज्ञापन प्रसारित करने लगा और आकाशवाणी के लिए एक कमाऊ चैनल बन गया।

बॉक्स 7.2

आकाशवाणी के प्रसारणों से कुछ अंतर हुआ

1960 के दशक में, हरित क्रांति के अंतर्गत, देश में जब पहली बार अधिक उपज देने वाली फ़सलों की खेती की जाने लगी तो आकाशवाणी ने ही देहातों में इन फ़सलों का प्रचार करने का व्यापक अभियान अपने ज़िम्मे लिया और वह 1967 से दैनिक आधार पर 10 वर्ष से भी अधिक समय तक लगातार उनका प्रचार करती रही।

इस प्रयोजन के लिए, देश भर के अनेक आकाशवाणी केंद्रों में अधिक उपज देने वाली फ़सलों के बारे में विशेष कार्यक्रम तैयार किए जाते थे। इन कार्यक्रमों की इकाइयों में विषय के विशेषज्ञ शामिल थे, जो खेतों में जाते थे और उन किसानों से, जिन्होंने नए प्रकार के धान और गेहूँ उगाना प्रारंभ किया था, जानकारी लेकर रेडियो पर प्रसारित करते थे।

स्रोत : बी. आर. कुमार 'ए.आई.आर. ब्रॉडकास्ट्स डिड मेक ए डिफरेंस' द हिंदू, दिसंबर 31, 2006.

जब 1947 में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की थी, उस समय आकाशवाणी (ए.आई.आर.) के पास कुल मिलाकर छह रेडियो स्टेशनों की आधारभूत संरचना थी जो महानगरों में स्थित थे। देश की 35 करोड़ की जनसंख्या के लिए कुल 2,80,000 रेडियो रिसीवर सेट ही थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सरकार ने रेडियो प्रसारण के आधारभूत संरचना का विस्तार राज्यों की राजधानियों और सीमावर्ती क्षेत्रों में करने के कार्य को प्राथमिकता दी। इन वर्षों में आकाशवाणी ने भारत में रेडियो प्रसारण के लिए एक विशाल आधारभूत संरचना विकसित कर ली है। यह भारत की भौगोलिक, भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय तीन स्तरों पर अपनी सेवाएँ प्रदान कर रही है।

प्रारंभ में रेडियो के प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रिय बनने के मार्ग में एक बड़ी बाधा रेडियो सेटों की ऊँची कीमत थी। लेकिन 1960 के दशक में जब ट्रांजिस्टर क्रांति आई तो रेडियो अधिक सुलभ हो गया क्योंकि ट्रांजिस्टर (बिजली की बजाय) बैटरी से चलने लगे और उन्हें कहीं भी आसानी से ले जाया जा सकता था; साथ ही, उनकी कीमतें भी बहुत अधिक घट गईं। वर्ष 2000 में स्थिति यह थी कि लगभग 11 करोड़ परिवारों (भारत के संपूर्ण घर-परिवारों के दो-तिहाई भाग) में 24 भाषाओं और 146 बोलियों में रेडियो प्रसारण सुने

Reprint 2025-26

युद्ध, विपदाएँ और आकाशवाणी का विस्तार **बॉक्स 7.3**

यह एक रोचक तथ्य है कि युद्धों और विपदाओं के कारण आकाशवाणी के क्रियाकलापों में विस्तार हुआ है। 1962 में जब चीन के साथ युद्ध हुआ तो आकाशवाणी ने एक दैनिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए 'वार्ता' इकाई की स्थापना की। अगस्त 1971 में, जब बांग्लादेश का संकट मँडराने लगा तो समाचार सेवा प्रभाग ने 6 बजे प्रातः से मध्यरात्रि तक हर घंटे समाचार प्रसारण चालू किया। फिर 1991 के एक और संकट में राजीव गांधी की नृशंस हत्या के बाद ही आकाशवाणी ने चौबीसों घंटे बुलेटिन प्रस्तुत करने का एक और कदम उठाया।

जाते थे। उनमें से एक-तिहाई से भी अधिक घर-परिवार ग्रामीण थे। आज तक आकाशवाणी (ए.आई.आर.) 480 स्टेशनों तक पहुँच गया है और 681 ट्रांसमीटर देश के 92 प्रतिशत क्षेत्र में फैली 99 प्रतिशत आबादी को कवर करते हैं।

टेलीविज़न

भारत में ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिए काफ़ी पहले यानी 1959 में ही टेलीविज़न के कार्यक्रमों को प्रयोग के तौर पर चालू कर दिया गया था। आगे चलकर, अगस्त 1975 से जुलाई 1976 के बीच उपग्रह की सहायता से शिक्षा देने के प्रयोग (साइट) के अंतर्गत टेलीविज़न ने छह राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक दर्शकों के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रसारण किया। ये शैक्षिक प्रसारण प्रतिदिन चार घंटे तक 2400 टीवी सेटों पर सीधे प्रसारित किए जाते थे। इसी बीच, दूरदर्शन के अंतर्गत चार (दिल्ली, मुंबई, श्रीनगर और अमृतसर) में 1975 तक टेलीविज़न केंद्र स्थापित कर दिए गए। तत्पश्चात् एक ही वर्ष में कोलकाता, चेन्नई और जालंधर में तीन और केंद्र खोल दिए गए। प्रत्येक प्रसारण केंद्र के अपने बहुत से कार्यक्रम होते थे जिनमें समाचारों, बच्चों और महिलाओं के कार्यक्रम, किसानों के कार्यक्रम और मनोरंजन के कार्यक्रम सम्मिलित थे।

क्रियाकलाप 7.3

पुरानी पीढ़ी के विभिन्न लोगों से मिलें और पता लगाएँ कि 1970 और 1980 के दशकों में टेलीविज़न के कार्यक्रमों में क्या दिखाया जाता था? क्या उन लोगों में से बहुतों को टेलीविज़न उपलब्ध था?

जब कार्यक्रम वाणिज्यिक हो गए और उनमें इन कार्यक्रमों के प्रायोजकों के विज्ञापन शामिल किए जाने लगे तो लक्ष्यगत दर्शकों में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा। मनोरंजन के कार्यक्रमों में वृद्धि हो गई जो नगरीय उपभोक्ता वर्ग के लिए होते थे। दिल्ली में 1982 के एशियाई खेलों के दौरान रंगीन प्रसारण के प्रारंभ किए जाने और राष्ट्रीय नेटवर्क में तेज़ी से विस्तार हो जाने के फलस्वरूप टेलीविज़न प्रसारण का बहुत तेज़ी से वाणिज्यीकरण हुआ। वर्ष 1984–85 के दौरान टेलीविज़न, ट्रांसमीटरों की संख्या देशभर में बढ़ गई और फलस्वरूप जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात उसमें सम्मिलित हो गया। यही वह समय था जब 'हम लोग' (1984–85) और 'बुनियाद' (1986–87) जैसे सोप ओपेरा प्रसारित किए गए। यह अत्यंत लोकप्रिय सिद्ध हुआ और दूरदर्शन के लिए भारी मात्रा में विज्ञापन द्वारा राजस्व अर्जित किया जैसा कि आगे चलकर 'रामायण' (1987–88) और 'महाभारत' (1988–90) महाकाव्यों के प्रसारण से भी हुआ।

आज टेलीविजन उद्योग की स्थिति इस प्रकार है— ट्राई द्वारा जारी वार्षिक रिपोर्ट (2015–16) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चीन के बाद भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा टीवी बाज़ार है। उद्योग विभाग के अनुमान के मुताबिक, मार्च 2016 तक, मौजूदा 2841 मिलियन घरों में, 18.1 करोड़ के आसपास टेलीविजन

Reprint 2025-26

सेट हैं, जो कि केबल टीवी सेवाओं, डीटीएच सेवाओं, दूरदर्शन के एक स्थलीय टीवी नेटवर्क के अतिरिक्त आईपीटीवी सेवाओं के द्वारा सेवा प्रदान कर रहे हैं।

बॉक्स 7.4

'हम लोग': एक निर्णायक मोड़

'हम लोग' भारत का सबसे पहला लंबे समय तक चलने वाला सोप ओपेरा था... इस नए सबसे पहले पथप्रदर्शक कार्यक्रम ने मनोरंजन संदेश में शैक्षिक अंतर्वस्तु का जानबूझकर समावेश करते हुए मनोरंजन-शिक्षा की संयुक्त रणनीति का उपयोग किया था।

'हम लोग' के करीब 156 कथांश (एपिसोड) 1984–85 के दौरान 17 महीनों तक हिंदी में प्रसारित किए गए। इस टेलीविज़न कार्यक्रम ने सामाजिक विषयों जैसे लैंगिक (यानी स्त्री-पुरुष) समानता, छोटा परिवार और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया। 22 मिनट के प्रत्येक एपिसोड के अंत में, एक विख्यात भारतीय अभिनेता अशोक कुमार 30–40 सेकेंड के एक उपसंहार के रूप में उस एपिसोड से प्राप्त सबक को संक्षेप में प्रस्तुत किया करते थे। अशोक कुमार नाट्य प्रसंगों को दर्शकों के दैनिक जीवन से जोड़ते थे। उदाहरण के लिए, उन्होंने एक निंदनीय पात्र जो शराब पीता था और अपनी बीवी से मार-पीट करता था, पर टिप्पणी करते हुए दर्शकों से यह पूछा, "आपके विचार से बसेसर राम जैसे लोग इतनी ज़्यादा शराब क्यों पीते हैं और फिर बुरा बर्ताव क्यों करते हैं? क्या आप ऐसे किसी व्यक्ति को जानते हैं? शराब पीने की लत को कैसे कम किया जा सकता है? इसके लिए आप क्या कर सकते हैं।" (सिंघल एवं रोजर्स, 1989) हम लोग के दर्शकों के बारे में अध्ययन करने से दर्शक वर्ग के सदस्यों एवं उनके प्रिय 'हम लोग' के पात्रों के बीच उच्चकोटि के परासामाजिक अंतःक्रिया का पता चलता है। उदाहरण के लिए, 'हम लोग' के बहुत से दर्शकों ने यह बताया कि उन्होंने अपने निजी 'निवास कक्षों के एकांत में' अपने प्रिय पात्रों से मिलने के लिए अपनी दैनिक कार्यों में यथोचित परिवर्तन कर लिए थे। अन्य कई व्यक्तियों ने बताया कि वे टेलीविज़न सेटों के माध्यम से अपने प्रिय पात्रों से बातचीत करते थे; उदाहरण के लिए, "बड़की चिंता मत करो। जीवन बनाने का अपना सपना मत छोड़ो।"

'हम लोग' को देखने वालों की संख्या उत्तर भारत में 65 से 90 प्रतिशत और दक्षिण भारत में 20 से 40 प्रतिशत तक थी। औसतन लगभग 5 करोड़ दर्शक 'हम लोग' का प्रसारण देखते थे। इस सोप ओपेरा का एक असामान्य पक्ष यह था कि दर्शकों से इसके बारे में बड़ी संख्या में यानी 4,00,000 से भी अधिक पत्र प्राप्त हुआ करते थे, वे इतने अधिक होते थे कि उनमें से अधिकांश तो 'दूरदर्शन' के अधिकारियों द्वारा खोले भी नहीं जा सकते थे।

(सिंघल एवं रोजर्स 2001)

बॉक्स 7.5

हम लोग के विज्ञापनों ने एक नए उत्पाद मैगी 2 मिनट नूडल्स को बढ़ावा दिया जो टेलीविज़न के विज्ञापन की शक्ति और दूरदर्शन के वाणिज्यीकरण के प्रारंभ होने को दर्शाता है।

मुद्रण माध्यम (प्रिंट मीडिया)

प्रिंट मीडिया यानी मुद्रण माध्यम के प्रारंभ और सामाजिक सुधार आंदोलन के प्रसार तथा राष्ट्रवादी आंदोलन, दोनों में उसकी भूमिका के बारे में जाना जा चुका है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, प्रिंट मीडिया ने राष्ट्रनिर्माण के

Reprint 2025-26

बॉक्स 7.6

भारत में पत्रकारिता को एक अंतरात्मा से प्रेरित कार्य माना जाता था। जब स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक परिवर्तन के आंदोलनों में तेज़ी आई और एक आधुनिक रूप धारण करते हुए समाज में जीवन निर्माण के नए शैक्षिक अवसर उत्पन्न हुए तो देशभक्तिपूर्ण और सामाजिक सुधार के आदर्शवाद की भावना से प्रेरित होकर, उत्कृष्ट प्रतिभाशाली युवजन पत्रकारिता की ओर आकर्षित हुए। जैसाकि अक्सर ऐसे कामों में हुआ करता है, इस आजीविका में पैसा बहुत कम था। इस आजीविका को एक व्यवसाय के रूप में रूपांतरित होने में लंबा समय लगा। यह रूपांतरण 'हिंदू' जैसे समाचारपत्र के स्वरूप में आए परिवर्तन से प्रतिबिंबित होता है जो प्रारंभ में विशुद्ध सामाजिक एवं सार्वजनिक सेवा भाव को लेकर चला था पर आगे चलकर व्यापारी उद्यम में बदल गया, हालाँकि उसमें सामाजिक और जन सेवा का भाव भी रहा।

स्रोत : संपादकीय 'यस्टरडे, टुडे, टुमॉरो', दि हिंदू, 13 सितंबर 2003, बी. पी. संजय 2006 में उद्धृत)।

कार्य में अपनी भागीदारी निभाने की भूमिका को बराबर जारी रखा और इसके लिए वह विकासात्मक मुद्दों को उठाता रहा और बहुत बड़े भाग के लोगों की आवाज़ को बुलंद करता रहा। नीचे के बॉक्स में दिया गया संक्षिप्त उद्धरण आपको प्रिंट मीडिया की उस प्रतिबद्धता से अवगत कराएगा।

मीडिया को सबसे भयंकर चुनौती का सामना तब करना पड़ा जब 1975 में आपातकाल की घोषणा की गई और मीडिया पर सेंसर व्यवस्था लागू की गई। सौभाग्यवश वह समय समाप्त हो गया और 1977 में लोकतंत्र की पुनः स्थापना हुई। भारत अनेक समस्याओं का सामना करते हुए भी अपने स्वतंत्र मीडिया पर तर्कसंगत या समर्थनीय गर्व कर सकता है।

अध्याय के प्रारंभ में हमने बताया था कि मास मीडिया संचार के अन्य साधनों से कैसे भिन्न है क्योंकि बड़े पैमाने पर पूँजी, उत्पादन और प्रबंध संबंधी माँगों को पूरा करने के लिए एक ऐसे औपचारिक संरचनात्मक संगठन की आवश्यकता होती है। और यह भी कि किसी अन्य सामाजिक संस्था की तरह, मास मीडिया भी भिन्न-भिन्न आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के अनुसार, संरचना तथा विषयवस्तु की दृष्टि से बदलता रहता है। अब आप यह देखेंगे कि मीडिया की विषयवस्तु तथा शैली दोनों ही भिन्न-भिन्न समयों पर किस प्रकार परिवर्तित होती रहती हैं। कभी-कभी राज्य यानी सरकार को भी अधिक बड़ी भूमिका निभानी होती है, और कुछ अन्य समयों पर, बाज़ार को। भारत में यह स्थान-परिवर्तन हाल के दिनों में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप यह बहस भी छिड़ी है कि आधुनिक लोकतंत्र में मीडिया को क्या भूमिका अदा करनी चाहिए। अगले भाग में हम इन नयी बातों पर विचार करेंगे।

7.3 भूमंडलीकरण और मीडिया

हम पिछले अध्याय में भूमंडलीकरण के दूरगामी प्रभाव और संचार क्रांति के साथ उसके घनिष्ठ संबंध के बारे में पढ़ चुके हैं। मीडिया के हमेशा अनेक अंतर्राष्ट्रीय आयाम रहे हैं– जैसे कि नए समाचार एकत्र करना और प्राथमिक रूप से पाश्चात्य फ़िल्मों को दूसरे देशों में बेचना। किंतु 1970 के दशक तक, अधिकांश मीडिया कंपनियाँ राष्ट्रीय सरकारों के विनियमों का पालन करते हुए, विशिष्ट घरेलू बाज़ारों में कार्यरत रहीं। मीडिया उद्योग भी कई अलग-अलग सेक्टरों में विभाजित था, जैसे— सिनेमा, प्रिंट मीडिया, रेडियो और टेलीविज़न प्रसारण, जो एक-दूसरे से अलग रहकर स्वतंत्र रूप से अपना काम करते थे।

पिछले तीन दशकों में मीडिया उद्योग में अनेक रूपांतरण हुए हैं। राष्ट्रीय बाज़ारों का स्थान अब तरल भूमंडलीय बाज़ार ने ले लिया है और नवीन प्रौद्योगिकियों ने मीडिया के विभिन्न रूपों को जो पहले अलग-अलग थे, अब आपस में मिला दिया है।

Reprint 2025-26

बॉक्स 7.7

भूमंडलीकरण और संगीत का मामला

यह तर्क दिया जाता है कि संगीतात्मक रूप वह होता है जो किसी अन्य रूप की तुलना में अधिक कुशलतापूर्वक भूमंडलीकरण को स्वीकार कर लेता है। इसका कारण यह है कि संगीत उन लोगों तक भी आसानी से पहुँच जाता है जो लिखी या बोली जाने वाली भाषा को नहीं जानते। व्यक्तिगत स्टीरियो प्रणालियों से संगीत टेलीविज़न (जैसेकि एमटीवी) और कॉम्पेक्ट डिस्क (सीडी) तक प्रौद्योगिकी के विकास ने भूमंडलीय आधार पर संगीत के वितरण के लिए नए-नए और अधिक परिष्कृत तरीके प्रस्तुत कर दिए हैं।

मीडिया के रूपों का विलयन

यद्यपि संगीत उद्योग कुछ ही अंतर्राष्ट्रीय समूहों के हाथों में अधिकाधिक रूप से केंद्रित होता जा रहा है, पर कुछ लोगों का मानना है कि इसके लिए एक बड़ा खतरा पैदा हो गया है। क्योंकि इंटरनेट के आ जाने से संगीत को स्थानीय संगीत की दुकानों से सीडी या कैसेट के रूप में खरीदने के स्थान पर डिजिटल रूप में डाउन लोड किया जा सकता है। भूमंडलीय संगीत उद्योग में इस समय अनेक फैक्ट्रियों, वितरण शृंखलाओं, संगीत की दुकानों और बिक्री कर्मचारियों का एक जटिल नेटवर्क शामिल है। यदि इंटरनेट इन सभी तत्त्वों की आवश्यकता को समाप्त कर संगीत को सीधे डाउनलोड कर बेचना संभव कर सकेगा तो फिर संगीत उद्योग में बाकी क्या बचेगा? आप संगीत उद्योग पर मोबाइल एप्लिकेशन के प्रभाव को कैसे देखते हैं?

हमने संगीत उद्योग और उस पर पड़े भूमंडलीकरण के दूरगामी परिणामों के साथ अपनी चर्चा को प्रारंभ किया था। मास मीडिया में जो परिवर्तन हुए हैं, वे इतने अधिक हैं कि यह अध्याय संभवतः उनके बारे में आपको एक विखंडित जानकारी ही दे पाएगा। युवापीढ़ी के एक सदस्य होने के नाते आप यहाँ दी गई समझ के आधार पर और अधिकाधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अब हम यहाँ यह देखेंगे कि भूमंडलीकरण के कारण प्रिंट मीडिया (मुख्यतः समाचारपत्र और पत्रिकाएँ), इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (मुख्यतः टेलीविज़न) और रेडियो में क्या-क्या परिवर्तन आए हैं।

मुद्रण माध्यम (प्रिंट मीडिया)

हम ये देख चुके हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन के प्रसार के लिए समाचारपत्र और पत्रिकाएँ कितने महत्वपूर्ण थे। अक्सर, ऐसा विश्वास किया जाता है कि टेलीविज़न और इंटरनेट के विकास से प्रिंट मीडिया का महत्त्व कम हो जाएगा। किंतु भारत में हमने समाचारपत्रों के प्रसार को बढ़ते हुए देखा है। जैसाकि बॉक्स में बताया गया है, नयी प्रौद्योगिकियों ने समाचारपत्रों के उत्पादन और प्रसार को बढ़ावा देने में मदद की है। बड़ी संख्या में चमकदार पत्रिकाएँ भी बाज़ार में आ गई हैं।

ज़ाहिर है कि भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों की इस आश्चर्यजनक वृद्धि के कई कारण हैं। पहला, ऐसे साक्षर लोगों की संख्या में काफ़ी बढ़ोतरी हुई जो शहरों में प्रवसन कर रहे हैं। 2003 में हिंदी दैनिक 'हिंदुस्तान' के दिल्ली संस्करण की 64,000 प्रतियाँ छपती थीं जो 2005 तक बढ़ कर 4,25,000 हो गईं। इसका कारण यह था कि दिल्ली की एक करोड़ सैंतालीस लाख की जनसंख्या में से 52 प्रतिशत लोग उत्तर प्रदेश और बिहार के हिंदीभाषी क्षेत्रों से आए हैं। इनमें से 47 प्रतिशत लोगों की पृष्ठभूमि ग्रामीण है और उनमें से 60 प्रतिशत लोग 40 वर्ष से कम आयु के हैं।

Reprint 2025-26

भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों की क्रांति **बॉक्स 7.8**

पिछले कुछ दशकों में सबसे महत्वपूर्ण घटना भारतीय भाषा के समाचार पत्रों में क्रांति रही है। हिंदी, तेलुगू और कन्नड़ में उच्चतम वृद्धि दर्ज की गई। 2006 से 2016 तक हमारे देश में प्रकाशनों को प्रिंट करने का औसतन 23.7 मिलियन प्रतियों के औसत से दैनिक संचलन में वृद्धि हुई थी। वर्ष 2006 और वर्ष 2016 के मध्य समग्र वार्षिक वृद्धि दर 4.87 प्रतिशत के अनुसार दैनिक औसतन प्रतियों का संचलन 62.8 मिलियन रहा जो कि वर्ष 2016 में 39.1 था। चार मुख्य भौगोलिक क्षेत्रों में उत्तरीय क्षेत्र में अधिकतम संचलन 7.83 प्रतिशत रहा है। दक्षिण, पश्चिम और पूर्वीय क्षेत्रों में वृद्धि दर क्रमशः 4.95 प्रतिशत, 2.81 प्रतिशत और 2.63 प्रतिशत रहा है। भारत में शीर्ष दैनिक समाचार पत्रों के वर्ग में दैनिक जागरण और दैनिक भास्कर को औसतन 3.92 मिलियन और 3.81 मिलियन की बिक्री की दर से सम्मिलित किया गया है।

(स्रोत : ऑडिट ब्यूरो सरकुलेशन, 2016-17)

'ईनाडु' तेलुगु समाचारपत्र की कहानी भी भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों (प्रेस) की सफलता का एक उदारहण है। 'ईनाडु' के संस्थापक रामोजी राव ने 1974 में इस समाचारपत्र को प्रारंभ करने से पहले एक चिट-फंड सफलतापूर्वक चलाया था। 1980 के दशक के मध्य भाग में ग्रामीण क्षेत्रों में अरक-विरोधी आंदोलन जैसे उपयुक्त मुद्दों से जुड़कर यह तेलुगु समाचारपत्र देहातों में पहुँचने में सफल हो गया। अपनी इस सफलता से प्रेरित होकर उसने 1989 में 'ज़िला दैनिक' निकालने शुरू किए। ये छोटे-छोटे पत्रक होते थे जिनमें ज़िला-विशेष के सनसनीखेज समाचार और उसी ज़िले के गाँवों और छोटे कस्बों से प्राप्त वर्गीकृत विज्ञापन छापे जाते थे। 1998 तक आते-आते 'ईनाडु' आंध्र प्रदेश के दस कस्बों से प्रकाशित होने लगा था और संपूर्ण तेलुगु दैनिक पत्रों के प्रसार में इसका हिस्सा 70 प्रतिशत था।

दूसरा, छोटे कस्बों और गाँवों में पाठकों की आवश्यकताएँ शहरी पाठकों से भिन्न होती हैं और भारतीय भाषाओं के समाचारपत्र उन आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। *'मलयाली मनोरमा'* और *'ईनाडु'* जैसे भारतीय भाषाओं के प्रमुख पत्रों ने स्थानीय समाचारों की संकल्पना को एक महत्वपूर्ण रीति से ज़िला संस्करणों और आवश्यकतानुसार ब्लाक संस्करणों के माध्यम से प्रारंभ किया। एक अन्य अग्रणी तमिल समाचार पत्र *'दिन तंती'* ने हमेशा सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों ने उन्नत मुद्रण प्रौद्योगिकियों को अपनाया और परिशिष्ट, अनुपूरक अंक, साहित्यिक पुस्तिकाएँ प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। 'दैनिक भास्कर' समूह की संवृद्धि का कारण उनके द्वारा अपनाई गई अनेक विपणन संबंधी

भारत में समाचारपत्रों के प्रसार में परिवर्तन **बॉक्स 7.9**

भारतीय पाठक सर्वेक्षण, 2019 के हाल में प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार, हिंदी भाषी क्षेत्रों में पाठकों की संख्या में सर्वाधिक वृद्धि हुई है। भारतीय भाषाओं के दैनिक समाचारपत्रों के पाठकों की संख्या में पिछले वर्ष काफ़ी अधिक वृद्धि हुई और वह 2019 में 19.1 करोड़ से बढ़कर 42.5 करोड़ के आँकड़े पर पहुँच गई है। दूसरी ओर अंग्रेज़ी के दैनिक समाचारपत्रों के पाठकों की संख्या 3.1 करोड़ के आसपास अपरिवर्तित ही रही है। 2005 में हिंदी के दैनिक समाचारपत्रों में 'दैनिक जागरण' (7.4 करोड़ पाठक) और 'दैनिक भास्कर' (5.1 करोड़ पाठकों के साथ) सूची में सबसे ऊपर है, जबकि 'दि टाइम्स ऑफ़ इंडिया' और 'दि हिंदू' अंग्रेज़ी के दैनिक हैं जिसके पाठकों की संख्या 50 लाख से अधिक (74 लाख) है। 1 करोड़ पाठकों वाले कुल सर्वोत्तम 10 दैनिकों में से छह हिंदी के, एक तमिल, दो मलयालम और एक अंग्रेज़ी के हैं। (http://mruc.net)

रणनीतियाँ हैं, जिनके अंतर्गत वे उपभोक्ता संपर्क कार्यक्रम, घर-घर जाकर सर्वेक्षण और अनुसंधान जैसे कार्य करते हैं। इससे हम फिर उसी मुद्दे पर आ जाते हैं कि आधुनिक मास मीडिया के लिए एक औपचारिक संरचनात्मक संगठन का होना आवश्यक है।

Reprint 2025-26

जबकि अंग्रेज़ी भाषा के समाचारपत्र, जिन्हें अक्सर 'राष्ट्रीय दैनिक' कहा जाता है, सभी क्षेत्रों में पढ़े जाते हैं, देशी भाषाओं के समाचारपत्रों का प्रसार राज्यों तथा अंदरूनी ग्रामीण प्रदेशों में बहुत अधिक बढ़ गया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से मुकाबला करने के लिए, समाचारपत्रों ने, विशेष रूप से अंग्रेज़ी भाषा के समाचारपत्रों ने एक ओर जहाँ अपनी कीमतें घटा दी है वहीं दूसरी ओर एक साथ अनेक केंद्रों से अपने अलग-अलग संस्करण निकालने लगे हैं।

क्रियाकलाप 7.4

- *पता लगाइए कि जिस समाचारपत्र से आप भलीभाँति परिचित हैं, वह कितने स्थानों से निकाला जाता है।*
- *क्या आपने गौर किया है कि उनमें किसी नगर के हितों और घटनाओं को विशेष महत्त्व देने वाले परिशिष्ट होते हैं।*
- *क्या आपने ऐसे अनेक वाणिज्यिक परिशिष्टों को देखा है जो आजकल कई समाचारपत्रों के साथ आते हैं?*

बॉक्स 7.10

समाचारपत्र उत्पादन में परिवर्तन : प्रौद्योगिकी की भूमिका

1980 के दशक के अंतिम वर्षों और 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों से समाचारपत्र संवाददाता की डेस्क से अंतिम पेज़–प्रूफ तक पूर्णरूप से स्वचालित हो गए हैं। इस स्वचालित शृंखला के कारण कागज़ का प्रयोग पूरी तरह से समाप्त हो गया है। ऐसा दो प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के कारण संभव हुआ है— (लैन) लोकल एरिया नेटवर्क यानी स्थानीय इलाके के नेटवर्कों के माध्यम से पर्सनल कंप्यूटरों (पी.सी.) की नेटवर्क व्यवस्था और समाचार निर्माण के लिए 'न्यूज़मेकर' जैसे तथा अन्य विशिष्ट सॉफ़्टवेयरों का प्रयोग।

बदलती हुई प्रौद्योगिकी ने संवाददाता की भूमिका और कार्यों को भी बदल दिया है। एक संवाददाता के पुराने आधारभूत उपकरणों, एक आशुलिपि पुस्तिका, पेन, टाइपराइटर और पुराना सादा टेलीफ़ोन का स्थान एक छोटे डिजिटल रिकॉर्डर, एक लैपटॉप या एक पी.सी., मोबाइल या सेटेलाइट फ़ोन, 'मॉडेम' डिश और एंटिना जैसे अन्य नए उपकरणों ने ले लिया है। समाचार संग्रहण कार्य में आए इन सभी प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों ने समाचारों की गति को बढ़ा दिया है और समाचारपत्रों के प्रबंधकवर्ग को अपनी कार्यावधि को बढ़ाने में सहायता दी है। अब वे अधिक संख्या में संस्करण निकालने की योजना बनाने और पाठकों को नवीनतम समाचार देने में सक्षम हो गए हैं। देशी भाषाओं के अनेक समाचारपत्र प्रत्येक ज़िले के लिए अलग संस्करण निकालने के लिए इन नयी प्रौद्योगिकियों का प्रयोग कर रहे हैं। यद्यपि मुद्रण केंद्र तो सीमित है, पर संस्करणों की संख्या कई गुना बढ़ गई है।

मेरठ से निकलने वाले 'अमर उजाला' जैसे समाचारपत्रों की शृंखलाएँ समाचार एकत्रित करने और चित्रात्मक सामग्री में सुधार के लिए नयी प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर रही हैं। इस समाचारपत्र के पास उत्तर प्रदेश तथा उत्तरांचल राज्यों से निकलने वाले अपने सभी तेरह संस्करणों की सामग्री देने के लिए लगभग एक सौ संवाददाता और कर्मचारी और लगभग इतने ही फ़ोटोग्राफर का एक नेटवर्क है। सभी एक सौ संवाददाता समाचार भेजने के लिए 'पी.सी.' और मॉडेम उपकरणों से सुसज्जित हैं और फ़ोटोग्राफर अपने साथ डिजिटल कैमरा रखते हैं। डिजिटल चित्र 'मॉडेम' के माध्यम से केंद्रीय समाचारकक्ष को भेजे जाते हैं।

Reprint 2025-26

बॉक्स 7.11

विभिन्न आयुवर्ग के व्यक्ति समाचार पत्र में क्या पढ़ते हैं

समाचार पत्रों का यह प्रयत्न रहा है कि उनके पाठक बढ़ें और वे स्वयं विभिन्न समूहों तक पहुँचें। ऐसा कहा जाता है कि समाचार पत्र पढ़ने की आदतें बदल गई हैं। जबकि वृद्धजन पूरा-पूरा समाचार पत्र पढ़ते हैं, युवा पाठक अक्सर अपनी-अपनी विशिष्ट रुचियाँ रखते हैं और उन्हीं के अनुसार वे खेल, मनोरंजन या सामाजिक गपशप जैसे विषयों के लिए निर्धारित पृष्ठों पर सीधे पहुँच जाते हैं। पाठकों की रुचियों में भिन्नता होने का निहितार्थ यह है कि समाचार पत्र को भी विभिन्न प्रकार की 'कहानियाँ' रखनी चाहिए जो विभिन्न रुचियों के पाठकों को आकर्षित कर सकें। इसीलिए समाचार पत्र अक्सर 'सूचनारंजन' (इनफोटेनमैंट) यानी सूचना तथा मनोरंजन दोनों के मिश्रण का समर्थन करते हैं ताकि सभी प्रकार के पाठकों की रुचि बनी रहे। समाचार पत्रों का प्रकाशन अब कतिपय परंपराबद्ध मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता से संबंधित नहीं रहा है। समाचार पत्र अब उपभोक्ता वस्तु बन गए हैं और जब तक संख्या बड़ी है, सबकुछ बिक्री के लिए प्रस्तुत है।

बॉक्स 7.11 का अभ्यास

पाठ्य सामग्री को ध्यानपूर्वक पढ़ें—

1. *आपके विचार से क्या पाठक बदल गए हैं अथवा समाचार पत्र बदल गए हैं? चर्चा करें।*
2. *'सूचनारंजन' शब्द पर चर्चा करें। क्या आप इसके कुछ उदाहरण सोच सकते हैं? आपके विचार से सूचनारंजन का क्या प्रभाव होगा?*

बहुत से लोगों को यह डर था कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उत्थान से प्रिंट मीडिया के प्रसार में गिरावट आएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वस्तुतः यह विस्तृत ही हुआ है। किंतु इस प्रक्रिया के कारण अक्सर कीमतें घटानी पड़ी हैं और परिणामस्वरूप विज्ञापनों के प्रायोजकों पर निर्भरता बढ़ गई जिसके कारण अब समाचार पत्रों की विषय-वस्तु में विज्ञापनदाताओं की भूमिका बढ़ गई है। बॉक्स 7.11 में इस व्यवहार के तर्क को स्पष्ट किया गया है।

टेलीविज़न

1991 में भारत में केवल एक ही राज्य-नियंत्रित टीवी चैनल 'दूरदर्शन' था। 1998 तक लगभग 70 चैनल हो गए। 1990 के दशक के मध्यभाग से गैर सरकारी चैनलों की संख्या कई गुना बढ़ गई है। वर्ष 2020 में जब दूरदर्शन 35 से अधिक चैनलों पर अपने कार्यक्रम प्रसारित कर रहा था, गैर सरकारी टेलीविज़न नेटवर्कों की संख्या 900 के आसपास थी। गैर सरकारी उपग्रह टेलीविज़न में हुई आश्चर्यजनक वृद्धि समकालीन भारत में हुए निर्णयात्मक विकासों में से एक है। वर्ष 2002 में, औसतन 13.4 करोड़ लोग प्रति सप्ताह उपग्रह टी.वी. देखा करते थे। यह संख्या बढ़कर 2005 में 19 करोड़ हो गई। वर्ष 2002 में उपग्रह टी.वी. की सुविधा वाले घरों की संख्या 4 करोड़ थी

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

जो बढ़कर 2005 में 6.10 करोड़ हो गई। टी.वी. रखने वाले सभी घरों में से 56 प्रतिशत घरों में अब उपग्रह ग्राहकी (सेटेलाइट सब्सक्रिप्शन) पहुँच चुकी है।

1991 के खाड़ी युद्ध ने (जिसने सी.एन.एन. चैनल को लोकप्रिय बनाया) और उसी वर्ष हांगकांग के ह्वामपोआ हचिनसन समूह द्वारा प्रारंभ किए गए स्टार टी.वी. ने भारत में गैर-सरकारी उपग्रह चैनलों के आगमन का संकेत दे दिया था। 1992 में, हिंदी आधारित उपग्रह मनोरंजन चैनल जी-टीवी ने भारत में केबल टेलीविज़न को अपने कार्यक्रम देना शुरू कर दिया था। वर्ष 2000 तक आते-आते, भारत में 40 गैर सरकारी केबल और उपग्रह चैनल उपलब्ध हो चुके थे, जिनमें से कुछ ऐसे भी थे जो केवल क्षेत्रीय भाषाओं के प्रसारण पर ही केंद्रित थे, जैसे– सन टी.वी., ईनाडु टी.वी., उदय टी.वी., राज टी.वी. और एशिया नेट। इस बीच जी टी.वी. ने भी कई क्षेत्रीय नेटवर्क शुरू किए जो मराठी, बंगला और अन्य भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

1980 के दशक में, एक ओर जहाँ दूरदर्शन तेज़ी से विस्तृत हो रहा था, वहीं केबल टेलीविज़न उद्योग भी भारत के बड़े-बड़े शहरों में तेज़ी से पनपता जा रहा था। वी.सी.आर. ने दूरदर्शन की एकल चैनल कार्यक्रम व्यवस्था के अनेक विकल्प प्रस्तुत करके भारतीय दर्शकों के लिए मनोरंजन के विकल्पों में कई गुना वृद्धि कर दी। निजी घरों और सामुदायिक बैठक कक्षों में वीडियो कार्यक्रम देखने की सुविधा में भी तेज़ी से वृद्धि हुई। वीडियो कार्यक्रमों में अधिकतर देशी और आयातित दोनों प्रकार की फ़िल्मों पर आधारित मनोरंजन शामिल था। 1984 तक, मुंबई और अहमदाबाद जैसे नगरों में उद्यमी एक दिन में अनेक फ़िल्में प्रसारित करने के लिए अपार्टमेंट भवनों में तार लगाने लगे। केबल चलाने वालों की संख्या जो 1984 में 100 थी, बढ़कर 1988 में 1200, 1992 में 15,000 और 1999 में लगभग 60,000 हो गई।

स्टार टी.वी., एम.टी.वी., चैनल वी, सोनी जैसी अन्य अनेक पारराष्ट्रीय (अंतर्राष्ट्रीय) टेलीविज़न कंपनियों के आ जाने से कुछ लोगों को भारतीय युवाओं और भारतीय संस्कृति पर उनके संभावित प्रभाव के बारे में चिंता हुई। लेकिन अधिकांश पारराष्ट्रीय टेलीविज़न चैनलों ने अनुसंधान के माध्यम से यह जान लिया है कि भारतीय दर्शकों के विविध समूहों को आकर्षित करने में चिर-परिचित कार्यक्रमों का प्रयोग ही अधिक

बॉक्स 7.12

प्रिंस का बचाव

प्रिंस नाम का एक पाँच वर्षीय बालक हरियाणा के कुरुक्षेत्र ज़िले के अल्डेहढ़ी गाँव में एक 55 फ़ुट गहरे वेधन-कूप (बोरवैल) के गड्ढ़े में गिर गया था और उसे 50 घंटे के कठिन परिश्रम के बाद सेना द्वारा बाहर निकाला जा सका। इसके लिए सेना ने एक दूसरे कुएँ के समानांतर सुरंग खोदी। बालक जिस शैफ्ट में नीचे बंद था उसमें बंद सर्किट वाला टेलीविज़न कैमरा (सी.सी.टी.वी.) भोजन के साथ, उतारा गया था। दो समाचार चैनलों ने अपने अन्य सभी कार्यक्रम छोड़कर लगातार दो दिनों तक उस बालक की ही चित्रावली दिखानी जारी रखी, जिसमें यह दिखाया गया था कि बालक कितनी बहादुरी से कीड़े-मकौड़ों से लड़ रहा है, सो रहा है या अपनी माँ को चिल्ला-चिल्लाकर पुकार रहा है। यह सब टीवी के परदे पर दिखाया जा रहा था। उन्होंने मंदिरों से बाहर कुछ लोगों के साक्षात्कार भी लिए और यह पूछा कि "आप प्रिंस के बारे में क्या महसूस कर रहे हैं?" उन्होंने लोगों से यह भी कहा कि हमें प्रिंस के लिए एस.एम.एस. द्वारा संदेश भेजें। हज़ारों लोग उस स्थान पर जमा हो गए और दो दिनों तक मुफ़्त सामुदायिक भोजन (लंगर) चला। इससे राष्ट्रभर में एक उन्माद और चिंता का वातावरण उत्पन्न हो गया और लोगों को मंदिरों, मस्जिदों, चर्चों और गुरुद्वारों में प्रिंस के सुरक्षित जीवन के लिए प्रार्थनाएँ करते हुए दिखलाया गया। ऐसे और भी कई उदाहरण हैं जब टीवी को लोगों के व्यक्तिगत जीवन में दखल करते हुए दिखाया गया है।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

प्रभावशाली होगा। सोनी इंटरनेशनल की प्रारंभिक रणनीति यह रही कि हर सप्ताह 10 हिंदी फ़िल्में प्रसारित की जाएँ और बाद में जब स्टेशन अपने हिंदी कार्यक्रम तैयार कर ले, तब धीरे-धीरे इनकी संख्या घटा दी जाए। अब अधिकतर विदेशी नेटवर्क या तो हिंदी भाषा के कार्यक्रमों का एक हिस्सा (एम.टी.वी. इंडिया) हो गए हैं अथवा नया हिंदी चैनल (स्टार प्लस) ही शुरू कर दिया है। स्टार स्पोर्ट्स और ई.एस.पी.एन. दोहरी कॉमेंटरी अथवा हिंदी में एक ऑडियो साउंड ट्रैक चलाते हैं। बड़ी कंपनियों ने बंगला, पंजाबी, मराठी और गुजराती जैसी भाषाओं में विशिष्ट क्षेत्रीय चैनल शुरू किए हैं।

स्थानीयकरण का सबसे नाटकीय तरीका संभवतः स्टार टी.वी. द्वारा अपनाया गया। स्टार प्लस चैनल, जो प्रारंभ में हांगकांग से संचालित पूर्ण रूप से सामान्य मनोरंजन का अंग्रेज़ी चैनल था, ने अक्तूबर 1996 से सायं 7 और 9 बजे के बीच हिंदी भाषा के कार्यक्रम देने शुरू कर दिए। फिर फ़रवरी 1999 से वह पूर्ण रूप से हिंदी चैनल बन गया और उसके सभी अंग्रेज़ी धारावाहिक स्टारवर्ल्ड को, जो कि इस नेटवर्क का अंग्रेज़ी भाषा का अंतर्राष्ट्रीय चैनल है, को दे दिए गए। इस परिवर्तन को प्रोत्साहन देने वाले विज्ञापनों में हिंगलिश का यह नारा शामिल था— 'आपकी बोली आपका प्लस प्वाइंट' (बूचर, 2003)। स्टार और सोनी दोनों ही संयुक्त राज्य अमेरिका के अपने कार्यक्रमों को छोटे बच्चों के लिए डब करते रहे क्योंकि उन्हें यह प्रतीत होने लगा था कि बच्चे उन विलक्षणताओं को समझने और स्वीकार करने लगे हैं जो उस स्थिति में उत्पन्न होती है जब भाषा कोई अन्य हो और कथा परिवेश कोई अन्य। क्या आपने कभी कोई डब किया हुआ कार्यक्रम देखा है? उसके बारे में आप क्या महसूस करते हैं?

अधिकांश चैनल हफ़्ते में सातों दिन और दिन में चौबीसों घंटे चलते हैं। उनमें समाचारों का स्वरूप जीवंत एवं अनौपचारिक होता है। समाचारों को पहले की अपेक्षा अब बहुत अधिक तात्कालिक, लोकतंत्रात्मक और आत्मीय बना दिया गया है। टेलीविज़न ने सार्वजनिक वाद-विवाद को बढ़ावा दिया है और हर बीतते हुए वर्ष के साथ वह अपनी पहुँच को विस्तृत करता जा रहा है। इससे हमारे समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या गंभीर राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों की उपेक्षा तो नहीं की जा रही।

हिंदी और अंग्रेज़ी में समाचार देने वाले चैनलों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार क्षेत्रीय चैनल भी बढ़ रहे हैं और उनके सबके साथ ही यथार्थवादी प्रदर्शन/रिएलिटी शो वार्ता प्रदर्शन, बॉलीवुड प्रदर्शन, पारिवारिक नाट्य प्रदर्शन, अंतःक्रियात्मक प्रदर्शन, खेल प्रदर्शन और प्रहसन एवं हँसी-मज़ाक के प्रदर्शन बड़ी संख्या में हो रहे हैं। मनोरंजन टेलीविज़न ने महान सितारों (सुपर स्टार्स) का एक नया वर्ग पैदा कर दिया है जिनके नामों से हर घर-परिवार सुपरिचित हो गया है और लोकप्रिय पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के गपशप-स्तंभों में उनकी निजी ज़िंदगी और प्रदर्शन में उनकी प्रतिद्वंद्विता के किस्से भरे होते हैं। 'कौन बनेगा करोड़पति' अथवा 'इंडियन आइडल' या 'बिग बॉस' जैसे वास्तविक प्रदर्शन दिन-पर-दिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं। इनमें से अधिकांश कार्यक्रम पाश्चात्य कार्यक्रमों के प्रारूप पर तैयार किए गए हैं। इनमें से किन-किन

सोप ओपेरा **बॉक्स 7.13**

सोप ओपेरा ऐसी कहानियाँ हैं जो धारावाहिक रूप से दिखलाई जाती हैं। वे लगातार चलती हैं। अलग-अलग कहानियाँ समाप्त हो सकती हैं, और भिन्न-भिन्न पात्र प्रकट और गायब होते रहते हैं, पर स्वयं 'सोप' का तब तक कोई अंत नहीं होता जब तक कि उसे पूरी तरह प्रसारण से वापस नहीं ले लिया जाता। सोप ओपेरा एक इतिवृत को लेकर चलते हैं जिसे नियमित दर्शक जानते हैं, वह चरित्रों से, उनके व्यक्तित्व और उनके जीवन के अनुभवों से सुपरिचित हो जाते हैं।

Reprint 2025-26

कार्यक्रमों को अंतःक्रियात्मक प्रदर्शन, पारिवारिक नाट्य प्रदर्शन, वार्ता प्रदर्शन और यथार्थवादी प्रदर्शन कहा जा सकता है? चर्चा करें।

Can you talk your walk? GenZ has tuned into a new career

RADIO GA GA!

Mallvika Nanda

I'd sit alone and watch your light. My only friend through teenage nights. And everything I had to know, I heard it on my radio... You had your time you had the power. You've yet to have your finest hour. Radio... Radio Ga Ga...

Long ago when Queen's Freddie Mercury sung *Radio Ga Ga*, maybe it was a subtle reference to the finest hour which we are witnessing now — the radio boom which is loud and clear. This boom has made radio jockeying the coolest career option for the hip and happening GenZ. And if seeing is believing, the incessant rush of wannabe RJ's who thronged the Fever 104 stall at the recently-held **HT Youth Nexus** made our conviction further stronger. The fever is certainly on the rise.

It's the right choice

But what has made RJ-ing the coolest choice? Perhaps, it is the rising level of awareness among youngsters, who want something more and extraordinary when it comes to career. No run of the mill stuff for them because they are willing to risk and experiment. As actress Preity Zinta, who was an RJ in

रेडियो गा गा

रेडियो

वर्ष 2000 में, आकाशवाणी के कार्यक्रम भारत के सभी दो-तिहाई घर-परिवारों में, 24 भाषाओं और 146 बोलियों में, 12 करोड़ से भी अधिक रेडियो सेटों पर सुने जा सकते थे। 2002 में गैर सरकारी स्वामित्व वाले एफ.एम. रेडियो स्टेशनों की स्थापना से रेडियो पर मनोरंजन के कार्यक्रमों में बढ़ोतरी हुई। श्रोताओं को आकर्षित करने के लिए ये निजी तौर पर चलाए जा रहे रेडियो स्टेशन अपने श्रोताओं का मनोरंजन करते थे। चूँकि गैर सरकारी तौर पर चलाए जाने वाले एफ.एम. चैनलों को कोई राजनीतिक समाचार बुलेटिन प्रसारित करने की अनुमति नहीं देता है, इसलिए इनमें से बहुत से चैनल अपने श्रोताओं को लुभाए रखने के लिए किसी विशेष प्रकार के लोकप्रिय संगीत में अपनी विशेषता रखते हैं। ऐसे एक एफ.एम. चैनल का दावा है कि वह दिन-भर 'हिट' गानों को ही प्रसारित करता है। अधिकांश एफ.एम. चैनल जो कि युवा शहरी व्यावसायिकों तथा छात्रों में लोकप्रिय हैं, अक्सर मीडिया समूहों के होते हैं। जैसे 'रेडियो मिर्ची' 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' समूह का है, 'रैड एफ.एम.' 'लिविंग मीडिया' का और 'रेडियो सिटी' 'स्टार नेटवर्क' के स्वामित्व में हैं। लेकिन नेशनल पब्लिक रेडियो (यू.एस.ए.) अथवा बी.बी.सी. (यू.के.) जैसे स्वतंत्र रेडियो स्टेशन जो सार्वजनिक प्रसारण में संलग्न हैं, हमारे प्रसारण परिदृश्य से बाहर हैं।

दो फ़िल्मों 'रंग दे बसंती' और 'लगे रहो मुन्नाभाई' में, रेडियो को संचार के सक्रिय माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया गया है, हालाँकि दोनों ही फ़िल्में समकालीन परिवेश की हैं। 'रंग दे बंसती' में, एक कर्तव्यनिष्ठ, गुस्सैल कॉलेज छात्र भगत सिंह की कहानी से प्रेरित होकर एक मंत्री की हत्या कर देता है और फिर जनता तक अपना संदेश प्रसारित करने के लिए आकाशवाणी को अपने कब्ज़े में कर लेता है। जबकि 'लगे रहो मुन्नाभाई' में, नायिका एक रेडियो जॉकी है जो अपनी आत्मीय पुकार 'गुड मॉर्निंग इंडिया' से देश को जगाती है और नायक भी एक लड़की के जीवन को बचाने के लिए रेडियो स्टेशन का सहारा लेता है।

एफ.एम. चैनलों के प्रयोग की संभावनाएँ अत्यधिक हैं। रेडियो स्टेशनों के और अधिक निजीकरण तथा समुदाय के स्वामित्व वाले रेडियो स्टेशनों के उद्भव के परिणामस्वरूप रेडियो स्टेशनों का और अधिक विकास होगा। स्थानीय समाचारों को सुनने की माँग बढ़ रही है। भारत में एफ.एम. चैनलों को सुनने वाले घरों की संख्या ने स्थानीय रेडियो द्वारा नेटवर्कों का स्थान ले लेने की विश्वव्यापी प्रवृत्ति को बल दिया। नीचे बॉक्स में दी गई सामग्री से न केवल एक ग्रामीण युवक की चतुराई का पता चलता है बल्कि स्थानीय संस्कृतियों के पोषण की आवश्यकता भी प्रकट होती है।

बॉक्स 7.14

संभवतः यह संपूर्ण एशियाई उपमहाद्वीप में एकमात्र ग्रामीण एफ.एम. रेडियो स्टेशन हो। यह प्रसारण उपकरण, जिसकी कीमत बहुत कम है... शायद दुनिया भर में सबसे सस्ता उपकरण हो। लेकिन स्थानीय लोगों को निश्चित रूप से यह बहुत प्यारा है। भारत के उत्तरी राज्य बिहार में एक सुहावनी सुबह को, राघव महतो नाम का एक युवक अपने घर में विकसित एफ.एम. रेडियो स्टेशन चालू करने के लिए तैयार होता है। मरम्मत सेवा प्रदान करने वाली राघव की छोटी-सी दुकान और रेडियो स्टेशन के 20 किलोमीटर (12 मील) के घेरे में रहने वाले हज़ारों ग्रामवासी अपने प्रिय स्टेशन का कार्यक्रम सुनने के लिए अपने रेडियो सेट चालू करते हैं। थोड़ी-सी घरघराहट की आवाज़ के बाद एक युवक का आत्मविश्वासपूर्ण स्वर रेडियो तरंगों पर तैरने लगता है। "सुप्रभात : राघव एफ.एम. मंसूरपुर में आपका स्वागत है। अब अपने मनपसंद गाने सुनिए" की घोषणा राघव के मित्र और कार्यक्रम संचालक शंभु के स्वर में सुनाई पड़ती है जो स्थानीय संगीत की टेपों के ढेर से घिरा हुआ सैलोटेप का प्लास्टर लगे माइक्रोफ़ोन में बोलता है। अगले 12 घंटों तक, राघव महतो का निर्जन एफ.एम. रेडियो स्टेशन फ़िल्मी गाने सुनाता है और एच.आई.वी. तथा पोलियो जैसी बीमारियों के बारे में सार्वजनिक हित की खबरें और सजीव स्थानीय समाचार भी देता है जिनमें खोए गए बच्चों और नयी खुलने वाली स्थानीय दुकानों की खबरें भी शामिल होती हैं। राघव और उसका मित्र शंभु राघव की छप्पर वाली दुकान प्रिया इलेक्ट्रॉनिक्स शॉप से अपना देसी रेडियो स्टेशन चलाते हैं।

जगह तंग है... झोंपड़ा किराए का है जिसमें संगीत भरे टेप और जंग लगे बिजली के उपकरणों का ढेर लगा है और जो मरम्मत सेवा प्रदान करने वाली राघव की दुकान के साथ-साथ रेडियो स्टेशन का कार्य भी करती है।

राघव पढ़ा-लिखा न हो परंतु उसके स्वदेशी एफ.एम. स्टेशन ने उसे स्थानीय राज नेताओं से भी अधिक लोकप्रिय बना दिया है। राघव का रेडियो के साथ प्रेस-प्रसंग 1997 में प्रारंभ हुआ जब उसने एक स्थानीय मरम्मत की दुकान में एक मिस्त्री के रूप में काम करना प्रारंभ किया था। जब दुकान का मालिक वह क्षेत्र छोड़कर चला गया तो एक कैंसर-पीड़ित खेतिहर मज़दूर के बेटे राघव ने एक मित्र के साथ मिलकर वह झोंपड़ी ले ली। 2003 में किसी समय राघव ने, जो तब तक रेडियो के बारे में काफ़ी कुछ जान चुका था ....गरीबी की मार से पीड़ित बिहार राज्य में, जहाँ बहुत से क्षेत्रों में बिजली नहीं है, सस्ते बैटरी से चलने वाले ट्रांजिस्टर ही मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय साधन है। "इस विचार को पक्का करने और ऐसी किट तैयार करने में, जो एक निर्धारित रेडियो आवृत्ति रेडियोफ्रिक्वेंसी पर मेरे कार्यक्रम प्रसारित कर सके, मुझे काफ़ी लंबा समय लगा। किट पर 50 रु. लागत आई", राघव कहता है। प्रसारण किट एक एंटीना के साथ लंबे बाँस पर पास के एक तीनमंजिला अस्पताल पर लगी है। एक लंबा तार उस प्रसारण यंत्र को नीचे राघव के रेडियो झोंपड़े में लगे घरघराहट करने वाले, घर के बने पुराने स्टीरियो कैसेट प्लेयर से जोड़ता है। तीन अन्य जंग लगे, स्थानीय रूप से बने बैटरी चालित टेपरेकॉर्डर रंगीन तारों और एक बेतार (कॉर्डलेस) माइक्रोफ़ोन के साथ इससे जुड़े हैं।

राघव के झोंपड़े में स्थानीय भोजपुरी, बॉलीवुड और भक्ति गीतों के कोई 200 टेप हैं जिन्हें वह अपने श्रोताओं के लिए बजाता है। राघव का रेडियो स्टेशन उसका एक शौक है– वह उससे कुछ कमाता नहीं है। वह अपनी इलेक्ट्रॉनिक मरम्मत की दुकान से कोई दो हज़ार रुपए प्रतिमास कमा लेता है। यह युवक जो अपने परिवार के साथ एक झोंपड़े में रहता है, यह नहीं जानता कि एक एफ.एम. स्टेशन चलाने के लिए सरकार से लाइसेंस लेना होता है। "मैं इस बारे में नहीं जानता। मैंने तो यह धंधा बस कौतूहलवश प्रारंभ कर दिया था और हर वर्ष इसका प्रसारण क्षेत्र बढ़ता गया," वह कहता है।

इसलिए जब कुछ समय पहले कुछ लोगों ने उससे यह कहा कि उसका रेडियो स्टेशन अवैध है तो उसने उसे वास्तव में बंद कर दिया। लेकिन स्थानीय ग्रामवासियों ने उसके झोंपड़े को घेर लिया और उसे अपनी सेवाएँ फिर से चालू करने के लिए राजी कर लिया। स्थानीय लोगों को इससे कोई मतलब नहीं कि राघव का 'एफ.एम. मंसूरपुर-1' के पास कोई सरकारी लाइसेंस है या नहीं– वे तो बस उसे प्यार करते हैं।

"मेरे स्टेशन को पुरुषों से अधिक महिलाएँ ज़्यादा सुनती हैं," वह कहता है। "यद्यपि बॉलीवुड और स्थानीय भोजपुरी गाने नितांत आवश्यक हैं, पर मैं सूर्योदय और सूर्यास्त के समय महिलाओं और बुज़ुर्गों के लिए भक्ति गीत भी प्रसारित करता हूँ।" चूँकि गाँव वालों के पास राघव को फ़ोन करने की सुविधा नहीं है, इसलिए वे गीतों की फ़रमाइश दस्ती तौर पर लिखित संदेशों के माध्यम से अथवा पड़ोस के सार्वजनिक टेलीफ़ोन कार्यालय को फ़ोन करके भेजते हैं। एक रेडियो स्टेशन के 'संचालक' के रूप में राघव का यश बिहार में दूर-दूर तक फैल गया है। लोगों ने उसके रेडियो स्टेशन पर काम करने के लिए लिखा है और उसकी प्रौद्योगिकी को खरीदने में अपनी रुचि दिखाई है।

स्रोत : बीबीसी न्यूज़ (अमरनाथ तिवारी द्वारा)
http://news.bbc.co.uk/go/pvt-12/hi/south_asia/4735642.stm
प्रकाशित : 2006/02/24 11:34:36 जी.एम.टी. बी.बी.सी. एम.एम.वी.

निष्कर्ष

इस तथ्य पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं है कि मास मीडिया आज हमारे व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन का एक आवश्यक अंग बन गया है। यह अध्याय हमारे जीवन में हुए मीडिया संबंधी सभी अनुभवों को व्यक्त नहीं कर सकता। यह तो हमें यही समझा सकता है कि मास मीडिया समकालीन समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें मीडिया के अनेक आयामों पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया गया है, ये आयाम हैं— राज्य और बाज़ार के साथ मीडिया का संबंध, इसका सामाजिक गठन एवं प्रबंधन, पाठकों एवं श्रोताओं तथा दर्शकों के साथ इसके संबंध, आदि। दूसरे शब्दों में, यहाँ उन नियंत्रणों जिनके अंतर्गत रहकर मीडिया अपना काम करता है, और अनेक तरीकों, जिनसे यह हमारे जीवन को प्रभावित करता है, पर दृष्टिपात किया गया है।

प्रश्नावली

1. समाचारपत्र उद्योग में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनकी रूपरेखा प्रस्तुत करें। इन परिवर्तनों के बारे में आपकी क्या राय है?
2. क्या एक जनसंचार के माध्यम के रूप में रेडियो खत्म हो रहा है? उदारीकरण के बाद भी भारत में एफ.एम. स्टेशनों के सामर्थ्य की चर्चा करें।
3. टेलीविज़न के माध्यम में जो परिवर्तन होते रहे हैं उनकी रूपरेखा प्रस्तुत करें। चर्चा करें।

संदर्भ ग्रंथ

भट्ट, एस.सी. 1994. सैटेलाइट इंवेशन इन इंडिया, सेज, नयी दिल्ली

बुचर, मेलिसा. 2003. ट्रांसनेशनल टेलीविज़न, कल्चर आइडेंटिटी एंड चेंज; व्हैन स्टार केम टू इंडिया सेज, नयी दिल्ली

चौधरी, मैत्रेयी. 2005. 'ए क्वेश्चन ऑफ़ च्वाइस : एडवरटिजमेंट्स मीडिया एंड डेमोक्रेसी' एड. बर्नार्ड बैल एट एल मीडिया एंड मिडिएशन कम्यूनिकेशन प्रोसेसेस भाग-I, पृष्ठ-199–226, सेज, नयी दिल्ली

चटर्जी, पी. सी. 1987. ब्रॉडकास्टिंग इन इंडिया, सेज, नयी दिल्ली

देसाई ए. आर. 1948. दि सोशल बैकग्राउंड ऑफ़ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई

© NCERT not to be republished

घोष, सागारिका. 2006. 'इंडियन मीडिया : ए फ्लाव्ड यट रॉबस्ट पब्लिक सर्विस' इन बी. जी. वर्गीज (संपादित) टुमॉरोज इंडियाः अनादर ट्रस्ट विद डैस्टीनि, वाइकिंग, नयी दिल्ली

जोशी, पी. सी. 1986. कम्युनिकेशन एंड नेशन बिल्डिंग, पब्लिकेशन डिविज़न जी. ओ. आई., दिल्ली

जेफरी, रोजर. 2000. इंडियाज न्यूज़पेपर रिवोल्यूशन, ओ. यू. पी., दिल्ली

मोरे, दादासाहेब विमल. 1970. 'टीन दगदाचाची चुल' इन शर्मिला रेगे राइटिंग कास्ट/राइटिंग जैंडरः नेरेटिंग दलित वुमेंस टेस्टीमोनीज, जुबान/काली, 2006, दिल्ली

पेज, डेविड और विलियम गावले. 2001. सेटेलाइट ओवर साउथ एशिया, सेज, नयी दिल्ली

सिंघल, अरविंद और ई. एम. रोजर्स. 2001. इंडियाज कम्युनिकेशन रिवोल्यूशन, सेज, नयी दिल्ली

© NCERT
not to be republished

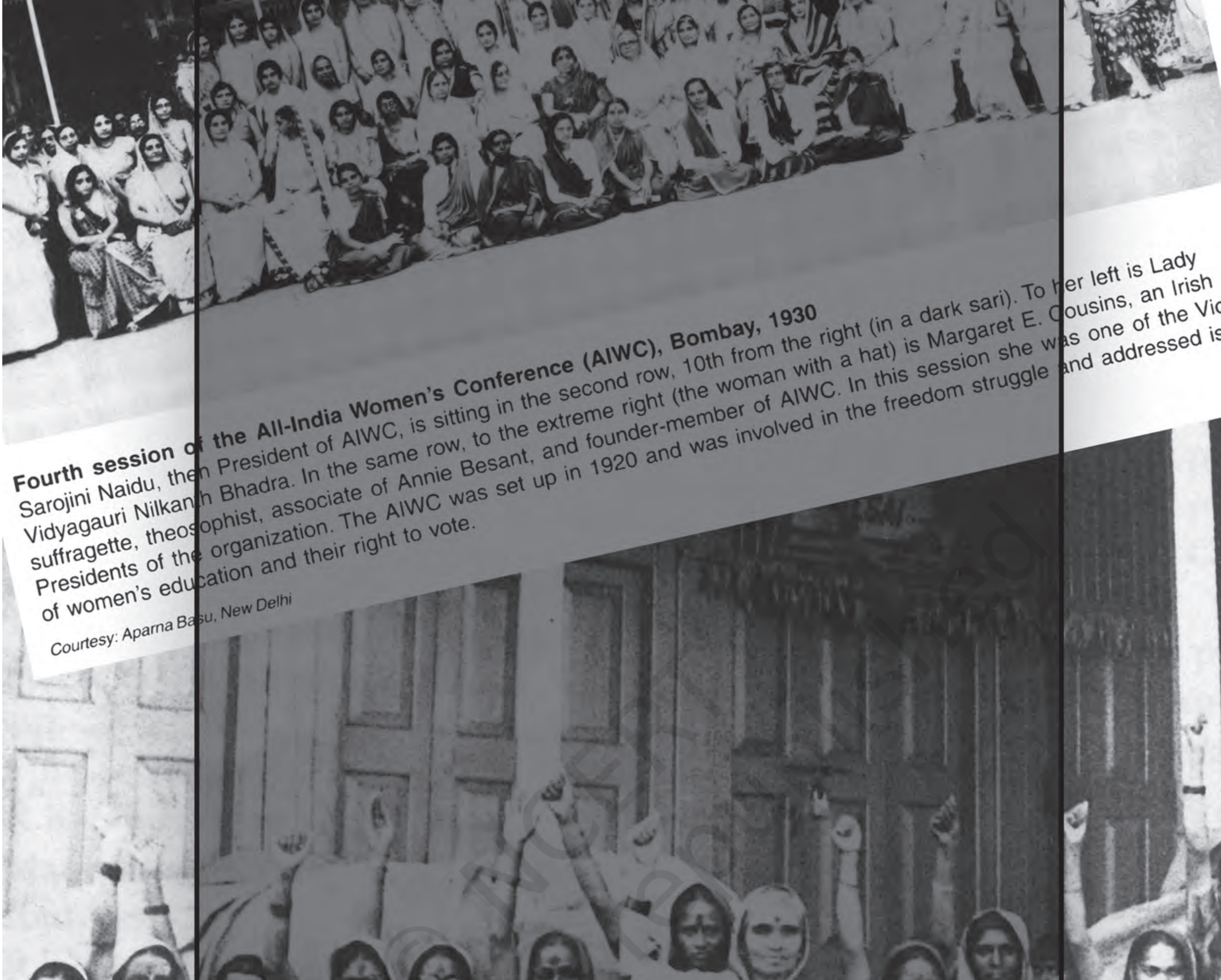
Fourth session of the All-India Women's Conference (AIWC), Bombay, 1930
Sarojini Naidu, then President of AIWC, is sitting in the second row, 10th from the right (in a dark sari). To her left is Lady
Vidyagauri Nilkanth Bhadra. In the same row, to the extreme right (the woman with a hat) is Margaret E. Cousins, an Irish
suffragette, theosophist, associate of Annie Besant, and founder-member of AIWC. In this session she was one of the Vic
Presidents of the organization. The AIWC was set up in 1920 and was involved in the freedom struggle and addressed is
of women's education and their right to vote.
Courtesy: Aparna Basu, New Delhi

8 सामाजिक आंदोलन

गरीब आदिवासियों की रोजी-रोटी छीनने वाले-
सतपुड़ा टाईगर रिजर्व के अफसर और सरकार
आपको सद्बुद्धि
residence

विश्व भर में बड़ी संख्या में विद्यार्थी तथा कार्यालय-कर्मी अपने काम पर पाँच या छः दिन ही जाते हैं तथा सप्ताहांत में विश्राम करते हैं। फिर भी छुट्टी वाले दिन आराम करने वाले व्यक्तियों में से बहुत थोड़े लोगों को ही इस बात का आभास है कि यह छुट्टी का दिन मज़दूरों के एक लंबे संघर्ष का परिणाम है। कार्य दिवस का आठ घंटे से अधिक का न होना, पुरुषों तथा महिलाओं को समान कार्य के लिए समान मज़दूरी दिया जाना तथा मज़दूरों की सामाजिक सुरक्षा तथा पेंशन के अधिकार एवं अन्य बहुत से अधिकार सामाजिक आंदोलनों के द्वारा प्राप्त किए गए थे। सामाजिक आंदोलनों ने उस विश्व को एक आकार दिया है जिसमें हम रहते हैं, और ये निरंतर ऐसा कर रहे हैं।

बॉक्स 8.1

मतदान का अधिकार

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार अथवा प्रत्येक वयस्क को मत देने का अधिकार भारतीय संविधान द्वारा दिए गए प्रमुख अधिकारों में से एक है। इसका अर्थ यह है कि हम स्वयं अपने द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा शासित नहीं हो सकते हैं। यह अधिकार औपनिवेशिक शासन के दिनों से मौलिक रूप से भिन्न है, जब व्यक्तियों को ब्रिटिश राजसत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले औपनिवेशिक अधिकारियों के समक्ष झुकना पड़ता था। हालाँकि, ब्रिटेन में भी सभी को मतदान का अधिकार नहीं था। मतदान का अधिकार संपत्ति के स्वामियों तक ही सीमित था। चार्टरवाद (चार्टरिज़्म) इंग्लैंड में संसदीय प्रतिनिधित्व से संबंधित एक सामाजिक आंदोलन था। सन् 1839 में 12.50 लाख से अधिक व्यक्तियों ने जन चार्टर (पीपुल्स चार्टर) पर हस्ताक्षर करके सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, मतपत्र द्वारा मतदान तथा संपत्तिहीन होने पर भी चुनाव में खड़े होने के अधिकार की माँग की। सन् 1842 में उक्त आंदोलन ने 3,25,000 हस्ताक्षर एकत्रित किए जो एक छोटे देश के लिए बहुत बड़ी संख्या थी। फिर भी प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही, सन् 1918 में, 21 वर्ष से अधिक आयु के सभी पुरुषों, 30 वर्ष से अधिक आयु की विवाहिताओं, गृहस्वामिनियों तथा विश्वविद्यालयी स्नातक महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। जब 'सफ्रागेट्स' (महिला आंदोलनकारियों) ने सभी वयस्क महिलाओं के लिए मताधिकार का मामला उठाया तो उनका कड़ा विरोध हुआ तथा उनका आंदोलन निर्ममता से कुचल दिया गया।

क्रियाकलाप 8.1

अपने जीवन की अपनी दादी/नानी के जीवन से तुलना कीजिए। यह आपके जीवन से किस प्रकार भिन्न है। आपके जीवन में ऐसे कौन से अधिकार हैं जिन्हें आप सहज भाव से स्वीकार करते हैं, और जो उनको प्राप्त नहीं थे, चर्चा करें।

हम प्रायः यह मान लेते हैं कि जिन अधिकारों का हम उपभोग करते हैं वे यूँ ही प्राप्त हो गए। पूर्व के उन संघर्षों का स्मरण करना महत्वपूर्ण है जिनसे ये अधिकार मिलने संभव हुए। आपने 19वीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलनों, जाति तथा लिंग भेद के विरुद्ध संघर्षों तथा भारत के राष्ट्रीय आंदोलन, जिससे हमें औपनिवेशिक राज से 1947 में स्वतंत्रता मिली, के बारे में पढ़ा है। आप विश्व भर के अनेक राष्ट्रवादी आंदोलनों से भी परिचित हैं, जिनसे एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका में औपनिवेशिक राज्य का अंत हुआ। विश्व भर में समाजवादी आंदोलनों ने, अश्वेत लोगों के समान अधिकार के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में

1950 तथा 1960 के दशकों में चलाए गए नागरिक अधिकार आंदोलन और दक्षिणी अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष ने विश्व को मौलिक रूप से बदला है। सामाजिक आंदोलन न केवल समाजों को बदलते हैं बल्कि अन्य सामाजिक आंदोलनों को प्रेरणा भी देते हैं। सामाजिक परिवर्तन लाने में भारतीय संविधान की भूमिका की कहानी जो हम अध्याय 3 में पढ़ चुके हैं, भी यही संकेत देती है।

क्रियाकलाप 8.2

सामाजिक आंदोलनों से समाज किस तरह बदलता है तथा कैसे एक सामाजिक आंदोलन अन्य सामाजिक आंदोलनों को जन्म देता है, इसके किसी उदाहरण के बारे में सोचने का प्रयास कीजिए।

8.1 सामाजिक आंदोलन के लक्षण

सामाजिक आंदोलन में एक लंबे समय तक निरंतर सामूहिक गतिविधियों की आवश्यकता होती है। ऐसी गतिविधियाँ प्रायः राज्य के विरुद्ध होती हैं तथा राज्य की नीति तथा व्यवहार में परिवर्तन की माँग करती हैं। स्वतःस्फूर्त तथा असंगठित विरोध को भी सामाजिक आंदोलन नहीं कह सकते। सामूहिक गतिविधियों में कुछ हद तक संगठन होना आवश्यक है। इस संगठन में नेतृत्व तथा संरचना होती है जिसमें सदस्यों का पारस्परिक संबंध, निर्णय प्रक्रिया तथा उनका अनुपालन परिभाषित होता है। सामाजिक आंदोलन में भाग लेने वाले लोगों के उद्देश्य तथा विचारधाराओं में भी समानता होती है। सामाजिक आंदोलन में एक सामान्य अभिमुखता अथवा किसी परिवर्तन को लाने (या रोकने) का तरीका होता है। ये विशिष्ट लक्षण स्थायी नहीं होते। ये सामाजिक आंदोलन की जीवन अवधि में बदल सकते हैं।

सामाजिक आंदोलन प्रायः किसी जनहित के मामले में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से उत्पन्न होते हैं, जैसे कि जनजातीय लोगों के लिए जंगल के उपयोग का अधिकार अथवा विस्थापित लोगों के पुनर्वास तथा क्षतिपूर्ति के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए। ऐसे ही अन्य मुद्दों के बारे में सोचिए जिन्हें सामाजिक आंदोलनों ने पूर्व तथा वर्तमान में उठाया हो। जबकि सामाजिक आंदोलन सामाजिक परिवर्तन लाना चाहते हैं, कभी-कभी यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए प्रतिरोधी आंदोलन जन्म लेते हैं। ऐसे प्रतिरोधी आंदोलनों के कई उदाहरण हैं। जब राजा राममोहन राय ने सतीप्रथा का विरोध किया तथा ब्रह्म समाज की स्थापना की तो सतीप्रथा के प्रतिरक्षकों ने धर्म सभा स्थापित की तथा अंग्रेज़ों को सती के विरुद्ध कानून न बनाने के लिए याचिका दी। जब सुधारवादियों ने बालिकाओं के लिए शिक्षा की माँग की तो बहुत से लोगों ने यह कहकर इसका विरोध किया कि यह समाज के लिए विनाशकारी होगा। जब सुधारकों ने विधवा पुनर्विवाह का प्रचार किया तो उनका सामाजिक बहिष्कार किया गया। जब तथाकथित 'निम्न जाति' के बच्चों ने स्कूलों में नाम लिखवाया तो कुछ तथाकथित 'उच्च जाति' के बच्चों को उनके परिवारों द्वारा स्कूलों से निकाल लिया गया। किसान आंदोलनों को भी प्रायः क्रूरता से दबाया गया। हाल में हमारे देश में पूर्व में बहिष्कृत समूह जैसे कि दलितों के सामाजिक आंदोलनों से उनके विरुद्ध बदले की कार्यवाही का उदय हुआ। इसी तरह शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण देने के प्रस्तावों से उनका विरोध करने वाले प्रतिरोधी आंदोलनों का जन्म हुआ। सामाजिक आंदोलन आसानी से समाज को नहीं बदल सकते। चूँकि यह संरक्षित हितों तथा मूल्यों दोनों के विरुद्ध होते हैं इसलिए इनका विरोध तथा प्रतिकार होना स्वाभाविक है। लेकिन कुछ समय के बाद परिवर्तन होते भी हैं।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 8.3

विभिन्न सामाजिक आंदोलनों की एक सूची बनाइए जिनके बारे में आपने सुना अथवा पढ़ा हो। वे क्या परिवर्तन लाना चाहते थे? वे किन परिवर्तन को रोकना चाहते थे?

जहाँ विरोध सामूहिक गतिविधि का सर्वाधिक मूर्त रूप है, वहीं सामाजिक आंदोलन समान रूप से महत्वपूर्ण अन्य तरीकों से भी कार्य करता है। सामाजिक आंदोलनकारी लोगों को उनसे संबंधित मुद्दों पर प्रेरित करने के लिए सभाएँ करते हैं। ऐसी गतिविधियाँ साझा सोच में सहायक होती हैं तथा सामूहिक एजेंडा को आगे बढ़ाने में स्वीकृति की भावना अथवा आम सहमति के लिए लोगों को तैयार करवाती हैं। सामाजिक आंदोलन प्रचार योजनाएँ भी बनाते हैं जिसमें सरकार पर दबाव बनाने वाले, संचार और जनमत तैयार करने वाले अन्य महत्वपूर्ण लोग भी शामिल होते हैं। अध्याय 3 में इस विषय पर की गई चर्चा को याद कीजिए। सामाजिक आंदोलन विरोध के विभिन्न साधनों को भी विकसित करता है। जैसे मोमबत्ती या मशाल जुलूस, काले कपड़े का प्रयोग, नुक्कड़ नाटक, गीत, कविताएँ इत्यादि। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन में अहिंसा, सत्याग्रह तथा चरखे के प्रयोग जैसे नए तरीकों को अपनाया। विरोध के नए तरीकों जैसे कि धरना तथा नमक के उत्पादन पर औपनिवेशिक प्रतिबंध की अवहेलना का स्मरण करें।

बॉक्स 8.2

सत्याग्रह की झाँकी

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विदेशी सत्ता तथा पूँजी का मेल सामाजिक विरोधों का केंद्र बिंदु था। महात्मा गांधी ने भारत में कपास उगाने वालों तथा बुनकरों की जीविका, जो सरकार की मिल में तैयार कपड़ों की तरफ़दारी करने की नीति से नष्ट हो गई थी, के समर्थन में हाथ से कता तथा बुना वस्त्र खादी पहना। नमक बनाने के लिए बहुचर्चित डांडी यात्रा अंग्रेज़ों की कर नीतियों, जिसमें उपभोग की मूलभूत सामग्री के उपभोक्ताओं पर साम्राज्य को लाभ पहुँचाने के लिए बहुत अधिक भार डाला गया था, के खिलाफ़ एक विरोध था। गांधी ने प्रतिदिन के जन उपभोग की चीज़ों जैसे कपड़ा और नमक को चुना और उन्हें प्रतिरोध का प्रतीक बना दिया।

गांधीजी नमक कानून तोड़ते हुए, 1930
गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के एक भाग के रूप में अपना प्रतिरोध दिखाते हुए नमक कानून तोड़ा। साथ दिए गए चित्र में महिलाएँ नमक की कड़ाही में लवण-जल डालते हुए दिखाई दे रही हैं।

स्रोत : नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नयी दिल्ली

Reprint 2025-26

सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक आंदोलन में अंतर

सामान्य रूप से सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक आंदोलनों में अंतर करना महत्वपूर्ण है। सामाजिक परिवर्तन निरंतर रूप से आगे बढ़ता रहता है। सामाजिक परिवर्तन की वृहद ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ असंख्य व्यक्तियों तथा सामूहिक गतिविधियों का परिणाम होती हैं। सामाजिक आंदोलन किसी विशिष्ट उद्देश्य की ओर निर्देशित होते हैं। इसमें लंबा तथा निरंतर सामाजिक प्रयास तथा लोगों की गतिविधियाँ शामिल होती हैं। अध्याय 2 में हमारी चर्चा के आधार पर हम संस्कृतीकरण तथा पाश्चात्यीकरण को सामाजिक परिवर्तन के रूप में तथा 19वीं सदी के सामाजिक सुधारकों द्वारा समाज में परिवर्तन के प्रयासों को सामाजिक आंदोलन के रूप में देख सकते हैं।

8.2 समाजशास्त्र तथा सामाजिक आंदोलन

सामाजिक आंदोलनों का अध्ययन समाजशास्त्र के लिए क्यों महत्वपूर्ण है?

प्रारंभ से ही समाजशास्त्र विषय सामाजिक आंदोलनों में रुचि लेता रहा है। फ्रांसिसी क्रांति राजतंत्र को उखाड़ फेंकने तथा 'स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुता' स्थापित करने के उद्देश्य से चलाए गए अनेक सामाजिक आंदोलनों की एक हिंसात्मक परिणति थी। ब्रिटेन में, औद्योगिक क्रांति के दौरान बहुत से सामाजिक उतार-चढ़ाव हुए। कक्षा XI की एन.सी.ई.आर.टी पुस्तक *समाजशास्त्र परिचय* में पश्चिम में समाजशास्त्र के उदय पर हमारी चर्चा का स्मरण करें। गाँवों से नगरों में काम की तलाश में आए गरीब मज़दूरों तथा कारीगरों ने उन अमानवीय जीवन-स्थितियों का विरोध किया, जिनमें रहने के लिए उन्हें बाध्य किया जाता था। इंग्लैंड के खाद्य दंगों (फूड राइट्स) को प्रायः सरकार ने दबाया। कुलीन वर्ग द्वारा इन विरोधों को स्थापित व्यवस्था के लिए गंभीर चुनौती के रूप में देखा जाता था। सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उनकी चिंता समाजशास्त्री एमिल दुर्खाइम की रचनाओं में प्रतिबिंबित हुई थी। दुर्खाइम द्वारा समाज में श्रम के विभाजन, धार्मिक जीवन के प्रकार, यहाँ तक कि आत्महत्या आदि विषयक लेख उसकी चिंता को प्रतिबिंबित करते हैं कि कैसे सामाजिक संरचनाएँ सामाजिक एकीकरण को संभव बनाती हैं। सामाजिक आंदोलनों को अव्यवस्था फैलाने वाली शक्तियों के रूप में देखा जाता था।

कार्ल मार्क्स के विचारों से प्रभावित विद्वानों ने सामूहिक हिंसात्मक गतिविधि का एक भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। ई.पी. थॉमसन जैसे इतिहासकारों ने दर्शाया कि 'जनसंकुल' तथा 'भीड़' समाज को नष्ट करने के लिए अराजक गुंडों द्वारा बनाई हुई नहीं होती। इसके बजाय उनमें भी 'नैतिक अर्थव्यवस्था' होती है। दूसरे शब्दों में उनमें भी उनकी गतिविधियों के विषय में सही और गलत की साझी समझ होती है। उनके शोध ने दर्शाया कि नगरीय क्षेत्रों में गरीब लोगों के पास विरोध करने के लिए उपयुक्त कारण होते हैं। वे प्रायः सार्वजनिक रूप से विरोध करते हैं क्योंकि उनके पास वंचन के विरुद्ध अपना गुस्सा और क्षोभ प्रकट करने का कोई दूसरा तरीका नहीं होता।

© NCERT not to be republished

8.3 सामाजिक आंदोलनों के प्रकार

वर्गीकरण का एक प्रकार : सुधारवादी, प्रतिदानात्मक, क्रांतिकारी

सामाजिक आंदोलन कई प्रकार के होते हैं। उन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है— (1) प्रतिदानात्मक अथवा रूपांतरणकारी; (2) सुधारवादी, तथा (3) क्रांतिकारी। प्रतिदानात्मक सामाजिक आंदोलन का लक्ष्य अपने व्यक्तिगत सदस्यों की व्यक्तिगत चेतना तथा गतिविधियों में परिवर्तन लाना होता है। उदाहरण के लिए, केरल के इज़हावा समुदाय के लोगों ने नारायण गुरु के नेतृत्व में अपनी सामाजिक प्रथाओं को बदला। सुधारवादी सामाजिक आंदोलन वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक विन्यास को धीमे, प्रगतिशील चरणों द्वारा बदलने का प्रयास करता है। सन् 1960 के दशक में भारत के राज्यों को भाषा के आधार पर पुनर्गठित करने अथवा हाल के सूचना के अधिकार का अभियान सुधारवादी आंदोलनों के उदाहरण है। क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन सामाजिक संबंधों के आमूल रूपांतरण का प्रयास करते हैं, प्रायः राजसत्ता पर अधिकार के द्वारा। रूस की बोल्शेविक क्रांति जिसने ज़ार को अपदस्थ करके साम्यवादी राज्य की स्थापना की तथा भारत में नक्सली आंदोलन, जो दमनकारी भूस्वामियों तथा राज्य अधिकारियों को हटाना चाहते हैं, की क्रांतिकारी आंदोलनों के रूप में व्याख्या की जा सकती है।

क्या आप इन सामाजिक आंदोलनों को ऊपर दी गई श्रेणियों के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं?

जब आप सामाजिक आंदोलन को इस प्रारूप के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास करेंगे तो आपको पता चलेगा कि बहुत से आंदोलनों में प्रतिदानात्मक, सुधारवादी तथा क्रांतिकारी तत्व एक साथ मिले होते हैं। अथवा एक सामाजिक आंदोलन की अभिमुखता समय के साथ इस प्रकार बदलती है कि प्रारंभ में वह, उदाहरणार्थ, क्रांतिकारी उद्देश्य वाला हो और फिर सुधारवादी बन जाए। एक आंदोलन जन-गतिशीलता तथा सामूहिक विरोध की अवस्था से प्रारंभ होकर अधिक संस्थात्मक बन जाए। समाजवैज्ञानिक जो सामाजिक आंदोलनों के जीवनचक्रों का अध्ययन करते हैं, इसे 'सामाजिक आंदोलन संगठनों' की ओर अग्रसर होने की एक चेष्टा मानते हैं।

सामाजिक आंदोलन किस प्रकार देखा और वर्गीकृत किया जाता है, यह सदैव निरूपण का विषय रहा है। यह भिन्न-भिन्न वर्गों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरण के लिए, 1857 में जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों के लिए 'गदर' अथवा 'विद्रोह' था, वह भारतीय राष्ट्रवादियों के लिए 'स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम' था। गदर वैध सत्ता यानी ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध एक अवज्ञा की कार्यवाही थी। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष ब्रिटिश राज की वैधानिकता को ही चुनौती थी। यह दिखाता है कि लोग कैसे सामाजिक आंदोलनों को भिन्न अर्थ देते हैं।

नए सामाजिक आंदोलनों की पुराने सामाजिक आंदोलनों से भिन्नता

पूँजीवादी पश्चिम में कामगार वर्ग के आंदोलन राज्य से बेहतर वेतन, बेहतर जीवन दशा, सामाजिक सुरक्षा, मुफ़्त स्कूली शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुरक्षा प्राप्त कर रहे थे। यह वह काल भी था जब सामाजिक आंदोलन नए प्रकार के राज्यों तथा समाजों की स्थापना कर रहे थे। पुराने सामाजिक आंदोलनों ने शक्ति संबंधों के पुनर्गठन को केंद्रीय लक्ष्य के रूप में स्पष्टतः देखा।

पुराने सामाजिक आंदोलन राजनीतिक दलों के दायरे में काम करते थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन चलाया। चीन की साम्यवादी पार्टी ने चीनी क्रांति का नेतृत्व किया। आज कुछ

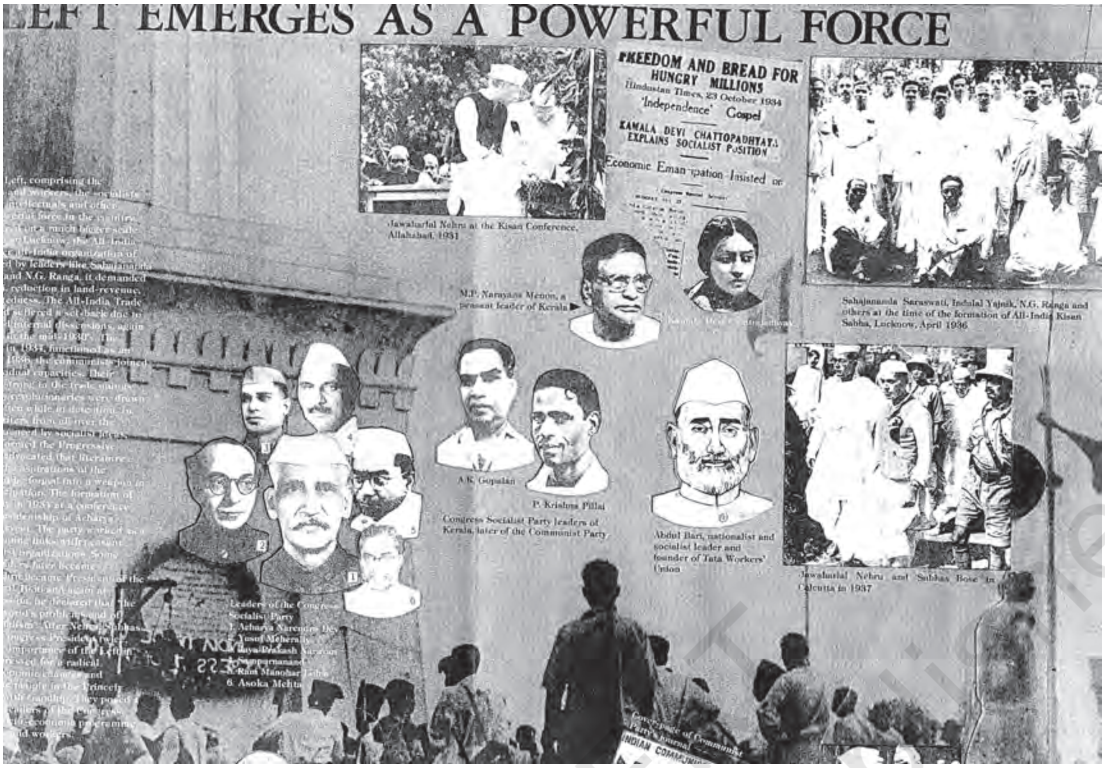

लोग मानते हैं कि मज़दूर संघों तथा कामगारों के दलों द्वारा चलाई गई वर्ग-आधारित राजनीतिक कार्यवाही पतनोन्मुख है। दूसरे लोग तर्क देते हैं कि धनी पश्चिम में कल्याणकारी राज्य के कारण वर्ग आधारित शोषण तथा असमानता जैसे मुद्दे केंद्रीय चिंता का विषय नहीं रहे। अतः 'नए सामाजिक आंदोलन' समाज में सत्ता के वितरण को बदलने के बारे में न होकर जीवन की गुणवत्ता जैसे स्वच्छ पर्यावरण के बारे में थे।

पुराने सामाजिक आंदोलनों में सामाजिक दलों की केंद्रीय भूमिका थी। राजनीतिशास्त्री रजनी कोठारी भारत में 1970 के दशक में सामाजिक आंदोलनों की भरमार को लोगों के संसदीय लोकतंत्र से बढ़ते असंतोष का कारण मानते थे। कोठारी तर्क देते हैं कि राज्य की संस्थाओं पर अभिजात लोगों का अधिकार हो गया है। इसके कारण राजनीतिक दलों द्वारा चुनावी प्रतिनिधित्व गरीबों द्वारा अपनी सुनवाई करवाने का एक प्रभावशाली तरीका नहीं रह गया। औपचारिक राजनीतिक व्यवस्था से छूट गए व्यक्ति सामाजिक आंदोलनों अथवा गैर दलीय राजनीतिक संगठनों में सम्मिलित हो गए ताकि वे राज्य पर बाहर से दबाव डाल सकें। आज नागरिक समाज की विस्तृत परिभाषा राजनीतिक दलों तथा मज़दूर संघों के प्रतिनिधित्व वाले दोनों पुराने सामाजिक आंदोलनों तथा नए गैर सरकारी संगठनों, महिलाओं के समूहों, पर्यावरण के समूहों तथा जनजातीय आंदोलनकारियों के लिए प्रयोग की जाती है।

जब आप भारत में सामाजिक बदलाव के विभिन्न पहलुओं के बारे में पढ़ते हैं तो आप इस बात से अवश्य प्रभावित होते हैं कि *भूमंडलीकरण* उद्योग, कृषि, संस्कृति तथा संचार (मीडिया) के क्षेत्र में लोगों के जीवन का पुनर्गठन कर रहा है। प्रायः फर्में (कंपनियाँ) पारराष्ट्रीय होती हैं, अक्सर उन पर कानूनी व्यवस्थाएँ लागू होती हैं जो विश्व व्यापार संगठन जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विनियमों द्वारा निर्धारित की जाती हैं। पर्यावरण तथा स्वास्थ्य संबंधी जोखिम, परमाणु युद्ध के भय की प्रकृति भी भूमंडलीय होती है। इसलिए यह

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

आश्चर्यजनक नहीं है कि बहुत से नए सामाजिक आंदोलन विस्तार में अंतर्राष्ट्रीय होते हैं। हालाँकि जो बात महत्वपूर्ण है, वह यह है कि पुराने तथा नए आंदोलन नए मैत्री संगठनों जैसे विश्व सामाजिक फोरम, जोकि भूमंडलीकरण के संकटों के मुद्दे उठाते हैं, में मिल कर काम कर रहे हैं।

नए सामाजिक आंदोलन आर्थिक असमानता के 'पुराने' मुद्दों के बारे में ही नहीं हैं। ना ही ये वर्गीय आधार पर संगठित हैं। पहचान की राजनीति, सांस्कृतिक चिंताएँ तथा अभिलाषाएँ सामाजिक आंदोलनों की रचना करने के आवश्यक तत्व हैं तथा इनकी उत्पत्ति वर्ग-आधारित असमानता में ढूँढ़ना कठिन है। प्रायः ये सामाजिक आंदोलन वर्ग की सीमाओं के आर-पार से भागीदारों को एकजुट करते हैं। उदाहरण के लिए, महिलाओं के आंदोलन में नगरीय, मध्यवर्गीय महिलावादी तथा गरीब कृषक महिलाएँ सभी शामिल होती हैं। पृथक राज्य के दर्जे की माँग करने वाले क्षेत्रीय आंदोलन व्यक्तियों के ऐसे विभिन्न समूहों को अपने साथ शामिल करते हैं जो एक सजातीय वर्ग की पहचान नहीं रखते। सामाजिक आंदोलन में सामाजिक असमानता के प्रश्न, दूसरे समान रूप से महत्वपूर्ण मुद्दों के साथ शामिल हो सकते हैं।

8.4 पारिस्थितिकीय आंदोलन

आधुनिक काल के अधिकतर भाग में सर्वाधिक ज़ोर विकास पर दिया गया है। दशकों से प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित उपयोग तथा विकास के ऐसे प्रतिरूप के निर्माण में, जिससे पहले से ही घटते प्राकृतिक संसाधनों के अधिक शोषण की माँग बढ़ती है, के विषय में बहुत चिंता प्रकट की जाती रही है। विकास के इस प्रतिरूप की इसलिए भी आलोचना हुई है, क्योंकि यह मानता है कि विकास से सभी वर्गों के लोग लाभान्वित होंगे। यथा बड़े बाँध लोगों को उनके घरों और जीवनयापन के स्रोतों से अलग कर देते हैं और उद्योग, कृषकों को उनके घरों और आजीविका से। औद्योगिक प्रदूषण के प्रभाव की एक और ही कहानी है। यहाँ हम पारिस्थितिकीय आंदोलन से जुड़े विभिन्न मुद्दों को जानने के लिए उसका केवल एक उदाहरण ले रहे हैं।

सकलाना में विश्व पर्यावरण दिवस पर एकत्र हुए चिपको आंदोलनकारी, 1986

क्रियाकलाप 8.4

अपने क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण के कुछ उदाहरणों का पता लगाइए, चर्चा कीजिए। आप अपने उन उदाहरणों की पोस्टर प्रदर्शनी भी लगा सकते हैं। अब हम पारिस्थितिकीय आंदोलन के एक उदाहरण के रूप में चिपको आंदोलन की बात करते हैं।

रामचंद्र गुहा की पुस्तक **अनक्वाइट वुड्स** के अनुसार गाँववासी अपने गाँवों के निकट के ओक तथा रोहोडैंड्रोन के जंगलों को बचाने के लिए एक साथ आगे गए। सरकारी जंगल के ठेकेदार पेड़ों को काटने के लिए आए तो गाँववासी, जिनमें बड़ी संख्या में महिलाएँ शामिल थीं, आगे बढ़े और कटाई रोकने के लिए पेड़ों से चिपक गए। गाँववासियों के जीवन-निर्वहन का प्रश्न दाँव पर था। सभी लोग ईंधन के लिए लकड़ी, चारा तथा

अन्य दैनिक आवश्यकताओं के लिए जंगलों पर निर्भर थे। इस संघर्ष ने गरीब गाँववासियों को आजीविका की आवश्यकताओं को बेचकर राजस्व कमाने की सरकार की इच्छा के समक्ष खड़ा कर दिया। जीवन-निर्वहन की अर्थव्यवस्था, मुनाफ़े (लाभ) की अर्थव्यवस्था के विपरीत खड़ी थी। सामाजिक असमानता के इस मुद्दे (जिसमें गाँववासियों के समक्ष वाणिज्यिक तथा पूँजीवादी हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार थी) के साथ चिपको आंदोलन ने पारिस्थितिकीय सुरक्षा के मुद्दे को भी उठाया। प्राकृतिक जंगलों का काटा जाना पर्यावरणीय विनाश का एक रूप था जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्र में विनाशकारी बाढ़ तथा भूस्खलन हुए। गाँववासियों के लिए ये 'लाल' तथा 'हरे' मुद्दे अन्तःसंबद्ध थे। जबकि उनकी उत्तरजीविता जंगलों के जीवन पर निर्भर थी। वे जंगलों का सबको लाभ देने वाली पारिस्थितिकीय संपदा के रूप में भी आदर करते थे। इसके साथ ही चिपको आंदोलन ने सुदूर मैदानी क्षेत्रों में स्थित सरकार के मुख्यालय जो उनकी चिंताओं के प्रति उदासीन तथा विरुद्ध प्रतीत होता था, के विरुद्ध पर्वतीय गाँववासियों के रोष को भी

वन विनाश पर विचार विमर्श करते हुए, जूनागढ़, हिमाचल प्रदेश

बॉक्स 8.3

चिपको आंदोलन

हिमालय की तलहटी में पारिस्थितिकीय आंदोलन का एक उदाहरण चिपको आंदोलन है जो मिश्रित हितों तथा विचारधाराओं का एक अच्छा उदाहरण है। सन् 1970 की अनपेक्षित भारी वर्षा से अत्यंत विनाशकारी बाढ़ आ गई, जो हमारी स्मृति में अभी तक नहीं आई थी। अलकनंदा घाटी में पानी ने 100 वर्ग किलोमीटर भूमि को डुबा दिया, धातु के 6 पुलों, 10 किलोमीटर की मोटर सड़क, 24 बसों तथा बहुत से अन्य वाहनों को बहा दिया; 366 घर गिर गए तथा 500 एकड़ धान की खड़ी फ़सल नष्ट हो गई। मानव तथा पशु जीवन की भी बहुत क्षति हुई थी।

...सन् 1970 की बाढ़ क्षेत्र के पारिस्थितिकीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। गाँववासी, जिन्होंने विनाश की मार सही, वनों की अंधाधुंध कटाई, भूस्खलन तथा बाढ़ के बीच अब तक के दुर्बल संबंध को देखने लगे थे। यह देखा गया कि वे गाँव भूस्खलन से सबसे अधिक प्रभावित हुए जो सीधे उन जंगलों के नीचे स्थित थे जहाँ पेड़ों की कटाई की गई थी

...गाँववासियों का मामला चमोली ज़िले में अवस्थित एक सहकारी संगठन दशौली ग्राम स्वराज्य संघ ने उठाया।

...इन प्रारम्भिक विरोधों के बावजूद सरकार ने नवंबर में जंगलों की वार्षिक नीलामी कर दी। दिए जाने वाले भूखंडों में से एक रेनी जंगल था।

...ठेकेदार के आदमियों ने, जो जोशीमठ से रेनी जा रहे थे, रेनी से पहले ही बस रुकवाई। गाँव के बाहर से ही वे जंगल की तरफ जा रहे थे। एक छोटी लड़की, जिसने मज़दूरों को उनके उपकरणों के साथ देखा था, भाग कर गाँव की महिला मंडल की प्रमुख गौरा देवी के पास गई। गौरा देवी ने दूसरी गृहणियों को इकट्ठा किया और जंगल जा पहुँची। जब उन्होंने मज़दूरों से कटाई कार्य प्रारंभ न करने की याचना की तो प्रारंभ में उन्हें गालियाँ तथा धमकियाँ मिलीं। जब महिलाओं ने झुकने से इंकार कर दिया तो पुरुषों को अंततः चले जाना पड़ा।

Reprint 2025-26

बॉक्स 8.4

हमारे सामयिक (वर्तमान) सूचना युग में विश्वभर के सामाजिक आंदोलन गैर सरकारी संगठनों, धार्मिक तथा मानवतावादी समूहों, मानवाधिकार समितियों, उपभोक्ता संरक्षण अधिवक्ताओं, पर्यावरण आंदोलनकारियों तथा जनहित में अभियान करने वाले अन्य लोग जो एक विशाल क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संजाल में एकजुट होने में सक्षम हैं ...उदाहरण के लिए सिएटल में विश्व व्यापार संगठन के विरुद्ध हुए विशाल विरोध का संगठन, पाक्षिक रूप से इंटरनेट-आधारित संजाल द्वारा किया गया था।

प्रदर्शित किया। इस प्रकार अर्थव्यवस्था, पारिस्थितिकीय तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व की चिंताएँ चिपको आंदोलन का आधार थीं।

वातावरण की बेहतरी के लिए पेड़ों का होना आवश्यक है। यह सामान्यतः से साफ़-सुथरा पर्यावरण, साफ़ पानी एवं आस-पास की स्वच्छता पर निर्भर करता है और यह महत्वपूर्ण भी है। इसके आलोक में, भारत सरकार ने 2014 से "एकीकृत गंगा संरक्षण मिशन" (नमामि गंगे) और स्वच्छ भारत अभियान के माध्यम से भारत की पारिस्थितिकी में संतुलन, संरचना और गुणवत्ता लाने के लिए व्यवस्थित प्रयास शुरू किए हैं

8.5 वर्ग आधारित आंदोलन

किसान आंदोलन

किसान आंदोलन या कृषक संघर्ष औपनिवेशिक काल से पहले के दिनों में शुरू हुआ। यह आंदोलन 1858 और 1914 के बीच स्थानीयता, विभाजन और विशिष्ट शिकायतों से सीमित होने की ओर प्रवृत हुआ। 1859–62 का विद्रोह जो कि नील की खेती के विरुद्ध था, और 1857 का दक्कन विद्रोह, जो कि साहूकारों के विरोध में था। इससे जुड़े हुए कुछ मुद्दे आने वाले समय में भी विद्यमान थे और महात्मा गाँधी के नेतृत्व में वे आंशिक रूप से स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ गए। उदाहरण के लिए बारदोली सत्याग्रह (1928, सूरत ज़िले में)

बॉक्स 8.5

सिलिगुड़ी उपमंडल के किसानों की सभा एक बड़ी सफलता सिद्ध हुई। किसान अपने पहले के हिंसात्मक संघर्ष से जोशीले होकर एवं बल पाकर आगे के लिए आशान्वित हुए। जोतदारों के खेतों में धूप और वर्षा की दमनकारी दिनचर्या से मुर्झाए श्रमिकों के निस्तेज चेहरों पर उम्मीद तथा वास्तविकता की समझ से चमक आ गई। कानू सान्याल के बाद के दावों के अनुसार, मार्च से अप्रैल 1967 तक सभी गाँव वाले संगठित हो चुके थे। 15,000 से 20,000 तक किसान पूर्णकालिक आंदोलनकारियों के रूप में नामांकित हुए। प्रत्येक गाँव में किसान समितियाँ बनीं और वे सशस्त्र गार्ड में रूपांतरित हो गए थे। उन्होंने जल्द ही ज़मीनों को किसान समितियों के नाम से अधिग्रहित कर लिया, ज़मीन के उन सभी प्रलेखों (बहीखातों) को जला दिया गया जिनकी वजह से उन्हें उनके हक से वंचित रखा जाता था, बंधक (कुछ सामान रेहन रखकर दिया जाने वाला कर्ज) करके लिए गए सारे कर्जों को निरस्त कर दिया, दमनकारी भूस्वामियों के लिए मृत्युदंड की घोषणा की, भूस्वामियों से बंदूकें छीनने के लिए सशस्त्र टोलियों का गठन किया। अपने आप को परंपरागत हथियारों जैसे तीर, धनुष और भाला इत्यादि से सुसज्जित किया और गाँवों की देखभाल के लिए समानांतर प्रशासन का गठन किया।

स्रोतः सुमंता बनर्जी "नक्सलबारी एंड द लेफ्ट मूवमेंट" (सं) घनश्याम शाह, सोशल मूवमेंट एंड द स्टेट, (सेज, दिल्ली 2002) पृष्ठ 125–192

not to be republished © NCERT

बॉक्स 8.6

गुरिल्ला आंदोलन 24 नवंबर, 1968 को गोडापादु के निकट के मैदानी क्षेत्र में गरूड़भद्रा जो कि एक अमीर भूस्वामी की ज़मीन पर फ़सल को जबरन कटवाने पर शुरू हुआ। अधिक सार्थक कार्यवाही वह थी जो कि अगले दिन पहाड़ी क्षेत्र में हुई, जब पार्वतीपुरम एजेंसी क्षेत्र के पैडागोतिली गाँव में बहुत से गाँवों लगभग 250 गिरिजनों ने तीर, धनुष और भालों से भूस्वामी व साहूकार... के घर पर धावा बोल दिया उसके जमा किए हुए धान, चावल अन्य खाद्य पदार्थों और 20,000 मूल्य की संपत्ति पर कब्ज़ा कर लिया। उन्होंने प्रलेखों को भी अधिग्रहित कर लिया...।

एक 'लगान विरोधी' अभियान था और यह देशव्यापी असहयोग आंदोलन का हिस्सा था, यह भूमि का कर न देने का अभियान था और 1917–18 में चंपारन सत्याग्रह हुआ जो नील की खेती के विरुद्ध था। 1920 का प्रतिरोध आंदोलन ब्रिटिश सरकार की वन की नीतियों के विरुद्ध था और कुछ क्षेत्रों में स्थानीय शासक भी उठ खड़े हुए। हमारे अध्याय 1 के संरचनात्मक परिवर्तन को याद करें।

1920 से 1940 के मध्य किसान संगठन भी भड़क उठे। पहला संगठन था बिहार प्रोविंसिएल किसान सभा (1929) और 1936 में ऑल इंडिया किसान सभा का उदय हुआ। किसान सभाओं के द्वारा संगठित हुए और उनकी माँग थी कि किसानों, कामगारों तथा अन्य सभी वर्गों को आर्थिक शोषण से मुक्ति मिले। स्वतंत्रता के समय हमें दो मुख्य किसान आंदोलन देखने को मिलते थे पहला तिभागा आंदोलन (1946–47) और दूसरा तेलंगाना आंदोलन (1946–51)। पहला संघर्ष बंगाल और उत्तरी बिहार की पट्टेदारी (साझा खेती) का था, जिसमें उसकी पैदावार का दो तिहाई हिस्सा देना होता था न कि प्रथागत आधा। इसे किसान सभा और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई.) का समर्थन प्राप्त था। दूसरा प्रिंसली राज्य हैदराबाद की सामंती दशाओं के विरुद्ध था जिसे सी.पी.आई. ने उठाया था।

'नए किसानों' का आंदोलन पंजाब और तमिलनाडु में 1970 के दशक से प्रारंभ हुआ। ये आंदोलन क्षेत्रीय आधार पर संगठित थे, दल-रहित थे, और इसमें कृषक के स्थान पर किसान जुड़े थे (किसान उन्हें कहा जाता है जो कि वस्तुओं के उत्पादन और खरीद दोनों रूपों में बाज़ार से जुड़े होते हैं) आंदोलन की मौलिक विचारधारा मज़बूत राज्य-विरोधी और नगर-विरोधी थी। माँगों के केंद्र में 'मूल्य और संबंधित मुद्दे थे (उदाहरण के लिए कीमत वसूली, लाभप्रद कीमतें, कृषि निवेश की कीमतें, टैक्स और उधार की वापसी) उपद्रव के नए तरीके अपनाए गए; सड़कों एवं रेलमार्गों को बंद करना, राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के लिए गाँव में प्रवेश की मनाही और इसी तरह के अन्य कार्य। यह तर्क दिया जाता है कि किसान आंदोलनों के वातावरण एवं महिला मुद्दों सहित उनकी कार्यसूची एवं विचारधारा में विस्तार हुआ है। अतः उन्हें 'नए सामाजिक आंदोलनों' के एक भाग के रूप में विश्वस्तर पर देखा जा सकता है।

कामगारों का आंदोलन

भारत में कारखानों से उत्पादन 1860 के प्रारंभिक भाग में शुरू हुआ। आपको औपनिवेशिक काल में औद्योगीकरण वाले अध्याय की चर्चा का स्मरण होगा। औपनिवेशिक शासन में व्यापार का एक सामान्य तरीका था, जिसके अनुसार कच्चे माल का उत्पादन भारत में किया जाता था और सामान का निर्माण 'युनाइटेड किंगडम' में होता और उसे उपनिवेश में बेचा जाता था। इसीलिए इन कारखानों को बंदरगाह वाले शहरों कलकत्ता (कोलकाता) और बंबई (मुंबई) में स्थापित किया गया। बाद में ऐसे कारखानों को मद्रास (चेन्नई) में भी स्थापित किया गया। आसाम में चाय बागानों को लगाने का काम 1839 के आसपास हुआ।

Reprint 2025-26

औपनिवेशिक काल की प्रारंभिक अवस्थाओं में मज़दूरी बहुत सस्ती थी क्योंकि औपनिवेशिक सरकार ने उनके वेतन और कार्य दशाओं के लिए कोई नियम नहीं बनाए थे। आपको याद होगा कि औपनिवेशिक सरकार ने किस तरह से वृक्षारोपण के लिए मज़दूरों की उपलब्धता सुनिश्चित की थी। (अध्याय 1)

हालाँकि मज़दूर संघ बाद में बने लेकिन कामगारों ने विरोध पहले भी किया। उस वक्त उनकी कार्यवाही संपोषित के स्थान पर स्वतःस्फूर्त ज़्यादा थी। कुछ राष्ट्रवादी नेताओं ने उपनिवेश विरोधी आंदोलन में मज़दूरों को भी शामिल किया। युद्ध से देश में उद्योगों का विस्तार हुआ, लेकिन इससे लोगों की परेशानी भी बहुत बढ़ी। वहाँ खाने की कमी हो गई और कीमतें बहुत तेज़ी से बढ़ीं। वहाँ बंबई (मुंबई) की कपड़ा मिलों में हड़तालों की एक लहर चली। सितंबर–अक्तूबर 1917 में करीब 30 प्रामाणिक हड़तालें हुईं। कलकत्ता के पटसन कामगारों ने काम रोका। मद्रास की बंकिघम और कर्नाटक (बिन्नी की) की मिल के कामगारों ने वेतन

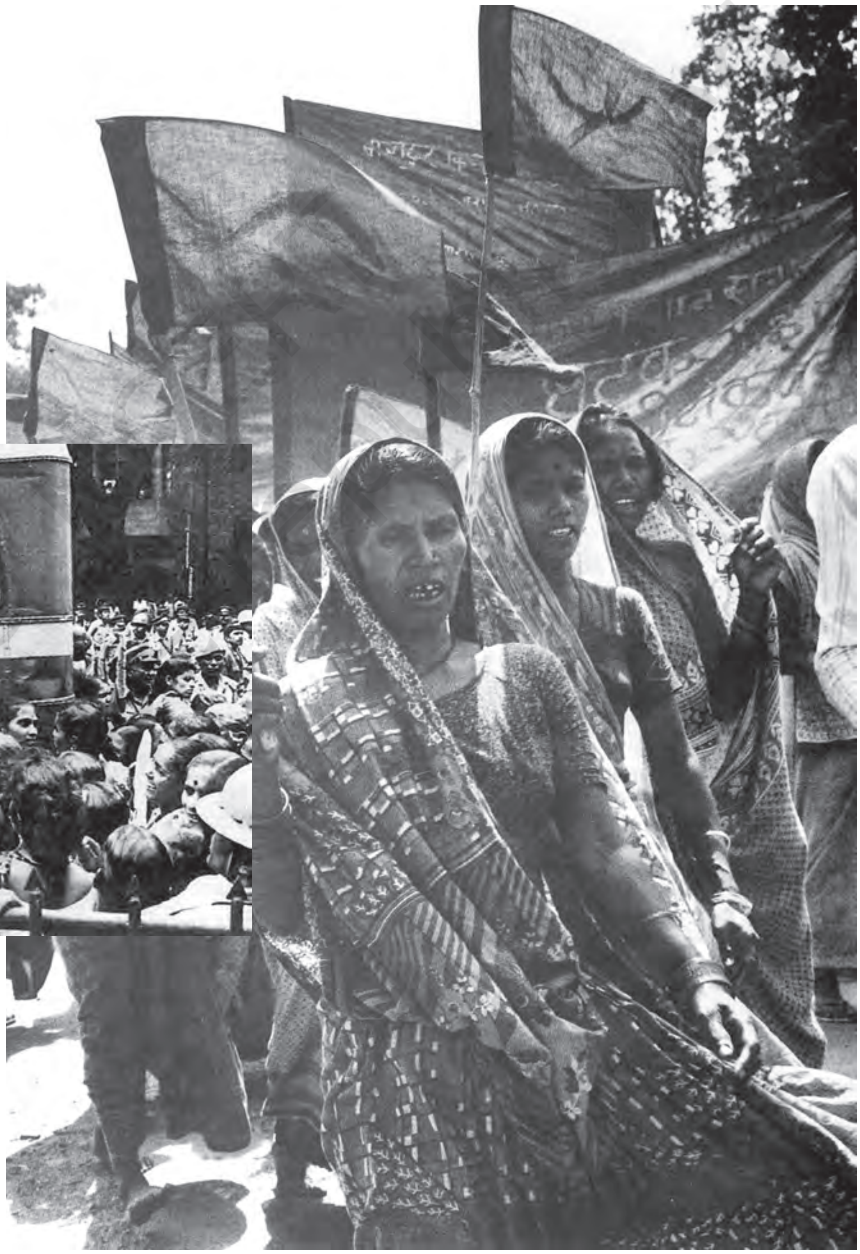

ऊपर : बंबई कपड़ा मिल मज़दूरों की हड़ताल 1981–82
दाएँ : महिला कामगारों द्वारा संघ प्रदर्शन, अरवल, बिहार, 1987

Reprint 2025-26

वृद्धि के लिए काम रोक दिया। अहमदाबाद की कपड़ा मिल के कामगारों ने 50 प्रतिशत वेतन वृद्धि बढ़ाने की माँग को लेकर काम बंद कर दिया था। (भौमिक 2004:106)

सर्वप्रथम मज़दूर संघ की स्थापना अप्रैल 1918 में बी. पी. वाडिया जो कि एक सामाजिक कार्यकर्ता और थियोसॉफिकल सोसायटी के सदस्य थे ने की। उसी वर्ष के दौरान महात्मा गाँधी ने टेक्सटाइल लेबर ऐसोसिएशन (टी.एल.ए.) की स्थापना की। सन् 1920 में बंबई में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (ए.आई.ई.टी.सी., एटक) की स्थापना हुई। एटक वृहद आधारों और विभिन्न विचारधाराओं वाला संगठन था। साम्यवादी लोग इसकी मुख्य विचारधारा वाले समूह में थे जिनकी अगुआई एस. ए. डांगे और एम. एन. राय ने की। नरम दल की अगुआई एम. जोशी और वी. वी. गिरी ने की तथा राष्ट्रवादी आंदोलन में लाला लाजपत राय और जवाहरलाल नेहरू जैसे लोग शामिल थे।

क्रियाकलाप 8.5

एक महीने तक रोज़ाना समाचार पढ़ें। रेडियो अथवा दूरदर्शन पर किसी समाचार प्रसारण को सुनें। मज़दूरों से संबंधित उठाए गए तथा चर्चित मुद्दों को लिखें। चर्चा करें।

ब्रिटिश राज के अंतिम दिनों के दौरान साम्यवादियों ने एटक पर काफ़ी नियंत्रण कर लिया था। मई 1947 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक अन्य संघ – भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस बनाया जिससे राजनीतिक दलों की तर्ज पर अधिक विभाजनों का रास्ता खुला। राष्ट्रीय स्तर पर कामगार वर्ग के आंदोलन ने राजनीतिक दलों की तरह विघटन के अतिरिक्त 1960 के दशक के अंत से क्षेत्रीय दलों ने भी अपने स्वयं के संघों का गठन प्रारंभ किया।

सन् 1966–67 में अर्थव्यवस्था में भारी मंदी आई जिससे उत्पादन में तथा परिणामस्वरूप रोज़गार में कमी हुई। सभी ओर असंतोष था। 1974 में रेल कर्मचारियों की बहुत बड़ी हड़ताल हुई। राज तथा मज़दूर संघों के बीच प्रतिरोध तीव्र हो गया।

8.6 जाति-आधारित आंदोलन

दलित आंदोलन

दलितों के सामाजिक आंदोलन एक विशिष्ट चरित्र दर्शाते हैं। मात्र आर्थिक शोषण अथवा राजनीतिक दबाव के संदर्भ में इनकी व्याख्या संतोषजनक रूप से नहीं की जा सकती, हालाँकि ये पहलू भी महत्वपूर्ण हैं। यह एक मानव के रूप में पहचान प्राप्त करने का संघर्ष है। यह आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्णय का स्थान पाने का संघर्ष है। यह अस्पृश्यता द्वारा उपलक्षित कलंक को समाप्त करने का संघर्ष है। इसे स्पर्श के लिए संघर्ष कहा जाता है।

दलित शब्द का प्रयोग आमतौर पर मराठी, हिंदी, गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं में गरीब तथा उत्पीड़ित लोगों के अर्थ में किया जाता है। इसका नए संदर्भ में प्रथम प्रयोग मराठी में 1970 के दशक के प्रारंभ में बाबा साहब अंबेडकर के अनुयायियों ने नव-बौद्ध आंदोलनकारियों के संदर्भ में किया था। इसका अभिप्रायः उन लोगों से था जिन्हें उनके ऊपर के लोगों द्वारा जान बूझ कर तोड़ा और धराशायी किया गया। इस शब्द में ही प्रदूषण, कर्म तथा न्यायोचित जाति संस्तरण की स्वाभाविक अस्वीकृति है।

© NCERT not to be republished
Reprint 2025-26

देश में पहले अथवा अभी कोई एक संगठित दलित आंदोलन नहीं हुआ है। विभिन्न आंदोलनों ने दलितों से संबंधित विभिन्न मुद्दों को विभिन्न विचारधाराओं के आसपास उभारा है। हालाँकि सभी एक दलित पहचान की बात कहते हैं फिर भी इसका अर्थ सभी के लिए एक समान अथवा निश्चित नहीं होता। दलित आंदोलनों की प्रकृति तथा पहचान के अर्थ में भिन्नता के बावजूद उनमें समानता, आत्मसम्मान तथा अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए एक समानता की खोज हो रही है (शाह 2001:194)। इसे पूर्वी मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ के मैदानी इलाके में चमारों के सतनामी आंदोलन में, पंजाब के आदि धर्म आंदोलन में, महाराष्ट्र के महार आंदोलन में, आगरा के जाटवों की सामाजिक-राजनीतिक गतिशीलता में तथा दक्षिण भारत के ब्राह्मण-विरोधी आंदोलन में देखा जा सकता है।

समसामयिक काल में दलित आंदोलन ने जनमंडल में निर्विवाद रूप से स्थान प्राप्त कर लिया है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके साथ प्रचुर मात्रा में दलित साहित्य भी आया है।

दलित लेखक अपने स्वयं के अनुभव तथा दृष्टिकोण के आधार पर अपनी कल्पनाशीलता तथा भावों का प्रयोग करने के लिए हठी होते हैं। बहुत से लोग मानते हैं कि मुख्यधारा वाले समाज की उच्च सामाजिक कल्पनाशीलता सत्य को प्रकट करने के बजाय छुपाएगी। दलित साहित्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रांति का आह्वान करता है। जबकि कुछ लोग सम्मान तथा पहचान के लिए सांस्कृतिक संघर्ष पर बल देते हैं, अन्य समाज की संरचनात्मक विशेषताओं के साथ ही आर्थिक आयामों को भी इसमें शामिल करते हैं।

बॉक्स 8.7

समाजशास्त्रियों द्वारा दलित आंदोलनों को वर्गीकृत करने के प्रयासों से यह मान्यता पैदा हुई है कि वे सभी प्रकारों, यथा सुधारवादी, मुक्तिप्रद (प्रतिदानात्मक), तथा क्रांतिकारी हैं। ...जाति-विरोधी आंदोलन, जो 19वीं सदी में जोतिबा फुले की प्रेरणास्वरूप गैर-ब्राह्मण आंदोलन (ब्राह्मणेत्तर समाज का विरोधी आंदोलन) के रूप में महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में आगे बढ़ाया गया तथा फिर डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में विकसित हुआ, जिसमें सभी प्रकारों की विशेषताएँ थीं... हालाँकि अपनी सर्वोत्तम दशा में यह समाज के संदर्भ में क्रांतिकारी तथा व्यक्तियों के संदर्भ में मुक्तिप्रद (प्रतिदानात्मक) था। आंशिक संदर्भ में, 'अंबेडकरोत्तर दलित आंदोलनों' में क्रांतिकारी परिपाटी रही है। इसने जीवन के वैकल्पिक तरीके दिए, जो कुछ बिंदुओं पर सीमित तथा कुछ बिंदुओं पर मौलिक तथा सर्व-सम्मिलित थे जिससे व्यवहार में परिवर्तन जैसे कि गौमांस भक्षण का त्याग, से लेकर धर्म परिवर्तन तक सभी कुछ शामिल था। यह संपूर्ण समाज के परिवर्तन पर केंद्रित था, जाति उत्पीड़न तथा आर्थिक शोषण को समाप्त करने के मौलिक क्रांतिकारी लक्ष्य से लेकर अनुसूचित जाति के सदस्यों को सामाजिक गतिशीलता प्रदान करवाने के सीमित लक्ष्यों तक। लेकिन कुल मिला कर... यह आंदोलन एक सुधारवादी आंदोलन रहा है। इसने जाति के आधार पर गतिशीलता प्रदान की परंतु जाति को नष्ट करने के लिए केवल आधे मन से प्रयास किए। इसने प्रयास करके कुछ वास्तविक किंतु सीमित सामाजिक बदलाव प्राप्त किए, विशेषतः दलितों में शिक्षित वर्गों के लिए, परंतु यह अब तक भी संतोषप्रद रूप से विश्व में सर्वाधिक गरीब आम जनता के गरीबी उन्मूलन के लिए समाज को परिवर्तित करने में असफल रहा है।

पिछड़े वर्ग एवं जातियों के आंदोलन

पिछड़ी जातियों, वर्गों का राजनीतिक इकाईयों के रूप में उदय औपनिवेशिक तथा उपनिवेशोत्तर दोनों संदर्भों में हुआ है। औपनिवेशिक राज प्रायः अपनी संरक्षिता का वितरण जाति के आधार पर करते थे। इसलिए लोगों का संस्थागत जीवन में सामाजिक तथा राजनीतिक पहचान के लिए अपनी जातियों में रहना अर्थपूर्ण होता था। इससे समान रूप से अवस्थिति जाति समूहों पर स्वयं को संगठित करना जिसे 'समानांतर विस्तार' कहा जाता है, पर प्रभाव पड़ा। इस प्रकार जाति अपनी कर्मकांडी विषयवस्तु छोड़ने लगी और राजनीतिक

Reprint 2025-26

गतिशीलता के लिए अधिक से अधिक पंथनिरपेक्ष बन गई। (अध्याय 2 में पंथनिरपेक्षता पर चर्चा का स्मरण करें।)

'पिछड़े वर्गों' की संज्ञा का प्रयोग देश के विभिन्न भागों में 19वीं सदी के अंत से किया जा रहा है। इसका अधिक विस्तृत प्रयोग मद्रास प्रेसीडेंसी में 1872 से, मैसूर के राजशाही राज्य में 1918 से तथा बंबई प्रेसीडेंसी में 1825 से किया जा रहा है। 1920 के दशक से देश के विभिन्न भागों में, जाति के मुद्दों के आसपास एकजुट होकर बहुत से संगठन उठ खड़े हुए। इनमें संयुक्त प्रोविंस में हिंदू बैकवर्ड क्लासेस लीग (हिंदू पिछड़ा वर्ग लीग), आल-इंडिया बैकवर्ड क्लासेस फैडरेशन (अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग लीग) शामिल हैं। 1954 में पिछड़े वर्गों के लिए 88 संगठन काम कर रहे हैं।

बॉक्स 8.8

मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों आदि पर सलाहकार समिति के गठन का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए जी.बी. पंत ने अपने भाषण में निम्नलिखित विचार प्रकट किए थे:

'हमें दबाए हुए वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों की विशेष देखभाल करनी होगी। उन्हें सामान्य स्तर पर लाने के लिए हम जो कर सकते हैं, उसे अवश्य करना चाहिए... जंजीर की शक्ति का आकलन उसकी सर्वाधिक कमज़ोर कड़ी द्वारा किया जाता है, और इसलिए जब तक सबसे कमज़ोर कड़ी को सशक्त नहीं किया जाता, हमें एक स्वस्थ राजनीति नहीं प्राप्त होगी।'

2019 में, भारत सरकार ने उच्च जातियों के बीच आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए शिक्षा और सरकारी नौकरियों में 10 प्रतिशत आरक्षण की शुरूआत की। यह उपरोक्त उद्धरण से कैसे भिन्न हैं? चर्चा करें।

8.7 जनजातीय आंदोलन

देश भर में फैले विभिन्न जनजातीय समूहों के मुद्दे समान हो सकते हैं, लेकिन उनके विभेद भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। जनजातीय आंदोलनों में से कई अधिकांश रूप से मध्य भारत की तथाकथित 'जनजातीय बेल्ट' में स्थित रहे हैं जैसे– छोटानागपुर व संथाल परगना में स्थित संथाल, हो, ओरांव व मुंडा। नए गठित हुए झारखंड प्रदेश का मुख्य भाग इन्हीं से बना है। हमारे लिए विभिन्न आंदोलनों के बारे में विस्तृत विवरण देना संभव नहीं है। हम उदाहरण के रूप में झारखंड की चर्चा करेंगे जहाँ जनजातीय आंदोलन का इतिहास सौ वर्ष पुराना है। हम पूर्वोत्तर राज्यों के जनजातीय आंदोलनों की विशिष्टताओं के बारे में भी संक्षिप्त में चर्चा करेंगे परंतु इनकी भी विस्तृत विवेचना संभव नहीं है क्योंकि एक ही क्षेत्र में जनजातीय आंदोलन के विभिन्न स्वरूप विद्यमान हो सकते हैं।

जनजातीय लोगों का संघर्ष जारी

झारखंड

सन् 2000 में दक्षिण बिहार से काट कर बनाया गया झारखंड भारत के नव-निर्मित राज्यों में से एक है। इस राज्य की स्थापना के पीछे का इतिहास एक सदी से अधिक का प्रतिरोध है। झारखंड के लिए सामाजिक आंदोलन के करिश्माई नेता बिरसा मुंडा नाम का एक आदिवासी था जिसने अंग्रेज़ों के विरुद्ध एक बड़े विद्रोह का नेतृत्व किया। अपनी मृत्यु के बाद बिरसा इस आंदोलन का एक प्रमुख प्रतीक बन गया। उसके बारे में कहानियाँ और गीत पूरे झारखंड में गाए जाते हैं। बिरसा के संघर्ष की स्मृति लेखों द्वारा भी जीवित रखी गई।

© NCERT not to be republished

दक्षिण बिहार में काम कर रहे ईसाई मिशनरी इस क्षेत्र में साक्षरता के प्रसार के लिए उत्तरदायी थे। साक्षर आदिवासियों ने अपने इतिहास तथा मिथकों के बारे में शोध और लेखन प्रारंभ किया। उन्होंने जनजातीय प्रथाओं तथा सांस्कृतिक व्यवहारों के बारे में लिखा और उनके बारे में जानकारी प्रदान की। इससे झारखंडियों को संगठित संजातीय चेतना तथा साझी पहचान बनाने में सहायता मिली।

साक्षर आदिवासी सरकारी नौकरियाँ पाने की स्थिति में भी थे जिससे समय के साथ एक मध्यवर्गीय आदिवासी बुद्धिजीवी नेतृत्व का उदय हुआ, जिसने पृथक राज्य की माँग को प्रारूप दिया तथा भारत एवं विदेशों में भी इसका प्रचार किया। दक्षिण बिहार के अंतर्गत आदिवासी, दिक्कुओं की जो प्रवासी व्यापारी तथा महाजन थे, और जो उस क्षेत्र में आकर बस गए थे तथा जिन्होंने वहाँ के मूल निवासियों की संपदा पर अधिकार कर लिया था, मूल आदिवासी उनसे घृणा करते थे। इन खनिज-संपन्न क्षेत्रों में खदान तथा औद्योगिक परियोजनाओं से मिलने वाले अधिकांश लाभ दिक्कुओं को मिलते थे, यहाँ तक कि आदिवासी भूमि अलग कर दी गई थी। आदिवासियों ने अलग-थलग किए जाने के अनुभव तथा अन्याय के बोध को झारखंड की साझी पहचान बनाने तथा सामूहिक कार्यवाही की प्रेरणा के लिए गतिशील किया जिसके परिणामस्वरूप अंततः पृथक् राज्य का निर्माण हुआ। वे मुद्दे जिनके विरुद्ध झारखंड में आंदोलनकारी नेताओं ने प्रदर्शन किए थे–

- सिंचाई परियोजनाओं तथा गोलीबारी क्षेत्र के लिए भूमि का अधिग्रहण।
- रुके हुए सर्वेक्षण तथा पुनर्वास की कार्यवाही, बंद कर दिए कैंप, आदि।
- ऋणों, किराए तथा सहकारी कर्ज़ों का संग्रह, जिसका प्रतिकार किया गया।
- वन उत्पाद का राष्ट्रीयकरण, जिसका उन्होंने बहिष्कार किया।

पूर्वोत्तर

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने राज्यों के निर्माण की जो प्रक्रिया प्रारंभ की, उसने इस क्षेत्र के सभी प्रमुख पर्वतीय क्षेत्र के जिलों में अशांति की प्रवृति पैदा की। अपनी पृथक पहचान तथा पारंपरिक स्वायत्तता के प्रति सचेत ये जातियाँ असम के प्रशासनिक तंत्र में सम्मिलित किए जाने के बारे में अनिश्चित थीं।

> *इस प्रकार इस क्षेत्र में संजातीयता का उदय जनजाति के एक सशक्त अज्ञात प्रणाली के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप विकसित हुई नवीन परिस्थिति का सामना करने का प्रत्युत्तर था। भारतीय मुख्यधारा से लंबे समय तक पृथक रहने के कारण ये जनजातियाँ, अपना स्वयं का विश्व-दर्शन तथा सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं को बहुत कम बाहरी प्रभाव से बचा रख पाए... जबकि पहले की अवस्था ने अलगाव की प्रवृत्ति दिखाई, यह प्रवृत्ति भारतीय संविधान के दायरे में ही स्वायत्तता की खोज द्वारा प्रस्थापित हो गई है (नाँगबरी 2003 : 115)।*

एक मुख्य मुद्दा जो देश के विभिन्न भागों के जनजातीय आंदोलनों को जोड़ता है, वह है जनजातीय लोगों का वन-भूमि से विस्थापन। इस अर्थ में पारिस्थितिकीय मुद्दे जनजातीय आंदोलनों के केंद्र में हैं। लेकिन इसी प्रकार पहचान की सांस्कृतिक असमानता व विकास जैसे आर्थिक मुद्दे भी हैं। यह हमें पुनः भारत में पुराने तथा नए सामाजिक आंदोलनों की अस्पष्टता के प्रश्न की ओर वापिस ले जाता है।

Reprint 2025-26

8.8 महिलाओं का आंदोलन

19वीं सदी के समाज-सुधार आंदोलन तथा प्रारंभिक महिला संगठन

आप 19वीं सदी के समाज-सुधार आंदोलनों से भलीभाँति परिचित हैं, जिन्होंने महिलाओं से संबंधित अनेक मुद्दे उठाए। इस पुस्तक के अध्याय 2 और पहली पुस्तक में भी इन्हें उठाया गया है। 20वीं सदी के प्रारंभ में राष्ट्रीय तथा स्थानीय स्तर पर महिलाओं के संगठनों में वृद्धि देखी गई। विमेंस इंडिया एसोसिएशन (भारतीय महिला एसोसिएशन; डबल्यू. आई.ए., 1971) आल-इंडिया विमेंस कॉन्फ्रेंस (अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेंस; ए.आई.डबल्यू.सी., 1926) और नेशलन काउंसिल फॅार विमेन इन इंडिया (भारत में महिलाओं की राष्ट्रीय काऊंसिल; एन.सी.डबल्यू.आई.) ये ऐसे संगठनों के नाम हैं जिन्हें हम तुरंत पहचान कर बता सकते हैं। जबकि इनमें से कई की शुरुआत सीमित कार्यक्षेत्र से हुई, इन का कार्यक्षेत्र समय के साथ विस्तृत हुआ। उदाहरण के लिए प्रारंभ में ए.आई. डबल्यू.सी. का विचार था कि 'महिला कल्याण' तथा 'राजनीति' आपस में असंबद्ध है। कुछ वर्ष बाद उसके अध्यक्षीय भाषण में कहा गया, "क्या भारतीय पुरुष अथवा स्त्री स्वतंत्र हो सकते हैं यदि भारत गुलाम रहे? हम अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता जोकि सभी महान सुधारों का आधार है, के बारे में चुप कैसे रह सकते हैं? (चौधरी 1993:149)"

उत्तरी पहाड़ियों की एक महिला नाम गुफिआलो सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेकर मशहूर हुई।

यह तर्क दिया जा सकता है कि सक्रियता का यह काल सामाजिक आंदोलन नहीं था। इसका विरोध भी किया जा सकता था। चलो हम उन विशेषताओं का स्मरण करें जो सामाजिक आंदोलनों को चिह्नित करती हैं। इनमें संगठन, विचारधारा, नेतृत्व, एक साझी समझ तथा जन मुद्दों पर परिवर्तन लाने का लक्ष्य था। सम्मिलित रूप से ये एक ऐसा वातावरण बनाने में सफल हुए जहाँ महिलाओं के मुद्दों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।

कृषिक संघर्ष तथा क्रांतियाँ

प्रायः यह माना जाता है कि केवल मध्यवर्गीय शिक्षित महिलाएँ ही सामाजिक आंदोलनों में सहभागिता करती हैं। संघर्ष का एक भाग महिलाओं की सहभागिता के विस्मृत इतिहास को याद करना रहा है। औपनिवेशिक काल में जनजातीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारंभ होने वाले संघर्षों तथा क्रांतियों में महिलाओं ने पुरुषों के साथ भाग लिया। बंगाल में तिभागा आंदोलन, निज़ाम के पूर्वशासन का तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष, तथा महाराष्ट्र में वरली जनजाति के बंधुआ दासत्व के विरुद्ध क्रांति, ये कुछ उदाहरण हैं।

1947 के बाद

एक मुद्दा जो प्रायः उठाया जाता है कि यदि 1947 से पहले महिला आंदोलन एक सक्रिय आंदोलन था, तो बाद में उसका क्या हुआ। इसकी एक व्याख्या यह दी जाती है कि राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली बहुत सी महिला प्रतिभागी राष्ट्र निर्माण के कार्य में संलग्न हो गई। दूसरे लोग विभाजन के आघात को इस ठहराव का उत्तरदायी मानते हैं।

Reprint 2025-26

दहेज विरोधी संघर्ष

शाहजहाँ बेगम 'ऐप' अपनी पुत्री के छायाचित्र के साथ जिसकी दहेज के कारण हत्या हो गई।

1970 के दशक के मध्य में भारत में महिला आंदोलन का नवीनीकरण हुआ। कुछ लोग इसे भारतीय महिला आंदोलन का दूसरा दौर कहते हैं। जबकि बहुत सी चिंताएँ उसी प्रकार बनी रहीं, फिर भी संगठनात्मक रणनीति तथा विचारधाराओं दोनों में परिवर्तन हुआ। स्वायत्त महिला आंदोलन कहे जाने वाले आंदोलनों में वृद्धि हुई।

संगठनात्मक परिवर्तन के अलावा कुछ नए मुद्दे भी थे जिनपर ध्यान दिया गया। उदाहरण के लिए, महिलाओं के प्रति हिंसा के बारे में वर्षों से अनेक अभियान चलाए गए हैं। आपने देखा होगा कि स्कूल के प्रार्थनापत्र में पिता तथा माता दोनों के नाम होते हैं। यह सदैव सत्य नहीं था। इसी प्रकार महिलाओं के आंदोलनों के कारण महत्वपूर्ण कानूनी परिवर्तन आए हैं। भू-स्वामित्व व रोज़गार के मुद्दों की लड़ाई यौन-उत्पीड़न तथा दहेज के विरुद्ध अधिकारों की माँग के साथ लड़ी गई है।

इस बात की मान्यता भी बढ़ रही है कि स्त्री व पुरुष दोनों ही प्रबल लिंग-पहचान द्वारा बाध्य हैं। उदाहरण के लिए पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को लगता है कि उन्हें ताकतवर तथा सफल होना चाहिए। स्वयं को भावनात्मक रूप से प्रकट करना पुरुषोचित नहीं है। तब यह विचार आता है कि स्त्री एवं पुरुष दोनों को स्वतंत्र होने का अधिकार समान रूप से मिलना चाहिए। निःसंदेह यह इस विचार पर निर्भर है कि सच्ची स्वतंत्रता का अपनी इच्छानुसार बढ़ना तथा विकास तभी संभव होगा जब कोई अन्याय न हो। जेंडर दृष्टि से समतावादी समाज मुख्यतः दो कारणों पर आधारित है। महिलाओं को शिक्षित किया जाए, ताकि वे बहुउद्देश्यीय भूमिकाओं का सफलता से निर्वाह कर सकें एवं यौनिक अनुपात का संतुलन ये ऐसे दो कारक हैं। हाल ही में भारत सरकार की 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजना एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रयास है जो लैंगिक दृष्टि से समतावादी समाज को मूर्त रूप देने में सहायक होगा।

8.9 निष्कर्ष

अब जब हम पुस्तक के अंत में पहुँच चुके हैं कदाचित यह प्रासंगिक होगा कि हम पुनः वहाँ वापिस जाएँ जहाँ हमने कक्षा XI में समाजशास्त्र की प्रथम पुस्तक से प्रारंभ किया था। हमने व्यक्ति तथा समाज के बीच

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

द्वंद्वात्मक संबंधों की चर्चा से शुरुआत की थी। सामाजिक आंदोलन कदाचित इस संबंध को सर्वश्रेष्ठ ढंग से दिखाते हैं। ये उत्पन्न होते हैं क्योंकि व्यक्ति तथा सामाजिक समूह अपनी दशा को परिवर्तित करना चाहते हैं। ये संगठित होते हैं तथा अपनी दशा में परिवर्तन लाते हुए समाज को बदलने की चेष्टा करते हैं।

प्रश्नावली

1. एक ऐसे समाज की कल्पना कीजिए जहाँ कोई सामाजिक आंदोलन न हुआ हो, चर्चा करें। ऐसे समाज की कल्पना आप कैसे करते हैं, इसका भी आप वर्णन कर सकते हैं।
2. निम्न पर लघु टिप्पणी लिखें—
   - महिलाओं के आंदोलन
   - जनजातीय आंदोलन
3. भारत में पुराने तथा नए सामाजिक आंदोलनों में स्पष्ट भेद करना कठिन है।
4. पर्यावरणीय आंदोलन प्रायः आर्थिक एवं पहचान के मुद्दों को भी साथ लेकर चलते है, विवेचना कीजिए।
5. कृषक एवं नव किसान आंदोलनों के मध्य अंतर बताइए।

संदर्भ ग्रंथ

बनर्जी, सुमंता. 2002. 'नक्सलबारी एंड दी लेफ्ट मूवमेंट' संपादक घनश्याम शाह द्वारा सोशल मूवमेंट एंड दी स्टेट 2002, पृ. 125–192, सेज, नयी दिल्ली

भौमिक, शरीत के. 2004. 'दी वर्किंग क्लास मूवमेंट इन इंडिया : ट्रेड यूनियन्स एंड दी स्टेट' इन मनोरंजन मोहंती क्लास, कास्ट एंड जेंडर, सेज, नयी दिल्ली

चौधरी, मैत्रेयी. 1993. दी इंडियन विमेंस मूवमेंट : रीफॉर्म एंड रीवाइवल, रेडिएंट, नयी दिल्ली

———. 2014. "थ्योरी.ज एंड मैथड्स इन इंडियन सोशियालॉजी" इन योगेन्द्र सिंह, इंडियन सोशियोलॉजीः इमरजिंग कोनसैप्ट्स, स्ट्रक्चर एंड चेंज, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, नयी दिल्ली

फूच, मॉटिन और अंतजे, लिनकेनवेच. 2003. 'सोशल मूवमेंट्स' संपादक वीना दास दी ऑक्सफोर्ड इंडिया कंपेनियन टू सोशियोलॉजी एंड सोशल एंथ्रोपॉलाजी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 1524–1563, नयी दिल्ली

देशपांडे, सतीश. 2003. कंटेपरेरी इंडिया, अ सोशियोलॉजीकल व्यू, वाईकिंग, नयी दिल्ली

गिडिंस, एंथोनी. 2013, सोशियोलॉजी, सप्तम संस्करण, पॉलिटी, कैंब्रिज

गुहा, रामचंद्रा. 2002. 'चिपको, सोशल हिस्ट्री ऑफ़ एन एनवारमेंटल मूवमेंट' घनश्याम शाह द्वारा संपादित सोशल मूवमेंट एंड दी स्टेट, सेज, नयी दिल्ली

नॉगबरी, टिपलुट. 2003. डेवलपमेंट एथनिसिटी एंड जेंडेः सेलेक्ट एसेज ऑन ट्राइब्स, रावत, जयपुर, नयी दिल्ली

———. 2013. "किनशिप टर्मिनोलोजी एंड मैरिज रूल्सः द खासी ऑ.फ नार्थ इस्ट इंडिया", इन सोशियालॉजिकल बुलैटिन, सितंबर 2013, नयी दिल्ली

ओमेन, टी. के. 2004. नेशन, सिविल सोसाइटी एंड सोशल मूवमेंट्स, एसेज इन पोलिटिकल सोशियोलॉजी, सेज, नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

रेगे, शर्मिला. 2004. *'दलित वूमेंन टॉक डिफरेंटली : अ क्रिटिक ऑफ़ 'डिफरेंस' एंड टूवार्ड्स अ दलित फेमिनिस्ट स्टेंड प्वाइंट पोजिशन'* इन मैत्रेयी चौधरी संपादित, फैमिनिज़्म इन इंडिया, पेज 211–223, विमेन अनलिमिटेड/काली, दिल्ली

———. 2006. *रायटिंग कॉस्ट/रायटिंग जेंडर : नरेटिंग दलित वूमेंस टेस्टिमोनीज,* ज़ुबान/काली, दिल्ली

सेन, इलिना. 2004. *'वुमेंस पॉलिटिक्स इन इंडिया'* संपादित मैत्रेयी चौधरी फैमिनिज़्म इन इंडिया में, किमेन अनलिमिटेड/काली, दिल्ली

शाह, घनश्याम (संपादित). 2001. *दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स,* सेज, नयी दिल्ली

———. 2002. *सोशल मूवमेंट्स एंड दी स्टेट,* सेज, नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

शब्दावली

शारीरिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज) : वह तरीका जिससे लोग कपड़े पहनते, बात करते, चलते, अंग संचालन, अंतःक्रिया करते और अपने आप को किस प्रकार रखते हैं।

वाणिज्यिकीकरण : किसी वस्तु का एक उत्पाद के रूप में रूपांतरण करना, ऐसी सेवा या क्रियाकलाप जिसका आर्थिक मूल्य हो और जिसका बाज़ार में व्यापार हो सकता है।

संस्कृति : संस्कृति को ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा और मनुष्य की अन्य क्षमताओं से और आदतों से समझा जा सकता है जिन्हें वह एक समाज का सदस्य होने के नाते सीखता है।

विकेंद्रीकरण : धीमे-धीमे हस्तांतरण की प्रक्रिया अथवा प्रकार्य साधनों और निर्णय लेने की शक्ति को निचले स्तर की जनतांत्रिक, निर्वाचित शक्ति को हस्तांतरित करना।

अंकीकरण (डिजीटलाईज़ेशन) : इस प्रक्रिया में सूचना को किसी सार्वत्रिक अंकीय कोड के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इस रूप में सूचना को आसानी से भंडारण एवं संशोधित कर तीव्रता से विभिन्न संचारीय तकनीकी, जैसे— इंटरनेट, उपग्रहों, संचरण, दूरभाष, प्रकाशीय तंतु लाइनों (फाइबर ऑप्टिक लाइंस) आदि में भेजा जा सकता है।

विनिवेश : सार्वजनिक क्षेत्र अथवा सरकारी कंपनियों का निजीकरण है।

श्रम विभाजन : विभिन्न लक्ष्यों (टास्क) का इस तरह विशेषीकरण जिससे कुछ आवृत किए हुए अवसरों का बहिष्करण हो सकता है यहाँ से रोज़गार में पाए जाने वाले मज़दूरों के अवसरों का समापन हो जाता है (अथवा जेंडर के द्वारा)।

विपणन (डाइवर्सिफिकेशन) : जोखिम को कम करने के लिए विभिन्न प्रकार के आर्थिक क्रियाकलापों में निवेश को फैलाकर लगाना।

फोर्डवाद : 20वीं शताब्दी में अमेरिकन उद्योगपति द्वारा लोकप्रिय की गई उत्पादन व्यवस्था। उसने कारों का उत्पादन बड़ी मात्रा में करने के लिए पुर्ज़े जोड़ने की पद्धति को लोकप्रिय बनाया। इस काल में भी उद्योगपतियों एवं राज्य दोनों के द्वारा कामगार को बेहतर दिहाड़ी और समाज के लिए कल्याणकारी नीतियों को लागू किया गया।

वृहद एवं लघु परंपरा : लोक परंपरा लोक के द्वारा या अनपढ़ किसानों के द्वारा संस्थापित होती है और वृहत परंपरा अभिजात अथवा कुछ ही लोगों द्वारा बनती है। लघु परंपरा हमेशा स्थानीय होती है जबकि वृहद परंपरा में फैलने की प्रवृत्ति होती है। हालाँकि भारतीय त्योहारों के अध्ययन से पता चलता है कि सांस्कृतिक कृत्यों (वृहद परंपरा) से बिना स्थानांतरण किए जोड़ देते हैं।

पहचान राजनीति : राजनीतिक क्रियाकलापों से संदर्भित होना जो कि किसी विशिष्ट सीमांत समूह के अनुभवों को साझा करते हैं, जैसे— जेंडर, प्रजाति, संजाति समूह इत्यादि।

आयात-स्थानापन्न विकास रणनीति : आयात स्थानापन्न में बाहर पैदा होने वाली वस्तुओं और सेवाओं विशेषकर मौलिक आवश्यकताओं वाली, जैसे— भोजन, पानी, शक्ति इत्यादि को स्थानापन्न करते हैं। आयात स्थानापन्न का विचार 1950 एवं 1960 में विकासशील देशों के विकास और आर्थिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करने को लेकर लोकप्रिय हुआ।

औद्योगीकरण : यह आधुनिक प्रकार के उद्योगों, कारखानों द्वारा मशीन से बड़ी मात्रा में उत्पादन करने की प्रक्रिया है। आधुनिकीकरण पिछली दो शताब्दियों से संसार के सामाजिक कार्यों को प्रभावित करने वाली प्रक्रियाओं में सबसे महत्वपूर्ण बन गई है।

उत्पादन के साधन : जहाँ उत्पादित हुई भौतिक वस्तुओं को एक समाज में पहुँचाया जाता है, इसमें केवल प्रौद्योगिकी ही नहीं वरन् उत्पादनकर्ता के सामाजिक संबंधों को भी शामिल किया जाता है।

सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिक्स : घटकों एवं परिपथ के सूक्ष्मीकरण के साथ संबद्ध इलेक्ट्रॉनिक्स की एक शाखा। सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में एक वृहद कदम उठाया गया जब एक अभियंता के द्वारा एक माइक्रोप्रोसेसर का अविष्कार किया गया जिसे कंप्यूटर चिप कहा जाता है, 1971 में 2300 ट्रांज़िस्टर (विद्युत के प्रवाह को नियंत्रित करने वाली युक्ति) को अँगूठे के आकार की चिप में समाहित कर दिया गया। 1993 में 35 मिलियन ट्रांज़िस्टर थे, इसकी तुलना पहले के इलेक्ट्रॉनिक कंप्यूटर से करने पर जिसका वज़न 300 किग्रा

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

था जो कि एक धातु के 9 मीटर ऊँचे स्टैंड पर निर्मित किया गया, यह एक जिमनेज़ियम के क्षेत्र के बराबर जगह घेरता था।

एकल फसल अवधि : विस्तृत क्षेत्र में एक फसल अथवा एक प्रकार के बीज का रोपण।

मानक : लोकप्रचलित आदर्शात्मक आयाम, लोकाचार, रीति-रिवाज़, परंपराएँ और नियम। यह ऐसे मूल्य या नियम हैं जो विभिन्न संदर्भों में सामाजिक व्यवहार को निर्देशित करते हैं। हम लोग प्रायः सामाजिक मानकों का पालन करते हैं क्योंकि, इसे हम समाजीकरण के व्यवहार के रूप में प्रयोग करते हैं। सभी सामाजिक मानकों में उस तरह के अनुशासन होते हैं जो कि समरूपता को प्रोत्साहित करती हैं जबकि मानकों में नियम अंतर्निहित होते हैं। अधिनियमों में कानून सुनिश्चित होते हैं।

प्रकाशीय तंतु (ऑप्टिक फाइबर) : एक पतली शीशे की लड़ी जो प्रकाश का संचरण कर सके। एक अकेला बाल के समान तंतु प्रति सेकेंड में ट्रिलियन बाईट्स सूचनाओं को संचरित करने की क्षमता रखता है जबकि एक पतला ताँबे का तार जो पहले प्रयोग किया जाता था केवल 144000 बाईट्स सूचनाओं का संचरण कर सकता था।

बाह्यस्रोत : बाहर से किसी अन्य कंपनी द्वारा अपना काम कराना।

पितृवंशीय : एक व्यवस्था जिसमें पिता के वंश या परिवार से संबंध रहता है।

नग आधारित मज़दूरी : उत्पादित वस्तु के नग के आधार पर दी जाने वाली मज़दूरी।

पोस्ट-फोर्डिज़्म : यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अपनायी गई लचीली उत्पादन पद्धति से संबंधित है, जो अपनी उत्पादन इकाइयों को लीक से हटकर अथवा बाह्यस्रोतों द्वारा उत्पादन की समस्त प्रक्रिया तथा वितरण को सस्ते श्रम की उपलब्धता के कारण तीसरी दुनिया के देशों को प्रदान करती है। इस समयावधि को वित्तीय तथा सांस्कृतिक विकास के रूप में भी जाना जाता है। शहरों में अवकाश जनित औद्योगिक घटनाओं का आर्विभाव जो शॉपिंग मॉल, मल्टीप्लेक्स सिनेमा हॉल, मनोरंजन पार्क तथा टीवी चैनलों के विकास के संदर्भ में भी देखा जाता है।

रैयतवाड़ी व्यवस्था : कर वसूली की एक पद्धति जो औपनिवेशिक भारत में प्रचलित थी। इसमें सरकार द्वारा सीधे किसानों से करों की वसूली कर ली जाती थी।

संदर्भ समूह : वह सामाजिक समूह जिसे व्यक्ति या समूह पसंद करता है तत्पश्चात् उस जैसा बनने के लिए उसके रहन-सहन और व्यवहार के तरीकों को अपनाता है। सामान्यतः संदर्भ समूहों का समाज में प्रभुत्व रहता है।

सेंसेक्स या निफ्टी सूचकांक : यह महत्वपूर्ण सेंसेक्स कंपनियों के शेयरों के उतार-चढ़ाव का सूचक है। सेंसेक्स मुंबई स्टॉक एक्सचेंज पर आधारित महत्वपूर्ण कंपनियों के शेयरों का सूचक है, जबकि निफ्टी नयी दिल्ली स्थित नेशनल स्टॉक एक्सचेंज पर आधारित कंपनियों का सूचक है।

सामाजिक तथ्य : ये सामाजिक जीवन के उन पक्षों से संबद्ध है जो कि एक व्यक्ति के रूप में हमारी क्रियाओं को एक आकार देते हैं।

संप्रभुता : राजा, नेता अथवा सरकार की एक निश्चित भू-भाग में सीमांकित सर्वोच्च शक्ति का अधिकार।

संरचना : मोटे तौर पर संरचना अंतःक्रियाओं का जाल है, जो कि नियमित और पुनरावर्तक दोनों हैं।

टायलरिज़्म : व्यवस्थापन नियंत्रण के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटना। इसकी खोज टायलर ने की थी।

मूल्य : मनुष्य अथवा समूहों द्वारा यह विचार रखना कि क्या वांछित है, ठीक है, अच्छा या बुरा है। मूल्यों की विभिन्नता मानवीय संस्कृति के रूपांतरण के मूलभूत पक्षों को दर्शाती है। व्यक्तियों के मूल्य उस विशिष्ट संस्कृति जिसमें वे रहते हैं, से पूर्ण रूप से प्रभावित होते हैं।

नगरीकरण : कस्बों और शहरों का विकास और आजीविका के लिए कृषि पर निर्भरता में गिरावट।

ज़मींदारी व्यवस्था : औपनिवेशिक भारत में कर-वसूली की एक व्यवस्था, जिसमें ज़मींदार अपनी भूमि के करों को वसूल करके उस राजस्व को ब्रिटिश अधिकारियों को सौंप देता था (अपने लिए एक हिस्सा रखकर)।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished